साहित्य और साहित्येतर:
संवाद-सूत्र

साहित्य और साहित्येतर

संवाद-सूत्र

वीरेन्द्र सिंह

81-86116-27-3

सस्करण : 1999

मूल्य : चार सौ रुपये मात्र

प्रकाशक : रचना प्रकाशन,
57 नाटाणी भवन, मिश्रराजा जी का रास्ता,
चाँदपोल बाजार, जयपुर-302001

टाईप सैटिंग : आईडियल कम्प्यूटर सेन्टर,
3580, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता,
जोहरी बाजार, जयपुर।

मुद्रक : सिंहसन ऑफसेट, जयपुर

समर्पण

आलोचक, कवि और नाटककार मित्र—
डॉ॰ नरेन्द्र मोहन को
तथा
आलोचक तथा कवि-मित्र
डॉ॰ गुरुचरण सिंह
को
जिन्होंने मेरे लेखन को
अपने तरीके से
अर्थवत्ता प्रदान
की!

आलेख-क्रम

पृ॰ स॰

मेरे ये निबंध

लगभग पिछल बीस पच्चीस वर्षों स मैं अंत अनुशासनीय अभिगम की दृष्टि स साहित्य को विवेचित करने का प्रयत्न करता रहा हूँ, और अब कम से कम यह स्थिति साहित्य क क्षत्र में पैदा हो गयी है कि इस अभिगम" को अनक साहित्यिक और पाठक सकारात्मक रूप में दखने लग हैं तथा उसकी आवश्यकता और उपयागिता का सृजन तथा विचार दानों क लिए किसी न किसी रूप म महत्व दन लगे है। आज जिस गति से विचारा का बहुआयामी ससार हमार चितन तथा सवदन का प्रभावित कर रहा है उसका एक बहुआयामी पारदर्शक रूप इन निबंधों की सरचना में प्राप्त होता है। इन निबधा का परिदृश्य आदि मध्यकाल साहित्य से लेकर समकालीन समय तक का है जिसम गद्य और पद्य दाना प्रकार क साहित्य का शामिल किया गया है और इसमें आलाचना कथा साहित्य तथा कविता को इस प्रकार विवचित और मूल्यांकित करन का प्रयत्न किया गया है। कि जिसस अत अनुशासनाय अभिगम का साथकता का सृजन कम म आवश्यकतानुसार निर्धारित या 'लाकट" किया जा सक। इस निधारण में यह अवश्य है कि कविता साहित्य का अधिक स्थान प्राप्त हुआ है जबकि आलाचना तथा कथासाहित्य का अपक्षाकृत कम। लकिन इस निधारण तथा विवचन म मैन जिन आलाचका तथा कथाकारा का लिया है (यथा डॉ रमश कुतल मघ डॉ॰ विश्वभरनाथ उपाध्याय डा॰ नामवर सिंह तथा राहुल धनराज चौधरा आदि) व किसी न किसी रूप म अत अनुशासनाय

'सवाद' का रचनात्मक सदर्भ प्रदान करत ह। इन निवधा क विवचन म एक वात यह भी दृष्टिगत होगी कि रचनाकार की रचना-दृष्टि म भिन्न ज्ञान क्षेत्रा क विचार तथा सप्रत्यय किस प्रकार स उनक माच और सृजन को नए 'सदर्भो' की आर गतिशील करते हे जा कमोवेश रूप से यथार्थ तथा सत्य के भिन्न रूपा का "अपने तरीके से अर्थवत्ता प्रदान करते है। उस कार्य मे मै कहाँ तक सफल हुआ हूँ, यह ता समीक्षक एव सुधी पाठकगण ही वताएग?

इन निवधा म अधिकतर निवध भिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाआ म पिछले 8-10 वर्षो के दौरान प्रकाशित हुए है। ऐसी कुछ पत्रिकाआ के नाम हे-'दस्तावेज' (गोरखपुर) 'अक्षरा' (भोपाल),'साक्षात्कार' (भोपाल) "साम्य" (अम्बिकापुर), 'पहल' (जवलपुर) 'सचेतना' (दिल्ली), 'पुरुष' (मुजफरपुर) "वैचारिकी" (दिल्ली), 'मधु' (लक्ष्मणगढ़), "विपक्ष" (वोकारो), 'रगायन' (उदयपुर), "कला प्रयोजन" (उदयपुर), 'समकालीन सृजन' (कलकत्ता) 'इतिहास वोध' (इलाहावाद), "एक आर अतरीप" (जयपुर), "कल क लिए' (वहराइच), 'युगसाक्षी' (लखनउ), "अचल भारती", (देवरिया तथा 'मधुमती' (उदयपुर)। इन पत्रिकाआ का जिक्र मैने यहाँ पर इसलिए किया है कि ये सभी पत्रिकाए किसी न किसी रूप म अत अनुशासनीय अभिगम पर आधारित मेरे लेखो को प्रकाशित कर, मेरी इस "आलाचना-दृष्टि" को साहित्य-जगत मे अपेक्षित 'स्थान' दिलाने म जो सहयोग प्रदान किया है, वह मेर लिए सदा स्मरणीय रहेगा।

अत म, मै रचना प्रकाशन के श्री रामशरण जी नाटाणी का हृदय से आभारी हूँ जिन्हाने इन निवधा को, जो यत्र-तत्र प्रकाशित हुए थे, उन्ह एक 'व्यवस्थित' रूप म प्रकाशित कर, मेरे श्रम को 'सार्थकता' प्रदान की।

डॉ॰ विरेन्द्र सिंह
जयपुर

[1]

अंतः अनुशासनीय अभिगम और साहित्य

एक आलोचक होने के नाते मेरे सामने यह प्रश्न उभरता रहा है कि आज की आलोचना भिन्न-भिन्न सिद्धातो और तेवरों के साथ जिस वैचारिकता को प्रकट कर रही है, वह क्या भटकाव है या रचना को समझने और उसकी अर्थ-सृष्टि करने के भिन्न-भिन्न प्रकार है? मेरे विचार से यह रचना को उसके विभिन्न अर्थ-सदर्भो में पेश करने की कोशिश है और इस कोशिश मे अक्सर यह भी होता है कि एक आलोचना प्रकार या दृष्टि (मार्क्सवादी, शैली तात्विक, मिथकीय आदि) किसी कृति के मूल्याकन म इतनी हावी हा जाती है कि कृति (या प्रवृत्ति भी) की अस्मिता और उसके अन्य अर्थ सदर्भ पृष्ठभूमि मे चले जाते है। असल मे, आलोचना क लिए आस्वादन पहली शर्त है, और उस आस्वादन म सवेदना और ज्ञानात्मक प्रक्रिया का जितना अधिक विस्तार होगा, आलोचना का क्षेत्र उतना ही व्यापक और बहुआयामी होगा। उसी सदर्भ मे मै अन्त अनुशासनीय आलोचना का प्रस्ताव करना चाहूँगा। इस 'भारी भरकम' नाम से शायद कुछ लाग भड़के, पर मै उन्हे विश्वास दिलाना चाहता हू कि अन्त अनुशासनीय आलोचना आस्वादन पर आधारित सवेदना और ज्ञानात्मक प्रक्रिया का एक ऐसा जैविक रूप है जो पूर्वाग्रहा से बचता हुआ चीजा और वस्तुओ की सही 'स्थिति' पर बल देता है और किसी भी विचार सिद्धात और सवेदना को पूर्वाग्रह के आधार पर नकारता नहीं है। यहाँ पर किसी

विचार या सिद्धांत का नकार नहीं है, पर उनका सही निर्धारण है जो रचना के अर्थ-संदर्भों (कम या अधिक) को प्रकट एवं मूल्यांकित कर सके। अतः अनुशासनीय दृष्टि से ज्ञान और संवेदना का समीकरण आवश्यक है। इसी संदर्भ में एक बात और है कि इस राग संवेदन की बनावट में विचार तत्व की एक विशेष भूमिका है जहाँ तक आज की रचनाशीलता का प्रश्न है, भिन्न ज्ञानानुशासन के प्रत्यय और प्रस्थापनाएं इस वैचारिक चेतना को गति देती हैं अथवा दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि रचनाकार के संवेदना-तंत्र में ये विचार तत्व क्रमशः रचनात्मक संदर्भ प्राप्त करते हैं। यही विचारों का रचनात्मक संदर्भ है। यही कारण है कि सृजन-कर्म में विचार और संवेदन का एक गहरा रिश्ता होता है। यह एक सत्य है कि जो भी हम पढ़ते हैं और मनन करते हैं, वह जाने या अनजाने हमारी चेतना को प्रभावित करता है, और इस दृष्टि से आलोचक या रचनाकार दोनों के लिए यह अध्ययन एवं मनन आवश्यक है, विशेषकर आलोचक के लिए यह और भी जरूरी है क्योंकि आस्वादन के द्वारा वह कृति के भिन्न अर्थ-संदर्भों को तभी ठीक प्रकार से विवेचित और मूल्यांकित कर सकेगा। अतः अनुशासनीय आलोचना 'विचार साहित्य' को इसी दृष्टि से महत्व देती हैं जो रचना के बहुअर्थसंदर्भों को प्रकट कर सके और कृति के सौंदर्य को एक व्यापक फलक प्रदान कर सके।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि आज, जबकि ज्ञान का इतना अधिक विस्तार एवं विशेषीकरण हो चुका है किसी एक व्यक्ति के लिए यह असम्भव है कि वह सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सके। यह बात काफी सीमा तक सही है, पर यह भी सत्य है कि मनुष्य की चेतना द्वन्द्वात्मक है, और यह द्वन्द्वात्मकता उसे भिन्न सरोकारों और संदर्भों की ओर ले जाती है। भिन्न अनुशासनों का सामान्य से अधिक परिचय प्राप्त करना ही यहाँ अभिप्रेत है, और वह भी उन ज्ञान-क्षेत्रों का जो साहित्य से किसी न किसी स्तर पर जुड़ते हैं। इस दृष्टि से, सामान्य-विज्ञान, नृतत्वशास्त्र मनोविज्ञान, दर्शन, विज्ञान, राजनीति और इतिहास को साहित्यिक रचना और आलोचना के लिए मैं अधिक आवश्यक मानता हूँ। आज की रचनाशीलता के भिन्न आयाम इन ज्ञान-क्षेत्रों से न्यूनाधिक रूप से प्रभावित होते हैं, विशेषकर इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, और मनोविज्ञान से। हरेक अनुशासन की यह आन्तरिक प्रकृति होती है कि वह दूसरे अनुशासनों की ओर इसलिए प्रेरित होता है कि उसके द्वारा वह अपने को बहुआयामी बनाता है, तो दूसरी

और यह भी सिद्ध करता है कि हरेक अनुशासन अपनी 'अपूर्णता' को क्रमश 'पूर्णता' तक ले जाने का प्रयत्न करता है। क्या यह प्रक्रिया अन्त अनुशासनीय 'दृष्टि' की माग नही करती है? इससे एक बात और स्पष्ट होती है कि अन्त अनुशाासनीय समीक्षा भिन्न शास्त्रो या अनुशासनो के सापेक्ष 'सवाद को महत्व देते हुए भी प्रत्येक मानवीय अनुशासन की 'स्वायत्तता' को बनाये रखने की 'आगिक दृष्टि है। अत व्यापक अर्थ मे यह आलोचना सापेक्ष स्वायत्तता की आलोचना है।

इस प्रकार अन्त अनुशासनीय दृष्टि वैचारिक एव सवेदनात्मक प्रक्रियाओ को सार्जनात्मक रूप मे व्याख्यायित करती है। यहाँ पर यह स्पष्ट करना जरूरी है कि बिना सर्जनात्मकता के कोई भी विचार भाव या सवेदन साहित्य के लिए अमान्य है क्योंकि साहित्य की अपनी विशिष्ट अस्मिता सृजनात्मकता मे ही निहित है और जहाँ भी सर्जनात्मकता होगी वहाँ पर सौंदर्य का कोई न कोई आयाम उद्घाटित होगा। यह सर्जनात्मकता अपने युग या समय बोध का फल है जिसमे विचार प्रत्यय सवेदना भाव आदि का एक जैविक रूप प्राप्त होता है जिसमे 'विचार सवेदन' की अपनी विशिष्ट भूमिका है। एक वाक्य मे कहू तो यह आलोचना विचार सवेदन की भिन्न आयामी गतिशीलता को पकड़ने की एक 'दृष्टि' है। मूल्याकन (कृति या रचनाकार का) एकपक्षीय भी हो सकता है और अनेक पक्षीय यह आलोचक की दृष्टि पर आधारित है। मैने इस पुस्तक मे रचनाकारो और प्रकृतियो के विवेचन मे अनेकपक्षीय दृष्टि को अपनाया है।

अन्त अनुशासनीय दृष्टि का उपर्युक्त रूप इस तत्य को भी प्रकट करता है कि यथार्थ और सत्य को देखने की अनेक दृष्टियाँ है फिर भी उनके मध्य एक द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध होते हुए भी कुछ ऐसे तत्व या उपादान होते है जो एक दूसरे को 'सवाद की स्थिति मे लाते है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी तत्व या उपादान होते है जो असमान या विरोधी होते है। अन्त अनुशासनीय दृष्टि यह मॉग करती है कि इन विरोधी तत्वो को भी पहचाना जाए क्योंकि इनकी पहचान द्वारा एक आलोचक अपने ज्ञान सवेदन को अधिक क्रियाशील कर सकता है। हो सकता है कि विशिष्ट स्थिति में किसी उपादान (धारणा का भी) का महत्व हो जो नयी सवेदना और सर्जना के प्रकाश मे नए विवेचन की अपेक्षा रखता हो उसे हम किसी पूर्वाग्रह के कारण स्वीकार न कर रहे हो। उदाहरणस्वरूप

'रूपवाद' और 'रोमांटिक बोध' को पूर्णरूपेण नकारना सम्भव नही है क्योंकि 'रूप' और रोमांटिक बोध का स्वरूप भी नए कथ्य-सवदन के प्रकाश म परिवर्तित होता है। यह कोई स्थिर प्रत्यय नही है। रीतिकाल के 'रूप' और छायावाद के 'रूप' मे अन्तर है जो परिवर्तित काल-बोध का परिणाम है। अतः 'रूप' का कोई एकमात्र प्रतिमान नही हो सकता, क्योंकि कथ्य एव बोध के बदलाव के साथ 'रूप' मे भी बदलाव आता है। इसी प्रकार, प्रेम प्रकृति मानव-सम्बन्ध, ब्रह्माडीय बोध, रहस्यभाव और सामाजिक सरचना-ये सभी गत्यात्मक प्रत्यय है जो युगबोध एव काल बोध के सदर्भ मे अपना अर्थ ग्रहण करते है।

इस बिन्दु पर आकर मै पुन पीछे लौटना चाहूगा क्योंकि मै कह चुका हू कि यह आलोचना भिन्न वादो, सिद्धान्तो और आलोचना प्रकारो को नकारती नही है, वरन् कृति या रचनाकार की सापेक्षता म उनके तत्वो को ग्रहण करती है जो कृति के अर्थ-सदर्भों को प्रकट कर सके। यह एक सत्य है कि भिन्न आलोचना प्रकार किसी न किसी अनुशासन स अधिक सम्बद्ध है, जैसे मार्क्सवादी आलोचना मार्क्सवादी दर्शन स प्रभावित है, शैली तात्त्विक और सरचनावादी समीक्षाए भाषाशास्त्र और भाषा दर्शन से सर्बंधित है तथा समाजशास्त्रीय आलोचना समाजशास्त्र और नृतत्वशास्त्र से प्रभावित है आदि। आज के सन्दर्भ मे वर्ग सघर्ष, शोषण, अर्थतत्र तथा तकनीकी प्रभुत्व के कारण मार्क्सवाद का एक अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि जनवादी (एक व्यापक अर्थ मे) सघर्ष और चेतना उन सारे देशो मे जोर पकड़ रही है जहाँ शोषण, सामतवाद और साम्राज्यवाद की ताकते शोषण और दमन की प्रक्रिया को तीव्र कर रही है। यहाँ पर मै भाषा तात्त्विक आलोचना-प्रकारों के महत्व को इस रूप मे स्वीकार करता हू कि कृति भाषा मे ही जन्म लेती है और आलोचना कर्म मे भाषा की बाह्य और आन्तरिक सरचना को पहचानना इसलिए जरूरी है कि कभी-कभी ये भाषिक सरोकार कृति या रचनाकार के उन अर्थ-सन्दर्भों को व्यक्त करते है जो अन्यथा अछूते रह जाते है। क्रिया, सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण का प्रयोग मात्र यांत्रिक न होकर कभी-कभी सृजन-कर्म के व्यापक अर्थ-सदर्भ देते है। 'मै-तुम, हम-वे, (सर्वनाम), या प्रजातन्त्र, ससद, गणतत्र, गाँधी, मार्क्स(सज्ञाएँ) आदि सृजन मे मात्र सर्वनाम या सज्ञाए न होकर कुछ व्यापक अर्थ-सन्दर्भों को सकेतित करती है। उदाहरणस्वरूप गाँधी या मार्क्स मात्र अब नाम न रहकर एक "विचार" हो गए है जो क्रमश

मिथकीय रूप ग्रहण करते जा रहे है। आलोचना कर्म का यह दायित्व है कि वह कृति की भाषिक सरचना के तत्वो को इस प्रकार विवेचित करे जो बिम्बो, प्रतीको और अन्य प्रकार के रूपाकारो (मिथकीय आद्यरूप, शब्द) के अर्थ-सौदर्य को उद्घाटित कर सके। इन भाषिक रूपाकारो के विवेचन के द्वारा हम किसी भी 'रचना' के सौदर्य और उसके अन्तर्निहित अर्थ-सदर्भो को हृदयगम कर सकते है। आलोचना की यह प्रक्रिया यान्त्रिक न हो जाए, इसका खतरा बना रहता है और यह आलोचक पर निर्भर है कि वह भाषिक सरचना को किस रूप मे ग्रहण करता है? इसी सदर्भ म इधर मिथकीय आलोचना का जो विकास हुआ है, वह एक ओर मिथक के रचनात्मक सदर्भ की ओर तो दूसरी ओर, उसके ऐतिहासिक और मनस्तात्विक रूपो का विवेचित करता है। इस सदर्भ मे भी आद्यरूपो और नए मिथको के सृजन को लेकर यह कहा जा सकता है कि परिवर्तित एतिहासिक सदर्भ और ज्ञान-विज्ञान के नए विकास के साथ नए मिथको का लगातार सृजन हो रहा है जो हमे साहित्य और कला म दिखाई देते है। होरी ब्रह्मराक्षस, गाँधी, मार्क्स, जन-सस्कृति का मिथक, इतिहास-मिथक, विस्तरणशील ब्रह्माड आदि ऐसे नए मिथक है जो किसी न किसी रूप मे आज की रचना को आदोलित कर रहे है। नए मिथको का स्वरूप इतिवृत्तप्रधान नही है, वरन् अवधारणा प्रधान है, यही कारण है कि पुराने मिथको की इतिवृत्तात्मकता नए मिथको मे अप्राप्य है। यही वह बिदु है जो नए मिथको का प्राचीन मिथको से अलग करता है। इसी के साथ यह भी सत्य है कि नए मिथको मे इतिवृत या प्रभामडल का एक हल्का पुट है क्योंकि मिथक की अवधारणा मे इतिवृत्त का कुछ न कुछ अस्तित्व रहेगा ही। अब मिथक मात्र धर्म की वस्तु नही है, वरन् वे इतिहास एव सस्कृति के नए "पैटर्न" भी है।

उपर्युक्त कुछ आलोचना प्रकारो से मैने मात्र उन्ही तत्वो को लिया है जो अत अनुशासनीय आलोचना के लिए भी जरूरी है। इसी प्रकार अन्य प्रकारो (मनोविश्लेषण, समाजशास्त्रीय, सौदर्यवादी आलोचनाए) मे भी ऐसे तत्व है जो यदा कदा आलोचना-कर्म मे सहायक हो सकते है और, कृति या प्रकृति के अनेक सदर्भो को प्रकट कर सकते है। इसी सदर्भ मे एक अन्य तथ्य की ओर ध्यान जाता है कि कुछ ऐसे सरोकार या प्रत्यय है जो उपर्युक्त आलोचना-प्रकारों के तहत नहीं आते। विचार-सवेदन की गतिशीलता इन क्षेत्रो को भी आवश्यकतानुसार ग्रहण करती है, क्योंकि आज का सृजन

किसी न किसी स्तर पर इन सरोकारों से टकरा रहा है। मेरा इशारा (उदाहरणस्वरूप) सापेक्षवादी चिंतन विकासवाद दिक् काल की अवधारणाएँ, विज्ञान बोध के विविध आयाम प्रक्रम (प्रासेस) का विचार, ब्रह्मांड की संरचना आदि एवं अनेक विचारों या सरोकारों की ओर है जो सृजन के स्तर पर रचनात्मक संदर्भ प्राप्त कर रहे हैं। आलोचक के द्वारा इनकी छानबीन "रचना" के अर्थ-सौंदर्य का एक नया आयाम तो देगी ही वरन् इसके साथ ही साथ वह रचनाकार के 'मनस' (माइंड) के उस रूप को भी समक्ष लाएगी जो उसके अनुभव और ज्ञान-संवेदन के समग्र 'बिम्ब' को संकलित करेगी। उपर्युक्त सारी प्रक्रिया से गुजरने पर हम रचनाकार की समग्र "रचना दृष्टि" से तो परिचित होंगे ही लेकिन इसके साथ ही साथ हम कृति के भिन्न अर्थ संदर्भों के सौंदर्य को भी हृदयंगम कर सकेंगे। यह सही है कि यह अर्थ-सौंदर्य (रचनात्मक दृष्टि से) किसी में कम और किसी में अधिक होगा इससे उस कृति का महत्व कम या अधिक नहीं होगा क्योंकि अक्सर कम अर्थ संदर्भों वाली कृति भी महान् और उदात्त हो सकती है शर्त है उसकी रचनात्मकता की गहराई क्या और किस सीमा तक है? एक तरह से अधिक या कम सरोकारों से युक्त कृति का मूल्यांकन भी अंत: अनुशासनीय दृष्टि से किया जा सकता है और यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि इस कृति या रचनाकार में प्राप्त भिन्न सरोकारों का क्या सम्बन्ध है? आगे के निबन्ध इस परिदृश्य को न्यूनाधिक रूप से 'अर्थ' प्रदान करेंगे।

मैंने अभी तक जो बात पाठकों के सामने रखी है, उसे मैं एक-दो उदाहरणों से स्पष्ट करना चाहूँगा क्योंकि सिद्धांत और व्यवहार में तालमेल का होना आलोचना कर्म के लिए जरूरी है। यहाँ पर मैं प्रसाद और मुक्तिबोध के काव्य-सृजन को संक्षेप में लेना चाहूँगा क्योंकि यहाँ पर सविस्तार विवेचन की गुंजाइश नहीं है, कारण उसका विवेचन एक स्वतंत्र लेख की माँग करता है। यहाँ पर मात्र संकेत ही करूँगा।

प्रसाद का काव्य अनेक आयामी है। अन्त: अनुशासनीय दृष्टि से उनके काव्य (या पूरे साहित्य) का विवेचन और मूल्यांकन प्रसाद काव्य के अनछुए अर्थ-सन्दर्भों को और साथ ही उनकी रचना-दृष्टि की व्यापकता को संकलित करेगा। इस दृष्टि से छायावादी ढाँचे में उनका विवेचन काफी किया जा चुका है, फिर भी अंत: अनुशासनीय दृष्टि से प्रसाद के काव्य में

विज्ञान-बोध, दिक्काल, मिथकीय अर्थ रूपातरण, इतिहास बोध, राष्ट्रीय आन्दोलन और नवजागरण, तन्त्रवाद और उपनिषदीय चितन आदि क्षेत्र है जो उनके काव्य को नए अर्थ-सदर्भों की ओर ले जा सकते है। उदाहरण के तौर पर प्रसाद के काव्य मे विज्ञान बोध, दिक्काल, और राष्ट्रीय आन्दोलन के जो सकेत प्राप्त होते है, वे समग्र रूप से प्रसाद-काव्य के चितन पक्ष और यथार्थ पक्ष को तो उद्घाटित करते ही है, प्रसाद की "ज्ञान-सवेदनात्मक" ऊर्जा को भी प्रकट करते है। "कामायनी" प्रसाद का एक ऐसा ही काव्य है जो विज्ञान बोध, दिक्काल, मिथकीय-अर्थ रूपातरण तथा राष्ट्रीय आदोलन आदि सरोकारो को रचनात्मक सदर्भ देता है[1] कामायनी मे 'परमाणु' के तीन तत्वो (गति कपन और उल्लास) का सकेत तत्रो मे प्राप्त परमाणु भावना से मेल खाते हुए भी, विज्ञान सम्मत है क्योंकि आइस्टीन ने परमाणु को गति, कपन और उल्लासयुक्त बताते हुए उसके गत्यात्मक (डाइनामिक) रूप को प्रस्तुत किया है जो सृस्टि का मूल है।

अणुओ को है विश्राम कहा
है कृतिमय वेग भरा कितना
अविराम नाचता कपन है
उल्लास सजीव हुआ कितना।।(काम सर्ग)

इसी प्रकार, प्रसाद मे विकासवाद, गुरुत्वाकर्षण और खगोल विज्ञान के सकेत प्राप्त होते है, जो समग्र रूप से प्रसाद के बिम्ब और सौदर्य-दृष्टि को समझने मे सहायक सिद्ध होते है। इसी सदर्भ मे एक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रसाद काव्य और नाटको मे हमे परोक्ष रूप से, राष्ट्रीय आदोलन और चेतना के यदा-कदा सकेत मिलते है जो मिथक और इतिहास के आवरण मे छिपे हुए है। "शेरसिह का शस्त्र समर्पण" हो या "प्रलय की छाया' अथवा कामायनी का वह प्रसग जहाँ सारस्वत प्रदेश की रानी 'इड़ा' (राष्ट्र) पर मनु द्वारा अतिचार करने के विरोध मे जन शक्ति का उद्वेलन और दूसरी और 'महारूद्र' के नाराच को दिखला कवि ने परोक्षत राष्ट्रीय आन्दोलन मे विद्रोह की भूमिका को दर्शाया है। गहराई से दखा जाए तो प्रसाद का साहित्य कर्म सघर्ष और राष्ट्रीय एकता का साहित्य है जो स्वतत्रता सग्राम

---

१ देखे मेरी पुस्तक "विचार-सवेदन भिन्न आयाम म "प्रसाद काव्य म दिक् काल बोध और विज्ञान बोध"।

के लिए आवश्यक था। सक्षप मे, क्या ये सभी तत्व और सरोकार समग्र रूप से प्रसाद की रचना-दृष्टि की व्यापकता और उनकी अनेक आयामिकता को समझने मे सहायक नही होते?

दूसरा उदाहरण मुक्तिबोध है जो अत अनुशासनीय आलोचना दृष्टि के तहत कुछ नए सदर्भो को उजागर करता है अथवा इसे यू भी कह सकते है कि मार्क्सवादी दृष्टि के अतर्गत उनके मूल्याकन के अतिरिक्त कुछ ऐसे आयाम है जो कवि के रचना ससार को और गहराई मे समझने म सहायक हो सकते है। ये आयाम है-विज्ञान बोध, भूगर्भ विज्ञान दिक्काल्, इतिहास और भौतिकवादी दर्शना के मथन से प्राप्त रचना-दृष्टि। य सभी क्षेत्र मुक्तिबोध के काव्य का समग्र बिम्ब पेश कर सकते है। उदाहरण के तौर पर मुक्तिबोध का काव्य विज्ञान बोध से इस कदर प्रभावित है कि इसे हम नजर-अदाज कर उनकी सृजनात्मकता का सही मूल्याकन नही कर सकते है। विज्ञान् युग मे रहने वाला एक सजग रचनाकार इससे प्रभावित तो होगा ही पर प्रश्न है कि वह किस रूप म इस प्रभाव को ग्रहण करता है? जहा तक मुक्तिबोध का प्रश्न है उन्होने वैज्ञानिक प्रस्थापनाआ और रूपकारो का प्रयोग 'ज्ञान-सवेदना' को गहराने के लिए किया है, तो दूसरी और सघर्षशील यथार्थ को व्यंजित करने के लिए। असल मे, उनकी 'फैटेसी' की प्रक्रिया भी उसी यथार्थ और ज्ञान-सवेदन को गहराने के निमित प्रयुक्त हुई है। मुक्तिबोध की कविता गतिशील विचार-समीकरण की कविता है जिसमे फेटेसी और भिन्न ज्ञानानुशासनो के रूपाकार अपनी अहम् भूमिका अदा करते है।[1] विज्ञान के क्षेत्र मे यह भावना काफी समय तक विद्यमान रही कि सत्य का रूप यत्रबद्ध कारणो से बधा हुआ है, लेकिन मुक्तिबोध इसे व्यग्यात्मक रूप मे अस्वीकार करते है (जो आधुनिक विज्ञान भी मानता है) -

"वैसा मे बुद्धिमान अविरत, यत्रबद्ध कारणा मे सत्य हू।'

इसके बाद कवि का यह अनुभव -

गणित के नियमो की सरहदे लॉघना
स्वय के प्रति नित जागना

* * *

---

१ देखे मेरी पुस्तक "मुक्तिबोध काव्य बोध का नया परिप्रेक्ष्य"

इसलिए सत्य हमारे है सतही
पहले से बनी हुई राहो पर घूमते है
यत्रबद्ध गति से
पर उनका सहीपन
बहुत बड़ा व्यग्य है।

(चाँद का मुह टेढ़ा है)

असल मे, यह यत्रबद्ध गति को लाँधना ही मुक्तिबोध के काव्य का एक लक्ष्य है जो उनकी सृजन-प्रक्रिया मे अन्तर्भूत है। ज्ञान-विज्ञान मे सक्रिय "सश्लेषण विश्लेषण" से उद्दाम "ज्ञान-सवेदन की' फुरफुरी हृदय मे जगी" और साथ ही "मस्तिष्क ततुओ मे वेदना यथार्थो की जागी"-ये पक्तिया ज्ञान-विज्ञान को इसलिए महत्व देती है कि उनके द्वारा "यथार्थ की वेदना" आदोलित हो सके। ब्रह्माण्ड की विराट गतियो को जानना इसलिए जरूरी है कि-

और मे उनका गुरुत्वाकर्ष। चुम्बक शक्ति
ब्रह्माड अनुभव हृदय मे पा सकू
सीख सकू विराट गतियाँ।

यहा पर मैने मुक्तिबोध के ऐसे पक्ष की ओर सकतमात्र किया है जो उनकी सृजनात्मकता को एक नया आयाम देता है। इसी प्रकार दिक् काल इतिहास और ज्ञान-विज्ञान के भिन्न-भिन्न रूपाकारो (यथा परमाणु गति, प्रकाश वर्ष, अधेग, खण्ड्र धरती की परते, आदि) का रचनात्मक प्रयोग, मुक्तिबोध के काव्य को एक नया परिप्रेक्ष्य देता ह। किसी भी कवि की रचना प्रक्रिया मे इन रूपाकारो (शब्दो) का अपना विशिष्ट स्थान होता है क्योकि अध्ययन और विवेचन के द्वारा हम कवि की भाषिक सरचना को समझते ही नहीं है, वरन् इसके द्वारा हम उसके ज्ञान-सवेदन की गहराई और अनेक आयामिकता को भी हृदयगम कर सकते है।

यह तथ्य बरबस मुझे एक अन्य सत्य की ओर अर्पित करता है जो अत अनुशासनीय दृष्टि के द्वारा ही कदाचित् सभव हो सकता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जो अभी तक अछूता ही रहा है। मेरा इशारा आलोचना मे प्रयुक्त उन पारिभाषिक और बीज शब्दो से है जो भिन्न अनुशासना से लिए गए है यथा भाषा शास्त्र और भाषा दर्शन के शब्द अग्रगामिता (फोरग्राउडिग)

सरचना शब्द शक्तियाँ या लक्षणा व्यजना आदि, भिन्न दर्शनो के शब्द जैसे यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, प्रतिबद्धता, अभिजात, सर्वहारा, प्रकृतिवाद आदि, मनोविज्ञान के शब्द जैसे तनाव, घुटन, मोहभग, चेतना प्रवाह आदि तथा विज्ञान के शब्द जैसे ऊर्जा, जैविकी, गति, विस्तरणशील विश्व, परमाणु आदि। ये सभी शब्द मात्र शब्द न होकर आलोचना के क्षेत्र म विचार या प्रत्यय के सूचक है जो अपनी विशेष अर्थ भगिमाओ के साथ आलोचना के बीज-शब्द स्वीकृत हो चुके है। ये शब्द जो अलग-अलग कटघरों में बद रहते है, आलोचना के क्षेत्र मे आकर एक दूसर में प्रवश कर आलोचना और सर्जना दोनो को गति देते है। एक को पहचानने का अर्थ है दूसरे को पहचानना। आलोचना के ये बीज शब्द कार्य करते है। इस दृष्टि से डॉ० बच्चन सिह की पुस्तक "आधुनिक आलोचना के बीज शब्द" एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है जिसमे इन बीज शब्दो का ऐतिहासिक अध्ययन है।

यही बात हम सृजन के क्षेत्र मे भी पाते है जहाँ शब्द, प्रतीक, और रुपाकार का प्रयोग भिन्न ज्ञान-क्षेत्रों मे प्रयुक्त रुपाकारो से मेल खाता है, कभी ये शब्द-रुपाकार अपने प्राथमिक अर्थ (अनुशासन विशेष में) के अलावा सृजन मे नए सदर्भो के साथ प्रकट होते है जैसा कि प्रसाद और मुक्तिबोध म हम देख आए है। आगे के निबधो मे हम इस पक्ष का अधिक अनुशीलन करेग। कभी-कभी सृजन में ऐसा भी होता है कि कवि इन शब्दों का प्रयोग न कर उसके अर्थ को अपने तरीके से रचनात्मक अर्थ देता है, इसे आगे कवियो की विवेचना म हम देखेगे। भाषिक सरचना का यह पूरा क्षेत्र, जहाँ तक कविता का सम्बन्ध है, भाषिक सृजनात्मक े भी सम्बन्धित है और इस सृजनात्मकता का सम्बन्ध सौंदर्य बोध से है क्योंकि जहाँ सही अर्थ मे सृजनात्मकता होगी, वहाँ सौंदर्य का कोई न कोई आयाम व्यक्त होगा। इस सौंदर्य को वैज्ञानिक दृष्टि से भी समझा जा सकता है। एक वैज्ञानिक का सौंदर्य बोध प्रकृति की घटनाओं मे एक नियम या समरसता के दर्शन करता है जो उस सत्य के विशुद्ध रुप तक प्रयोग एव प्रेक्षण के द्वारा ले जाता है। एक रचनाकार भी सत्य के इसी रूप का क्रमिक साक्षात्कार करता है, प्रयोग, अनुभव और सवेदना के द्वारा। आइस्टीन के शब्दो मे सत्यान्वेषी विश्व के अतराल मे "पूर्व-स्थापित समरसता" (प्री-इस्टैब्लिस्ट हॉरमोनी) का अनुभव करता है। कविता भी इसी समरसता या सयोजन को किसी न किसी स्तर पर उद्घाटित करती है। अत आज के रचनाकार के लिए सौंदर्यबोध मात्र अभिजातीय नही है, और न वह रसाधारित है, वरन्

अब वह जनोन्मुखी है, यहाँ तक कि वीभत्स एवं विडम्बना जब रचनात्मक अर्थवत्ता प्राप्त करती है, तो वह भी सौंदर्यमय हो जाती है। दूसरी ओर अत अनुशासनीय "संवाद" के द्वारा उसका क्षेत्र भिन्न प्रस्थापनाओं एवं रूपाकारों के द्वारा रचनात्मक अर्थवत्ता प्राप्त करता है। मेरे विचार से सृजन आज दो स्तरों की माँग करता है एक जनोन्मुखता और दूसरा वैचारिकता की संवेदनात्मक प्रामाणिकता। यहाँ पर 'जन' शब्द मात्र शोषित वर्ग नहीं हैं, पर वह आदमी का वह बिम्ब है जिसमें उसके अनेक स्तर एवं रूप प्राप्त होते हैं और इन रूपों में 'जन' ही प्रमुख है जो इतिहास चक्र को गति देता है। साहित्य तथा कविता ऐसे अनुशासन है जो 'जन' से सबसे अधिक जुड़े हुए है जहाँ तक विचार-संवेदना का प्रश्न है। इस 'जन' में अनेक वर्ग एवं चरित्र है जिसमें किसान मजदूर जनजातियाँ मध्यवर्ग, तथा अन्य वर्गों का एक द्वन्द्वात्मक रूप प्राप्त होता है और कविता इस 'द्वन्द्व' को संवेदना के स्तर पर व्यक्त करती है। व्यापक अर्थ में 'जन' और 'इलीट' का एक गहरा रिश्ता है क्योंकि 'इलीट' (रचनाकार आदि) जन से प्रेरणा लेता है और 'जन' से ही 'इलीट' का जन्म होता है। यह 'इलीट' जब 'जन' से दूर होता जाएगा, वह समाज के एक बहुत बड़े वर्ग से कटता चला जाएगा। चाहे रचनाकार हो या विचारक व इस 'जन' से लगातार टकराते है और इस प्रकार जन-संस्कृति के 'मिथक' का सृजन करते हैं जो यथार्थ पर आधारित एक विचार दर्शन है।[1] अत आज का सौंदर्य बोध वैचारिक संवेदना पर आधारित है। वह आनंददायक उस अर्थ में नहीं है जो परम्परा से ग्राह्य रहा है। वह उद्वेलन, विक्षोभ तथा वृहद् संदर्भों को अपने अंदर समेटे हुए है।

□

---

१ मिथक दर्शन का विकास डॉ॰ वीरेन्द्र सिंह देखें "आधुनिक मिथक" नामक अंतिम अध्याय

[2]

डॉ विश्वंभरनाथ उपाध्याय और सरहपा का नया मूल्यांकन

डॉ॰ उपाध्याय की आलोचना-दृष्टि का विकास द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से आरंभ होकर, उसके व्यापक रूप को क्रमशः गतिशील करता है, और यही कारण है कि वे मार्क्सवाद के फ्रेमवर्क को विकसित कर एक संग्रथित एव सामग्रिक आलोचना-विधि का विकास कर सकें। इसके लिए वे हेडगर-हैगल की "सशस्त्र-परिदृष्टि"(Armed Vision) का उल्लेख बार-बार करते हैं। उनका कथन है कि आधुनिक आलोचनात्मक प्रवृत्तियों का एक महाप्रविधि में संग्रथन स्थापत्य के समान हो सकता है जिसमे एक पूर्व योजना के अनुसार किसी नींव के ऊपर भवन की रचना की जाती है। मार्क्सवाद इस नींव और ढाँचे के लिए सबसे ज्यादा प्रासंगिक है। मार्क्सवाद के व्याख्याताओ ने इस तथ्य पर जोर दिया है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही ऐसा सग्रहाक आधार और ढॉचा है जो ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे नवीनतम विकास का प्रयोग कर सकता है। वस्तुतः मार्क्सवाद का यही कार्य होना चाहिए। (समकालीन कविता की भूमिका से,पृ॰११९)। यदि गहराई से देखा जाए तो डॉ॰ उपाध्याय मार्क्सवाद को नए सरोकारो से जोड़ना चाहते है, वे सर्जना तथा वैज्ञानिकता को, ज्ञान के विविध क्षेत्रो को तथा रहस्यात्मक कौंधों तथा अभिवृत्तियों को भी सामाजिक आधार देना चाहते है। द्वन्द्वात्मकता को वे बाह्य रूपों के साथ चेतना की द्वन्द्वात्मकता को भी अपने तरीके से अर्थ देने की प्रबल चेष्टा कर रहे है। उनके उपन्यास (जाग मछंदर-गोरख आया, जोगी मत जा तथा विश्वबाहु परशुराम) तथा

लेखा म हमे यह प्रवृत्ति नजर आ रही है। यहॉ पर इसका सकेत ही मैने किया है क्योंकि यहाँ पर मै उपाध्याय जी की नवीनतम् कृति 'सरहपा' (1996) को लना चाहूँगा जहाँ उनकी आलोचना-दृष्टि का व्यापक रूप प्राप्त हाता है जिसम उपर्युक्त तत्त्वा का न्यूनाधिक समावश प्राप्त हाता है।

समकालीन आलाचना म एमे काफी कम आलाचक एव विचारक है जिन्हान आदिकालीन साहित्य पर वैज्ञानिक दृष्टि स लिखा हो। ऐसे कम आलाचका म डॉ॰ विश्वभरनाथ उपाध्याय एक ऐमा नाम है जिन्होने तत्र-वौद्ध -वाम मार्गी साधना और सृजन का अपने लखा आलोचनाआ तथा सृजनात्मक साहित्य (उपन्यास) के द्वारा जा अर्थ' और 'प्रासगिकता' प्रदान की है, वह मरे विचार स डॉ॰ उपाध्याय का हिदी को ही नही, वरन् भारतीय साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण प्रदेय है। यदि गहराई से देखा जाए तो डॉ॰ उपाध्याय की नवीनतम् आलोचना कृति "सरहपा" एक ऐसी कृति है जो महापडित राहुल के कार्य को आगे बढ़ाती है। "सत वैष्णव काव्य पर तात्रिका प्रभाव" तथा "हिदी काव्य की तात्रिक पृष्ठभूमि" के बाद "जाग मच्छन्दर-गोरख आया', तथा "जोगी मत जा" जैसे उपन्यासा के द्वारा उन्होने इसी तात्रिका-दर्शन को रचनात्मक "अर्थवत्ता" प्रदान की है। डॉ॰ धर्मवीर भारती ने "सिद्ध-साहित्य" पर शोध कार्य किया और मैने अपने शोध प्रबध "हिन्दी काव्य मे प्रतीकवाद' मे सिद्धो के प्रतीको का विवेचन करते हुए उन प्रतीका (यथा, सुरति, खसम, शून्य, सहज आदि) के स्वरुप तथा अर्थ-विस्तार को सतो तथा भक्तो म निर्धारित करने का प्रयत्न किया था जो भक्ति भावना तथा उनके 'समय-सदर्भ के अनुसार अपने 'अर्थ' का विस्तार करत है। डॉ॰ उपाध्याय की इस महत्त्वपूर्ण पुस्तिका म यदि सिद्ध-पतीकों की परम्परा को विवेचित किया जाता, तो मेर विचार से इस पुस्तक का और व्यापक परिदृश्य हो जाता। डॉ॰ उपाध्याय ने इस पुस्तक को लिखने के पूर्व एसा लगता है कि तात्रिक बौद्ध-दर्शन (सारनाथ से प्राप्त) का गहराई स अध्ययन ही नहीं किया है, वरन् उसे अपनी "सवेदना" मे ढाल लिया है जो उनके सृजन और चितन म एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यदि मै यह कहू कि तत्र दशन के सामाजिक और साधनात्मक काव्य रूपा को उन्हाने समान महत्त्व दिया है क्योंकि उनका यह स्पष्ट मानना है कि " सरह के लयबद्ध पद्य अपने कथ्य के वैचित्र्य स ध्यान आकर्षित करत है, परतु इन वज्रगीतिया मे चतना को यौन अनुभवा, भय और वीभत्सता के प्रसगा म अखड तथागत रखन के लिए रचना की गयी है,

अतएव जो सिद्धो की कविता को कविता नहीं मानते, वे सिद्ध-साधनात्मक कविता के प्रतीकत्व तथा रूपकत्व की उपेक्षा करते है।" (पृ॰46) इस प्रकार डॉ॰ उपाध्याय कविता के परिदृश्य को मात्र भाव तक सीमित न मानकर उसे चेतना के प्रत्यक रुप, प्रत्यक तरग, प्रत्येक वृत्ति तथा प्रत्येक अनुभव का व्यापक क्षेत्र मानते है और अपने मत की पुष्टि क लिए भौतिकी क सगठित-क्षेत्र सिद्धात तथा मनोविज्ञान के गस्टाल्ट सिद्धात का सहारा लेते है जो सृष्टि की घटनाओ और प्रक्रियाओ को एक 'सगठित-क्षेत्र' म स्थित मानता है। इसी के आधार पर चेतना यदि एक वृहद् क्षेत्र है तो उसके अनेक उपक्षेत्र है। इससे एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह भी स्पष्ट होती है कि कविता जो चेतना का व्यापक क्षेत्र है, उसे भाव के आधार पर शुद्ध कविता या शुद्ध भाव की कविता कहकर, चेतना के अन्य असामान्य, रहस्यमय एव अज्ञात उड़ानो, कौधो तथा अतिकल्पनात्मक साक्षात्कारो को कविता से निष्कासित नहीं किया जा सकता है।(पृ॰47) इसे मै 'अतीन्द्रीय प्रत्यक्षीकरण' (एक्स्ट्रसेन्सरी पर्सेप्शन) का क्षेत्र मानता हूँ जिसकी और परामनोविज्ञान क्रमश: अग्रसर हो रहा है। इसी के आधार पर डॉ॰ उपाध्याय जहाँ एक ओर सरह को साधना मर्मज्ञ कवि कहते है, वही वे उसे खण्डन मण्डापरक समूह या समाज के कवि भी कहते है। ये दोनो प्रवृत्तियाँ हमें सतो तथा भक्तों मे भी प्राप्त होती है। डॉ॰ उपाध्याय ने बड़े विस्तार एव गहन अर्न्तदृष्टि के द्वारा सरह के इस पक्ष को उजागर करते हुए उसे स्वय प्रकाश्यज्ञान या प्रातिभज्ञान (इन्ट्यूशन) का कवि कहा है, वह भावप्रधान कवि नही है वरन् अतरावलोकनजन्य स्वय प्रकाश्यज्ञानात्मक कवि है। (पृ॰ 49) सरह की यह कविता कूट और योगकविता है जो चमत्कारी है। यही कारण है कि यह कविता सपाटबयानी मे नहीं, वरन् वाणी की उलट से, वाग्कथन विधि से उत्पन्न होती है। सरह की कविता को मत्र-कविता भी कहा गया है जहाँ शब्द को 'मत्र' बनाकर वाह्य का आतरिकीकरण किया जाता है। मत्र चित मे प्रतिध्वनन (वाइब्रेशन) उत्पन्न करता है। (पृ॰58)। इस पूरे विवेचन को डॉ॰ उपाध्याय ने सरह के अनेक पदो एव गीतो क द्वारा पुष्ट किया है और सरह की कविता को शबरी की तरह आरण्यक कबीला-कन्या माना है जो सभ्य जटिलताओ से दूर, सपाट, खुरदुरी होने पर भी 'आभ्यातरीकृत वाणी' है, सामाजिक विसगतियो पर प्रहार करती हुई, चेतना के अचेतन-अवचेतन पटलो को खोलती हुई, ब्राह्मणवादी भेदभावग्रस्त समाज पर व्यग्य करती हुई, सरह की कविता चेतना के भिन्न रूपो को व्यक्त करती

है। यहाँ पर वासनाओ-भावनाओ का दमन नही वरन् उनका उन्नयन है।

इस बिंदु पर आकर सरहपा (सिद्ध) की साधना पद्धति को समझना जरूरी है, जो उनके चिंतन-सृजन क केंद्र मे है। सरह सिद्ध और कवि दोनो थे, और उन्होंने अपनी साधना को उसकी अनुभूतियो को कविता म बाँधकर सकेतित और प्रचारित किया है। यहाँ पर याग साधना द्वारा प्रवृत्तियो तथा वृत्तियो का दमन नहीं, वरन् उनका रूपातरण है। वासनाओ का क्षय या रूपातरण होने पर 'ससार' लुप्त हो जाता है तथा चित्त या चतना का इन नकारात्मक या रिपल्सिव वासनाओ के मध्य अपने को वज्र के समान दृढ़ करना होता है क्योंकि प्रदत्त वस्तु से सघर्ष करना ही, और उन पर विजय प्राप्त करना ही वज्रयान है। यहाँ द्वैत नही रहता है, यही महासुख की, निर्वाण की दशा है। इस वज्र साधना को सहज साधना भी कहा गया है, फिर ये साधनाए इतनी कठोर क्या है? इसका उत्तर डॉ॰ उपाध्याय मनोविश्लेपण के आधार पर देते है कि मनुष्य क अवचेतन और अचेतन में व्यक्तिगत एव जातीय भय, क्रोध, काम, जुगुप्सा, मद आदि मनोविकार सस्कार के रूप में एक 'निरन्तरता' क कारण ये मनोवृत्तियाँ मात्र वैयक्तिक न होकर इनका एक सामूहिक या "जातीय" रूप है। इनके उन्नयन या विरेचन (कैथार्सिस) के बिना चेतना विशुद्ध नही हा सकती है और शुद्धता के बिना मुक्ति या निर्वाण सभव नहीं है। (पृ॰19) इसे प्राप्त करने के लिए घोर एव कठोर साधनाओं की सृष्टि ही उस सहजयान को वज्रयान मे परिणत कर देती है। इस सहजता के आवरण मे इन साधनाओं (वामाचार, मद्यपान, मैथुन, श्मशान- साधना आदि) को प्रश्रय दिया गया जिस सिद्धो ने अपने तरीके स "अर्थ" दिया। यह सही है कि इन साधनाओं का प्रभाव आगे चलकर नकारात्मक ही पड़ा क्योंकि सामाजिक एव नैतिक स्तर पर यह एक सामान्य घटना न होकर एक विशिष्ट अदभुत घटना बन कर रह गयी जिसका नकारात्मक प्रभाव पड़ना ही था।

यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्त्री (अशिक्षित) का वाम-साधना में साध्य के रूप मे महत्त्व दिया गया, पर आग चलकर 'वह' 'साधनामात्र' वस्तु बनकर रह गयी। यह एक आम धारणा है कि वज्रयानी सिद्धा की साधना वाम (स्त्री) साधना थी, लकिन एसा नहीं है क्योंकि उनकी साधना में भय, जुगुप्सा, क्रोध, और रूप क जो प्रबलतम मनोविकार हैं उनका शमन या उनकी शुद्धि है। इसक पीछ मूल भावना यह है कि जो पतन का कारण है, वहीं उन्नयन का कारण हा सकता है। विष घातक हाता

है, पर उस विष को विधिवत् प्रयोग से शांत किया जा सकता है। यही कारण है कि तांत्रिक साधना में वीरता में जगत पदार्थ की शून्यता के बोध से एक 'स्तिथप्रज्ञ' की अवस्था तक पहुँच जाता है जबकि सन्यासमार्गी साधना में इनके दमन पर बल दिया जाता है। भय पर विजय के लिए साधक भयंकर स्थानों में निर्द्वन्द्व विचरता है श्मशान में शव-साधना करता है जुगुप्सा विजय के लिए अशुचि पदार्थों का सेवन करता है तथा मद विजय के लिए मादक पेयों का प्रयोग करता है आदि। यही कारण है कि सिद्ध योगी वर्जित जातियों (चाण्डाल डोम्बी आदि) वर्जित पदार्थों (मदिरा मैथुन आदि) निषिद्ध स्थानों (श्मशान) तथा अरमणीय कुरुप कुत्सित भयंकर शक्तियों भूत-प्रेत, चुड़ैल डाकिनी शाकिनी आदि की साधना करते हैं। डॉ॰ उपाध्याय ने इस तथ्य को मनोविश्लेषण के आधार पर विवेचित करते हुए उसके तात्त्विक रुप को भी महत्त्व दिया है।

डॉ॰ उपाध्याय का यह भी मानना है कि सरह पांडित्य के विरोधी थे निरन्तरता (औपचारिक शिक्षा से मुक्ति) पारदर्शिता और सरलता को महत्त्व देते थे। साधक को शिशुवत होना चाहिए। यह शिशुवत् होना जहाँ सरलता, निष्कपटता और भोलेपन का रूप है, वही वह साधक की उच्च चित्त-साधना का सूचक भी है। यही स्थिति विवेकानंद के गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस की भी थी पर उनका मार्ग सिद्धों से अलग था, उसमें भक्ति तथा देवी उपासना की आंतरिक ऊर्जा थी जो 'अंतरावलोकन' की उच्चतम् अवस्था थी। इसी से, सरहपा ने वादों या सिद्धान्तों का विरोध किया पर यदि गहराइ से देखा जाए तो उन्होंने भी एक दृष्टि या सिद्धांत ही रखा जो 'सहज साधना' का रूप है। सरह की भी एक अपनी 'छवि' थी चाहे वह विद्वता या पांडित्य से अलग हो। इस बात को डॉ॰ उपाध्याय नजरअंदाज कर जाते हैं।

सरह के विवेचन में डॉ॰ उपाध्याय व्यक्ति की गूढ़ रहस्यमय वैश्विक संरचना पर बल देते हैं। यह समाजवादियों के विचार के विरुद्ध है जो आर्थिक अभावों और असंगतियों को मात्र दु ख का कारण मानते हैं। कभी-कभी परिस्थितियाँ मनुष्य को एक निर्धारित ढाँचे में फिट नहीं कर सकती है। मनुष्य का चित्त ब्रह्मांड का एक रूप है, वह उसका "गुटका है। इसमें बड़े बड़े रहस्य है। (पृ॰29) दर्शन और मनोविज्ञान अभी चेतना के सारे रहस्यों को नहीं जान सके है और इस बिंदु पर आकर डॉ॰ उपाध्याय का मत है कि वस्तुवादी विज्ञानों की प्रविधियों की सीमाएं है, पर "आंतरिक

अवलोकन" (इन्ट्रास्पेक्शन) की कोई सीमा नहीं है क्योंकि चित्त एकाग्र या तन्मय होकर द्रव्य को क्षुब्ध कर मनमानी सृष्टि कर सकता है, तभी योगज पदार्थों मे विश्वास किया जाता है। इस प्रकार वज्रयानी सिद्ध गौतम (आदि बुद्ध) के मत को उलट देता है जो यह मानता है कि तृष्णा का दमन करके तभी दु ख से मुक्ति प्राप्त कर सकते हो। मै इस परिदृश्य के प्रकाश म व्यक्ति की चित्त-शक्ति को "आध्यात्म" का नाम देना चाहूँगा जिसे मात्र धर्म से जोड़ना उचित नहीं है। आध्यात्म की यह परम्परा हरेक सस्कृति म किसी न किसी रूप मे प्राप्त होती है। डॉ॰ उपाध्याय ने इस पुसतक के माध्यम से इसी परम्परा को "अर्थ" दिया है जिसने ऐतिहासिक प्रक्रम म दलितो, शोषितो तथा निम्न वर्गों को "सामाजिक न्याय" देने का भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का एक अपना अलग स्थान है, जो चेतना की द्वन्द्वात्मकता का, उसकी अबूझ उड़ानो-कौधो को मानवीय अस्मिता से जोड़कर, उसे एक व्यापक फलक प्रदान करती है।

❑

डॉ॰ रमेश कुन्तल मेघ-
मध्यकालीन साहित्य का विवेचन

समकालीन आलोचना के व्यापक परिप्रेक्ष्य म एक तथ्य यह प्रकट होता है कि आलोचना-प्रकारा का बहुविधि विकास विचार-सवेदन के भिन्न आयामा का नए सदर्भो म उजागर करता है और साथ ही आलोचना के अत अनुशासनीय रूप को प्रस्तावित करता है जो कृति या रचनाकार के भिन्न रचनात्मक सदर्भो को उद्‌घाटित कर उसके आधार पर मूल्याकन करता है [1]। यहा पर पूर्वाग्रहा का प्रभाव भी अपेक्षाकृत कम हो जाता है। ज्ञान एव अनुभव के बहु-आयामी विकास के कारण आज की आलोचना इनस किसी न किसी रूप मे प्रभावित हाती है और इस प्रकार आलोचना-प्रकारा (यथा सौन्दर्यशास्त्रीय, मार्क्सवादी, मिथकीय, शैली तात्त्विक, सरचनावादी, समाजशास्त्रीय आदि) का सम्बन्ध निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है एक आलाचक, मेरी दृष्टि स, इनका आवश्यकतानुसार सापेक्ष आधार ले सकता है जो कृति या रचनाकार के समग्र मूल्याकन म सहायक हो। इसके अतिरिक्त ज्ञान और सवेदना के अन्य सप्रत्यया एव आशयो को भी इसम शामिल कर सकता है(जैस मिथक, टाटम, दिक्-काल, ब्रह्माड रचना, विज्ञान बाध के आयाम आदि)। इस दृष्टि से, आलाचना का जो व्यापक रूप मुखर हाता है, वह मेरी दृष्टि म अन्त अनुशासनीय अभिगम

---

१ दख मरा लख- अत अनुशासनीय आलाचना की पहल आलाचना (८४) म।

की माँग करता है जो सृजन के भिन्न सदर्भों को एक जैविक रूप प्रदान कर सके।

इस दृष्टि से, आज के आलोचकों में एसे कुछ ही आलोचक हैं जो इस अभिगम का व्यापक अर्थ दे सके हैं। मेरे विचार में ऐसे कुछ आलोचक जो अन्त अनुशासनीय दृष्टि को 'अर्थ' दे सके हैं वे डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० चद्रकात बाँदिवडेकर, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ तथा डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अन्य आलोचकों में यह दृष्टि नहीं है, लेकिन जितना व्यापक सदर्भ इन चार आलोचको में प्राप्त होता है वह मेरी दृष्टि में, अन्य समकालीन आलोचकों में नहीं। अत मैं इस लेख में डॉ० मेघ की आलोचना-पद्धति को लेना चाहूँगा और विशेष रूप से उनके मध्यकालीन साहित्य एव संस्कृति के विवेचन और मूल्यांकन को इसलिए लेना जरूरी है कि आज की आलोचना में मध्यकालीन समय के साहित्य और संस्कृति को कम ही आलोचकों ने 'नयी दृष्टि' से देखा है, अधिकतर समकालीन आलोचक आधुनिक काल तक ही सीमित रहे हैं। इस दृष्टि से डॉ० रमेश कुन्तल मेघ एक ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने 'नए ज्ञान' की सापेक्षता में मध्यकालीन साहित्य का अन्त अनुशासनीय विवेचना प्रस्तुत की है। इस विवेचन और मूल्यांकन में मिथक का विवेचन तो केन्द्र में है, लेकिन इसके साथ आवश्यकतानुसार इतिहास, धर्म मनोविश्लेषण, नृतत्त्वशास्त्र तथा दर्शन का सहारा भी लिया गया है जो मध्यकालीन साहित्य के भिन्न प्रेरक तत्त्वों आशयों तथा आद्यरूपों को एक 'नया' परिदृश्य प्रदान करते हैं। डॉ० मेघ ने मिथक विवेचन के अन्तर्गत बिम्ब, फान्तासी, दिवास्वप्न, रूपक, प्रतीक मानसिक रचना, आद्यरूपों तथा सकेतों को मिथकीय रूपों में अन्तर्निहित माना है, जो मानव जाति के समग्र इतिहास को, उसकी द्वन्द्वात्मक गति को 'अर्थ' प्रदान करते हैं। इसी से मिथकों के बारे में कहा गया है कि "ये रूप और भाव, शब्द और अर्थ बिम्ब और प्रतीक, भाव और कार्य के द्वन्द्व में बँधे हैं" (साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, मेघ)। यह द्वन्द्व मिथकीय सरचना में होता है और दूसरा और यही द्वन्द्व ऐतिहासिक प्रक्रिया में होता है। डॉ० मेघ ने मिथक सरचना में प्रतीक को अधिक महत्व दिया है क्योंकि इन्हीं को आधार लेकर हम मिथकों के द्वारा मानव के प्राग् इतिहास को आधुनिक अनुसधान करते है। डॉ० मेघ ने यह माना है कि चिति प्रक्रिया में प्रतीक अकेला न होकर "प्रतीक पुंज" के रूप में एक शृंखला के रूप में प्राप्त होता है। मिथकत्यक की दृष्टि से यही

'प्रतीक-पुंज' रूपक, कथारूपक(एलीगरी) दिवास्वप्न बिम्ब फान्तासी, किमाकार आदि रूपो मे परिवर्तित हो जाया करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दिवास्वप्न, बिम्ब आदि चिति प्रक्रिया के भिन्न प्रकार है और डॉ॰ मेघ ने इस सारी प्रक्रिया को सौन्दर्य से जोड़ कर उनके सृजनात्मक महत्व को सकेतित किया है। इस दृष्टि से डॉ॰ मेघ की "मध्ययुगीन रस-दर्शन और समकालीन सौन्दर्य बोध", "क्योंकि समय एक शब्द है", "अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा", "साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक" तथा "मनखजन किनके" ऐसी कृतियाँ है जो समग्र रूप से अत अनुशासनीय सरोकारो को साहित्य-विवेचन के लिए आवश्यकतानुसार आधार बनाती है। मध्यकालीन साहित्य एव सस्कृति के अध्ययन के पीछे उनकी यह 'दृष्टि' काम करती है जिसका विवेचन अपेक्षित है।

मध्यकालीन साहित्य के विवेचन मे डा॰ मेघ ने मूलत मिथकीय पैटर्न्स को प्रस्तुत किया है जो एक ओर चेतन, अचेतन और अवचेतन क्रियाआ की सम्मिलित अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर यह साहित्य वैयक्तिक एव सामूहिक अचेतन या मन का रूप है। इस विवेचन मे वे इतिहास, तत्वशास्त्र, धर्म, दर्शन, मनोविश्लेषण तथा मार्क्सवादी विचारो को अपना आधार बनाते है, लेकिन उनका रुझान सामाजिक-ऐतिहासिक सदर्भो की ओर अधिक रहा है अथवा मे यह कहूँ कि वे युगीन-सास्कृतिक पर्यावरण को एक वैज्ञानिक आधार देते है, वे जिन प्रमाणो, तथ्यो और साक्ष्यो को प्रस्तुत करते है, वे निरीक्षण एव अध्ययन की व्यापकता को प्रकट करते हैं। इस दृष्टि से "व्यापक प्रतीकात्मकता" को वे समाज की अजस्त्र परम्पराओ, मिथकीय प्रारूपो तथा रीति रिवाजो से जोड़ कर देखते है और इन प्रतीको को सास्कृतिक प्रक्रिया मे निम्न श्रेणियो मे रखते है

(१) हिन्दू, बौद्ध, जैन और मुसलमान (सूफी) पौराणिकता के प्रतीक।

(२) उनके परे अतिप्राचीन अन्धविश्वासो के प्रतीक।

(३) कल्पना और रोमास से पूरा यात्रा-प्रतीक, जिसमे साहस एव अनुसधान की आकाक्षा निहित है।

यदि गहराई से देखा जाए तो ये भिन्न प्रतीक श्रेणियाँ निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है। प्रागैतिहासिक प्रतीको की कोटि मे वैदिक और प्राग्वैदिक प्रतीकात्मकता (अग्नि, वायु, वरुण, मेघ आदि) आती है। ये प्रतीक काफी है जो कला-साहित्य में प्रयुक्त होते रहे है। उदाहरण के तौर पर कमल एक

ऐसा प्रतीक है जो भारतीय परम्परा मे अर्थ प्राप्त करता है। अजन्ता के भितिचित्र, बोधिसत्त्व, सरस्वती की सरचना मे कमल का व्यापक अर्थसदर्भ है जो कलाकार की चेतन-अचेतन क्रियाओ का एक "सस्कारित" रूपाकार है। इसी प्रकार सूफी कथाओ ने यात्रा-प्रतीकार्थ का विस्तार किया जो डा॰ मेघ के अनुसार "रहस्य-प्रतीको का रोमांटिक विस्तार था।" नायको द्वारा दूर-दूर देशो के यात्रा-प्रतीक नारियो के खाज के प्रतीक, मानवीय अवस्थाओं के प्रतीक आदि मध्यकालीन काव्य एव कला मे देखे जा सकते है। ये यात्रा-प्रतीक रोमांटिक काव्य म भी प्राप्त होते है जैसे प्रसाद के प्रेमपथिक तथा महादेवी वर्मा की प्रिय-मिलन की यात्राओं मे बौद्धिकता का समावेश होते हुए भी उनके यात्रा प्रतीक भाव-सवेदन से अप्लावित है।

मध्यकालीन साहित्य मे फन्तामी और दिवास्वप्नो का अपना विरोष हाथ रहा है और डा॰ मेघ ने इस तत्त्व को महत्त्व दिया है जो सृजन-प्रक्रिया मे सहभागी रहे है। सृजन के क्षणो मे अचेतन के स्तरों से निकल कर हमारे विचार तैरने लगते है। ये "तैरते विचार" प्रवाहित रहते है और जब फैन्टसी अपना ताना-बाना बुनती है, तो ये तैरते विचार बिम्बो एव प्रतीको मे स्थिर हो जाते है। जितने भी अधिक काव्यात्मक रूपाकार होगे, उतने ही ज्यादा ये तैरते विचार। डॉ॰ मेघ ने इन रूपाकारो का रूप बहु आयामी माना है और जिस रचनाकार मे ये रूपाकार जितने अधिक एव अर्थवान् होगे, वहाँ पर "साहचर्य" का उतना ही प्राबल्य होगा। जिस कलाकार मे जितनी गहरी सवेदनाएँ, व्यापक ज्ञान-अनुभव, नाना रुचियाँ और अनेक सस्मरण होंगे उसकी कला में "साहचर्य" उतना ही प्रभावशाली होगा। (मनखजन किनके, पृ॰४०) तुलसी सूर, कबीर आदि कवियो मे यह "साहचर्य" न्यूनाधिक रूप म देखा जा सकता है क्योंकि ये सभी कवि अपने समय के व्यापक ज्ञान-सवेदन के भिन्न "साहचर्यों" से गहरे जुड़े हुए थे।

डॉ॰ मेघ ने सिद्धो-नाथो का जो विवेचन किया है, वह मूलत मनोसामाजिक एव ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को लिए हुए है। एक ओर तो उनका अचेतन-चेतन से उद्भूत वह मन जो आर्यो, मगोला तथा आदिवासिया के आशाया एव विश्वासो की एक ऐसी 'खिचड़ी' उत्पन्न करता है जो क्रमश वीभत्स, भयावह और भिन्न वामाचारी मुद्राओं से युक्त होकर समक्ष आता है। दूसरी ओर, उनकी सामाजिक स्थिति सामतीय व्यवस्था म दास प्रथा की

थी क्योंकि ये सिद्ध दस्तकारी तथा आदिम प्रकार के उद्योगों से सम्बन्धित थे जिसे डॉ॰ मेघ आदिम साम्यवाद का रूप कहते है। इनकी उत्पादन शक्तिया बेहद आदिम थी। इसमे इन्होंने विराटीकृत सिद्धियॉ प्राप्त की थीं। असल मे इनमे कौशल और सिद्धि का एक अद्भुत समन्वय था। इस प्रकार ये सिद्ध जादुई क्रियाओं के द्वारा एक ऐसी साधना को जन्म देते है जो अपने मे 'चमत्कार' भी है और साधना भी जिससे समाज मे उनका स्थान एक यातुक के समान हो गया। डॉ॰ मेघ इसे एक अन्य हाशिए से भी जोड़ते है और वह उस समय की जातीय व्यवस्था जिसमे ब्राह्मण परम्परा का उत्थान तथा भौतिकवादी दर्शनो का उच्छेद था। सामतवादी व्यवस्था मे भौतिक कार्य एव शारीरिक सुख हीन माने जाते थे ये सिद्ध तो पेशे व जाति दोनो दृष्टियो से 'हीन (हीनयान) थे। अत इन्होंने अघोर (वीभत्स) तथा कापालिक (अशुद्ध) के प्रति प्रतीको को लेकर आत्मा के बजाय मानव काया को (पिंड मे ब्रह्मांड) ब्रह्मानद के स्थान पर महासुख को तथा अमृत के बजाय रस को महत्त्व दिया और इस प्रकार हम सिद्धो के रूप मे एक प्रतिवादी (एंटी थीसिस) परा सस्कृति की रचना पाते है जिसका आर्थिक मूलाधार छोटे-छोटे शारीरिक कर्म एव दस्तकारी है। (मनखजन किनके पृ॰४८) यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि योग की परम्परा का पूरा विकास क्या आर्थिक था उसके पीछे चेतना की ऊर्ध्व स्थिति का कोई योगदान नहीं था। डॉ॰ मेघ ने मनोसामाजिक आर्थिक पक्ष को दिया है जो एक नयी दृष्टि है पर पूरी नाथ-सिद्ध परम्परा को आर्थिक आधार देना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है। यह तत्त्व एक महत्त्वपूर्ण कारक तो अवश्य है, पर सभी कुछ नहीं।

एक दूसरा ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि सरह गोरखनाथ तथा मीनपा आदि सिद्ध और नाथ शैव प्रभाव के अन्तर्गत आते है और इस प्रकार शैव-दर्शन का जो रूप इनमे समन्वित रूप मे विकसित होता है वह हठयोग की ओर अग्रसर होता है और पुन शुद्धि' और 'योग' के मार्ग को ग्रहण करता है। यहा गुह्य अनुष्ठानो तथा नारी सभोग को स्थान नही दिया गया। इस प्रकार शैव हठयोगियो ने सहज समाधि को तथा वैष्णव सतो ने 'सहज भाव' को मान्यता दी। सिद्ध जो जन मानस से कटकर सामतो के दरबारो से जुड़े तो वे धीरे-धीरे अपनी 'चर्या' से भी दूर होते गए और पाखडी भ्रष्ट होने लगे। जन समूह मे पुन जुड़ने की शुरुआत सतो भक्तो और सूफियो ने की। इस समय मुस्लिम सामतवाद प्रबल हो गया था। डॉ॰ मेघ यहाँ पर एक तथ्य को नजरअदाज कर जाते है कि सामतवाद के इस

दौर मे एक सास्कृतिक हिन्दू-मुस्लिम समन्वय का आरम्भ भी होता है जा अग्रेजो के आने पर टूटता है। और कूट-राजनीति (अग्रेजो) के द्वारा यह खाई बढ़ायी जाती है। इसी के साथ एक तथ्य यह भी है कि हठयोग, तत्र के अनेक प्रतीक सतो-भक्तो ने भी ग्रहण किए, लेकिन इन प्रतीको की जटिलता एव कठोरता को उन्होने भक्ति-राग तत्त्व से आप्लावित कर प्रस्तुत किया जैसे सुरति, निरजन अमृत आदि। इसका विवेचन मैने अपनी पुस्तक "हिन्दी कविता मे प्रतीकवाद" मे किया है।

डॉ॰ मेघ ने इन सिद्धो के विश्लेषण से एक महत्त्वपूर्ण सत्य की ओर सकेत किया है कि इन्होने प्राकृतिक पचतत्त्वो की भी विचित्र रूप से समान पच तत्वो की एक भोगवादी एव वासनामूलक परिकल्पना की, जिसमे मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन-ये पाँच तत्व प्रमुख हो गए। दूसरी ओर सिद्धो ने शरीर रचना विज्ञान (एनाटमी) के मेरुदण्ड एव मस्तिष्क (ब्रेन) के चारो ओर शरीर-शास्त्र (फिजियालोजी) तथा स्नायुचक्र-शास्त्र (न्यूरालोजी) का एक विचित्र सूक्ष्मशरीरी विकास किया। इन्होने हठयोग साधना मे मुद्रा-मैथुन साधना को घुलामिला कर एक विचित्र 'रसायन' तैयार किया, जिसमे विराग और महाराग, चित्तनिरोध और गुह्य-भोग का अद्‌भुत समाहार था। यदि गहराई से देखा जाए तो पूरा मध्ययुग विषयानद (सिद्ध, रीतिकाव्य,) ब्रह्मानन्द और रसानद (भक्त एव सत) की कामशास्त्रीय, दर्शनशास्त्रीय एव काव्य-शास्त्रीय अवधारणाएँ परस्पर स्पर्द्धा एव तुलना करती हुई प्रतीत होती है। (मनखजन किनके, पृ॰५६-५७) डॉ॰ मेघ का यह निष्कर्ष एक विस्तृत अध्ययन एव मनन का परिणाम है जो मेरे विचार से पूरे मध्ययुग की जैविक-सवेदना को सकेतित करता है। यदि गहराई से देखा जाए तो सिद्धो का रहस्यवाद मूलत जादुई मानसिकता का अथवा दूसरे शब्दो मे प्रागृतार्किक (प्री लॉजिक) मानसिकता को व्यक्त करता है जो मेरे विचार से मानव-विकास की एक आधारभूत स्थिति है।

इसके बाद डॉ॰ मेघ भक्तिकाल का विश्लेषण करते है और कुछ नयी मान्यताओ को लेकर आते है जो उनकी बहुआयामी दृष्टि का फल है। भक्तिकाल (छायावाद तथा आगे भी) के भिन्न मिथको, प्रतीको तथा आद्यरूपो को समग्र रूप मे लिया जाय, तो एक सास्कृतिक पक्ष उभर कर आता है। सस्कृतियो से टकराव भी होता है, विस्तरण भी और समन्वय भी। इस टकराव एव विस्तरण से 'सकट' की स्थिति उत्पन्न होती है, तो ऐसे समय म मिथका का "विस्फोट' होता है तब समाज की अर्थीय व्यवस्था के

छिन्न-भिन्न पैटर्नों को कलाकार, क्रांतिकारी, दार्शनिक आदि एक नयी सरचना मे रूपातरित करते है। भक्ति-काल और भारतेन्दु, भगतसिह और गाँधी ऐसी ही सरचनाओ को अर्थ देते है। (साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, पृ०२१०) इस प्रकार, मिथक यथार्थ से पलायन न होकर सामाजिक समूहा की सचयित उपलब्धियाँ है। ऐसी उपलब्धियाँ हमे भक्तिकाल म प्राप्त होती है।

डॉ० मेघ ने भक्तिकाल के सन्दर्भ मे कृष्ण-राम काव्य के उन 'पैटर्न्स' को खोजने का प्रयत्न किया है जो इन काव्यो मे अन्तर्निहित है। मथुरा मे यक्ष, नाग आभीर, अहीर ये सभी टोटमिक जातियाँ थी और यादव (कृष्ण) ने नाग (कालिया नाग) को वश मे करके एक प्रकार से उसे अपने गोत्र मे शामिल कर लिया। यहाँ नागकुल अहिराज (वासुकि) बालकृष्ण की रक्षा करता है (कोई सरदार) जब वासुदेव उन्हे मथुरा से गोकुल ले जाते है। अत आभीर और नाग जातियो का ग्राम्य लोक 'सूर' मे है। डॉ० मेघ के अनुसार उन कबिलाई जातियो के आदिम उभार मे शक्ति और काम, मासलता और उन्मुक्तता परिलक्षित होती है। आगे चलकर इसमे शक्ति,शील और सौन्दर्य के अभिजात गुण भी समा गए जो कृष्ण एव राम काव्य मे एक सास्कृतिक बिम्ब उपस्थित करते है। यह बिम्ब एक द्वन्द्व को भी प्रस्तुत करता है। वह यह कि यदुवंशियो (राष्ट्रकूट-७००-८०० ई०) प्रतिहारो तथा नागवंशियो के बीच श्रीकृष्ण उभरते हुए मिलते है जो नागवश पर प्रभुत्व स्थापित करते है और अपने बाहुबल से गोवर्धन के पहाड़ो पर अपना वर्चस्व स्थापित करते है। (मन-खजनकिनके, पृ०१०३) इस प्रकार, कृष्ण गाथा का एक मनोसामाजिक-सास्कृतिक पक्ष उभरता है जो हमे कृष्ण-राम के उस रूप के समक्ष लाता है जो जातीय द्वन्द्व से उद्भूत "लीलाओ" का स्वरूप है। इसमे क्रमश अध्यात्म, शील तथा सौन्दर्य के समावेश से "संस्कृति का मिथकशास्त्र" निर्मित होता है जो भक्तिकाल के केन्द्र मे है।

डॉ० मेघ ने कृष्ण और राधा के क्रम विकास मे आभीरो के योगदान को स्वीकार किया है जिसे आनन्द-कुमारस्वामी सीथियन जाति का मानते है, जिनमे स्वच्छन्द प्रेम, टैबू का अभाव तथा सघर्षजन्य रोमास का विकास होता है जो राधा-कृष्ण, राधा-गोपी तथा गोपी-कृष्ण के सम्बन्धो तथा लीलाओ मे स्पष्ट देखा जा सकता है। शायद यह अधिक ठीक है कि मथुरा की यक्षिणियाँ, नाग-रमणियाँ तथा आभीर कान्ताओ मे मातृसत्तात्मक सामूहिकता के कारण लौकिक प्रणयाकर्षण का रूप उभरा हो और राधा

उनका पहला आद्यरूप रही हो। यह लौकिक परम्परा कृष्ण-काव्य के केन्द्र मे रही, जो दिव्य और अलौकिक प्रारूपो मे क्रमश ढलती रही। दूसरी ओर राधा मे आदिम कबीलो को उन्मुक्त ऊर्जा (आल्हादिनी शक्ति) का जो रूप मिलता है, वह एक प्रकार से आर्य अभिजात मूल्यो का उल्लघन है और यह आद्य-आकृति-बध (आरकीटाइपल पैटर्न) सामूहिक अवचेतन मे आज तक सुरक्षित है। इस प्रकार कृष्ण गोपी, राधा इतिहास, मिथक और धर्म के एक अद्‌भुत जैविक आद्य आकृतिबध हो गए। यही प्रक्रिया राम कथा की भी है जहाँ कबिलाई मानसिकता (वानर, ऋक्ष आदि) को राम ने अपने हित मे प्रयुक्त कर रावण जैसी शक्ति का सामना किया। डॉ॰ मेघ ने इसकी ओर सकेत नही किया है। यह सही है कि ये दोनो मिथक-कथाए आदर्श और यथार्थ के उस रूप को व्यक्त करती है जहाँ आदर्श एक छोर पर है (रामकथा) तो यथार्थ दूसरी छोर पर (कृष्ण कथा)। ये दोनो कथाएँ विलोम होते हुए भी, जातीय 'साइकी' मे समान रूप से अपनी "अर्थवत्ता" बनाए हुए है।

113927

इसी सन्दर्भ मे डॉ॰ मेघ एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर सकेत करते है कि शिव और कृष्ण के आदिरूप एक दूसरे मे घुलमिल गए है। यही नहीं, शिव ने बुद्ध को आत्मसात् किया जो नाथो-तांत्रिको मे अपना स्वरूप विकास करता है। शिव ने दक्षिण पूर्व एशिया मे बुद्ध तथा राम के साथ मिलकर एक वृहत्तर भारतीय सस्कृति का निर्माण किया। कृष्ण-धुरी के सन्दर्भ मे शिव कामजयी एव कामभोगी भी है। कृष्ण भी योगेश्वर एव बहुवल्लभ है। शिव नटराज है तो कृष्ण नटनागर। शिव गरलपायी है तो कृष्ण कालिया नाग को वश मे करते है। कृष्ण-राधा का चरमोत्कर्ष (प्रेम) अर्धनारीश्वर का रूप है। शिव के साथ सती व पार्वती है तो कृष्ण के साथ राधा और रुक्मिणी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिव और कृष्ण के 'मिथकत्व' (माइथीम्स) का उद्‌गम एक जैसा है जहाँ तक लोकचित्त एव लोक-जातियो का प्रश्न है। इससे इतिहास की उस प्रक्रिया का सकेत मिलता है जो लोक सस्कृति के द्वारा विकसित होती है। आर्यों के साथ इस 'शिवत्व' का समाहार एक ऐसी ही सस्कृति की ओर सकेत करता है जो मिथको और आद्यरूपो के आपसी द्वन्द्व एव सगति (एंटीथीसिस एव सिन्थीसिस) से एक "जैविक-सस्कृति" को आकार देता है। सूर, तुलसी, निराला (राम की शक्तिपूजा) किसी न किसी रूप मे शिवरूप के प्रति आकर्षित थे, उसके शक्ति रूप के प्रति आश्वस्त थे, लेकिन उसके

योगपरक रूप के प्रति कुछ विरोधी थे। (मनखजन किनके, पृ० १०७-१०८) इस प्रकार कृष्ण-भक्ति के अन्तर्गत एक ओर यक्षा, नागा तथा आभीरो की 'रतिदेवी' (राधा) का केलिससार है, दूसरी ओर शिवधुरी के योग और भोग का काम समारोह तथा तीसरी ओर, भागवत-धारा मे चैतन्य तथा वल्लभसम्प्रदायो का माधुर्य वैष्णवीं भक्ति का सौन्दर्य और शृङ्गार।

सूरदास के सूरसागर मे उपर्युक्त रूप तो प्राप्त होता ही है, लेकिन इसके साथ-साथ इसम सेवा-पद्धति एव भोग-पद्धति के अनेक कर्मकाण्ड एव सस्कार इस बात को सकेतित करते है कि सूर इनसे बँधे थे और साथ ही, मिथकीय भूगोल (वृन्दावन, बरसाना, गोवर्धन आदि) को नित्य गोलोक मान लेने पर कृष्ण-भक्ति (कुछ सीमा तक राम-भक्ति भी) काल की धुरी से हटकर नित्य या अनन्त ही नहीं हुई, वरन् देश की धुरी से भी उठकर "पवित्र" और "दिव्य" हो गयी। यहाँ पर डॉ॰ मेघ का कथन है-"यही मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति सूरदास की यूटोपिया का पचकचुकहीन देशकाल है जो मध्यकालीन देश-काल में एक रगमच की तरह से अपना निजी ससार, अपनी नीजी लीलाएँ, अपनी निजी रग योजनाएँ रचा रहा है। सूर की इस यूटोपिया की समाजशास्त्रीय व्याख्या अभी तक प्रतीक्षित है।" (मनखजन किनके, पृ०१२४-१२५) इसमे सामन्तीय-समाज का विलास भी ऐश्वर्य बना हुआ है (अष्टयाम), इसम कृपक समाज की प्रकृति का भाव-रूप है, इसमे गोचारण समाज की स्वच्छन्दता तथा तन्मयता है तथा इसमे भक्ति का वह उज्ज्वल लोक भी है जिसे इतिहास ने धर्म-साधना का रूप प्रदान किया है। इस प्रकार भक्तिकाल मे ये सभी तत्व "आद्यरूपा के गुच्छ" का निर्माण करते है और मेरे विचार से इस विवेचन म डॉ॰ मेघ कृष्ण-काव्य की पृष्ठभूमि मे "कृपक ग्रामीण समाज", इसके देवीकरण की प्रक्रिया तथा सामन्तीय-समाज के रूपा का विश्लेपण कर, कृष्ण-काव्य (भक्तिकाल) को एक नया आयाम देते है।

डॉ॰ मेघ ने पुरुप मे नारी चित् की खोज के प्रसग को एक *मनोवैज्ञानिक आधार दिया है। चैतन्य की भक्ति राधाभाव की थी और* राधावल्लभ सप्रदाय इसी का विकास है। एक किवदती है कि श्री कृष्ण ने राधा-प्रेम को स्वय अनुभव करने के लिए चैतन्य के रूप म अवतार लिया था। राधा-भाव स भक्ति करन का तात्पर्य नारीचित् के रहस्य केन्द्रो को उद्घाटित करना है अर्थात् आद्य चिरन्तन, प्राकृत, स्वच्छद नारीत्व (फेमिनटी)

को स्वय सिद्ध करना। यह पितृ-विम्ब का मातृविम्ब मे एक प्रकार का अन्तर्भाव है अर्थात् एक पुरुष द्वारा अपने अत करण में स्थित सुषुप्त नारी-विम्ब को उद्‌बुद्ध करना है। इसके विलोम स्तर पर मीरा की स्थिति है जो नारी-विम्ब मे पुरुष-विम्ब का साक्षात्कार करती है अथवा उसके रहस्य केन्द्रो का साक्षात्कार कराती है। नारी और पुरुष का यह द्वन्द्व और सापेक्ष सघान मानव-जाति के मनोवैज्ञानिक इतिहास का एक प्रमुख तत्त्व है जो सस्कृति के आद्यरूपात्मक पैटर्नों मे दखा जा सकता है। नारी के स्तन मध्यकालीन कला और साहित्य मे काम सुख के अतिरिक्त मातृत्व से भी मंडित रहे। सूर ने शायद इस मातृत्व रूप को पहली बार अर्थ दिया। भारतीय कला मे यक्षिणिया तथा रमणिया के पीन-स्तन कामुकता और मातृत्व को घुला-मिला देते है। कई शताब्दियो के कामुक निर्वासन के बाद अकेले सूर एक किशोरी ग्रामीण युवती को अपनी अनुरागपूर्ण, स्वाभाविक अस्मिता के सामने वापस ले आये है। सूर ने एक दूसरा भेद भी खोला; युवती गोपी तथा किशोर कृष्ण को मिलाकर उन्होंने उभयलिगी "नारीनटनागर" की अभिनव अनुभूति की। सारे सगुणकाव्य मे इन्द्रिया के मासल भाग को सूर के कृष्ण तथा गोपियों ने अनुभव किया। सूर ने नारी के शरीर का, नारी की साइकी का तथा नारी के आत्मसम्मान का पुनरुद्धार किया। (मनखजन किनके, पृ०१६५-१६६)। मेरे विचार से डॉ० मेघ की यह व्याख्या सूर-काव्य को एक नया परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है जो कामुकता और मातृत्व के घुले-मिले रूपाकार को व्यक्त करती है। इस प्रकार के विश्लेषणों के द्वारा हम मध्ययुगीन कला और साहित्य को व्यापक परिप्रेक्ष्य ही नहीं देते है, वरन् मनोसामाजिक सदर्भ के द्वारा समूचे मध्यकाल की सास्कृतिक विरासत को हृदयगम कर सकते है।

मध्यकाल (उत्तर) के साहित्य और कला मे यह नारी विम्ब (कामुकता, मातृत्व, प्रियत्व) मूलत "फमिनिटी" का दर्पण है। ऐसी नारी-आकृति का रीतिकाल से रूढ़ि या परिपाटी (रीतियों और लक्षण) के रूप म आदर्शीकृत किया गया जो रीतिकाव्य, शिल्प तथा चित्र म न्यूनाधिक रूप में उकेरे गए। यही कारण है कि रीतिकाव्य लक्षणमय हो गया, चमत्कारिक हो गया, जो सामतीय प्रभाव का कारण है। डॉ० मेघ के अनुसार, कला की दृष्टि से रीतिकाव्य 'शिल्पमय' और 'चित्रोपम' हो गया। लेकिन ऐसी लाधव प्रविधि मे यह मुक्तको, अगों, ऋतुओं, भेदो आदि में 'खण्ड-खण्ड' हो गया। रीतिकाव्य के ऐतिहासिक एव वैयक्तिक चारित्र्य की ऐसी दशा हुई।

रीतिकाव्य के कवियो ने स्वकीया एव परकीया प्रेम के द्वन्द्व को तो क्रमश नायक-नायिका तथा राधा-कृष्ण के तादात्म्य म धुँधला कर दिया। इस तरह वे मध्यकालीन नैतिक चुनौती स बच निकले। लेकिन ये कवि समकालीन नहीं रह सके, क्योंकि १७-१८ शताब्दी म भी वे गुप्त साम्राज्यवाली आभिजात्य संस्कृति की रीतिधर्मी नकल करते रहे। अत व लक्षणा और लक्ष्या के चक्कर म अपना कवित्व प्रदर्शित करते रहे। अपन देश-काल की विडम्बना तथा राजनैतिक दबावो को वे महसूस नही कर सके। मै समझता हूँ कि यह विवेचन काफी सीमा तक सही है और डॉ॰ मेघ ने इसे ऐतिहासिक -सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है।

रीतिमुक्त कवियो म ज्यादा तथा रीतिबद्ध कवियो म कम ऐसे उदाहरण है जहाँ वे महज भावो की व्यजना कर सके है। अधिकतर परिवार के घेरे मे वे समाज को देख सके है जिसके केन्द्र म नारी है। सामतीय सस्कारा से कुठित नारी के सुख और स्वतत्रता का बोध केवल केलि म ही होना मूलत नारी की सामाजिक अपदशा का ही सूचक है। डॉ॰ मेघ का यह कथन कि मुझ जैसे आधुनिकता बोध वाले व्यक्तियो की रीतिकाव्य के प्रति ऐसी ही प्रतिक्रिया होगी जो "पडितरूढ़िया" वाली न होगी, वरन् उससे सामाजिक सदर्भो, सास्कृतिक पैटर्नो तथा प्रणय-प्रेम के स्वच्छन्द रूपो की तलाश होगी। (मनखजन किनक, पृ॰ ८५-८६) मेरे विचार से डॉ॰ मेघ ने इस तलाश को एक आधार दिया है, जिसके द्वारा हम रीतिकाव्य को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य म देख सकते है। रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियो की मानसिकता मे, उनके मनोराज्य म तथा उनकी मनोग्रन्थिया म स्पष्ट अन्तर था, तभी ये दोनो तरह के कवि नारीकेलि, प्रकृति वर्णन तथा प्रणय के अकन मे कमोबेश रूप म अलग है जबकि वे एक ही सामाजिक दशा म लिख रहे थे।

यहाँ पर डॉ॰ मेघ का यह मानना है कि इस पूरे काव्य को अश्लील करार देना, इसे पूरी तरह स सामतीय कह देना ठीक नही है। वस्तुत नारी शोभा का रहस्यमय नारी साइकी का तथा गोपनीय नारी ससार का एक ऐसा काव्य-मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा नीतिशास्त्र-को समकालीन कसौटिया की प्रशसा कर रहा है। डॉ॰ मेघ इस काव्य को "सम्पूर्ण" धर्मा न मानकर नखशिख बारहमासा, षड्ऋतु इत्यादि म खण्ड-खण्ड बँटा हुआ पाते है। इसीलिए इसम क्षण-क्षण चमत्कार, अग-अग अलकार खण्ड-खण्ड कवित्त, दोहे और सवैये है तथा खण्ड-खण्ड आचार्य और

कवि। यह मुद्राओ,अनुभावो का काव्य रहा है। जब यह कला-सास्कृतिक अनुभव "अश" वाला है तब हम हरेक कवित्त दोहे, सवैया आदि को एक-एक "वाचिक-समूर्ति" (वरबल आइकॉन) और "एस्थिटिक आर्टिफेक्ट" के रूप मे ले सकते है। डॉ॰ मेघ का यह विश्लेषण सीमित मानवीय अनुभव को गहराने वाले इस काव्य की बारीक सास्कृतिक सौन्दर्यात्मक पैटर्न की खोज करता है, जो रीतिकाव्य के अध्ययन की नयी दिशाओ की ओर सकेत है। डॉ॰ मेघ ने इस ओर मात्र आरंभिक सकेत किया है, जो मेरे विचार से एक महत्त्वपूर्ण आधारशिला है जिस पर अध्ययन के नए सदर्भो का प्रासाद निर्मित हो सकता है।

इस प्रकार, डॉ॰ मेघ का यह मध्यकालीन साहित्य एव सस्कृति का अध्ययन पूरे मध्यकाल के उन आयामो को क्रमश प्रस्तुत करता है जो कवि की साइकी को, मिथकीय आद्यरूपो, सौन्दर्यात्मक पैटर्नों, नारी बिम्ब के रूपो, गाप सस्कृति एव जातीय अन्तर्भेदन के नृतत्त्वशास्त्रीय रूपो, वाचिक समूर्तियो, पुरुष-नारी बिम्बो का सापेक्ष साक्षात्कार तथा काम-रति के लौकिक-दिव्य रूपो का सामाजिक सन्दर्भ आदि को एक तार्किक आधार ही नहीं देता है, वरन् हमारे सौन्दर्य-बोध को भी नया आयाम देता है। इस अध्ययन के पीछे स्पष्ट ही डॉ॰ मेघ की अत अनुशासनीय-दृष्टि की व्यापकता प्राप्त होती है जो मेरे विचार से उनकी आलोचना-पद्धति को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है।

❑

[4]

डॉ० नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि

समकालीन आलोचना के व्यापक परिपेक्ष्य का ध्यान मे रखकर एक बात स्पष्ट नजर आ रही है कि आज का प्रवुद्ध एव सहृदय आलोचक आलोचना को एक निरपेक्ष सत्ता के रूप मे न स्वीकार कर उसके सापेक्ष रूप को किसी न किसी रूप मे सार्थकता प्रदान करता है। इस सापेक्षता मे आलोचना और साहित्य की स्थिति 'केन्द्र' मे है क्योंकि उसकी एक अपनी "स्वायत्तता" है और उसकी इस स्वायत्तता की सापेक्षता म ही अन्य सदर्भो का निर्धारण किया जाना आवश्यक है। इसे ही साहित्य और आलोचना की "सापेक्ष-स्वायत्तता" कहते हे और जहाँ तक डॉ० नामवर सिह का प्रश्न है (यही स्थिति रामविलास शर्मा, विश्वभरनाथ उपाध्याय, राहुल, बादिवडेकर तथा शभुनाथ आदि आलोचको की कामावेश रूप मे है), वे आलोचना को इसी रूप म लेते है। यही कारण है कि वे "शुद्ध साहित्यिक मूल्यों" के स्थान पर लीविस क इस मत क ज्यादा निकट है (और मुक्तिवोधा के भी) कि लीविस अपने नैतिक वोध के अन्तर्गत साहित्यिक और साहित्येतर दोनो प्रकार के मूल्यो को समाहित कर लेते है। उन्होने इलियट द्वारा प्रस्तावित 'शुद्ध मूल्यों' की बात को अस्वीकार करते हुए यह स्पष्ट कहा है" शुद्ध साहित्यिक-मूल्य क्या है? मेरा दृढ़ विश्वास है कि साहित्य का मूल्याकन साहित्य के रूप मे होना चाहिए, किसी और चीज के रूप मे नहीं। साहित्य का ऐसा मूल्याकन होने पर ही समाजविज्ञान एव मनोविज्ञान उससे जो चाहते है, सीख सकते है।"(कविता के नए प्रतिमान, पृ० २२८) इससे भी

अधिक नामवर सिह का यह कथन स्पष्ट है कि "यदि कविता की स्वायत्तता अथवा स्वातत्रता सापेक्ष्य न मानी गयी तो फिर कविता के बारे मे ही कविताए लिखी जाएगी। कविता की दुनिया इसी दुनिया के अदर है, इस दुनिया के बाहर या परे नही" (पृ०२२८) इसका अर्थ यह है कि नामवर सिह के लिए आलोचना उस अर्थ मे स्वायत्त नही है जो अपने मे ही "पूर्ण" हो उसे अपनी पूर्णता के लिए अन्य सदर्भो की ओर जाना पड़ता है। यह सही है कि पूर्णता एक ऐसा प्रत्यय है जो शायद पूरी तरह से प्राप्त नही किया जा सकता है, पर उस तक पहुँचने का लगातार प्रयत्न तो किया ही जाता रहा है जो मानवीय चेतना की अग्रगामी प्रकृति है और साथ ही उसकी पश्चगामी प्रकृति भी। यही कारण है कि मानवीय चेतना पश्च (अतीत) और 'अग्र' (सभावना) को वर्तमान प्रतीतिबिदु की सापेक्षता मे निर्धारित एव व्याख्यायित करती है और यही काम आलोचक तथा विचारक दोनो किसी न किसी रूप मे करते है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वर्तमान का प्रतीति बिदु अत्यत जरूरी है क्योंकि इसी बिदु पर पैर जमा कर वह अतीत को प्रासगिकता देता है, वही यह अपने समय के यथार्थ को भी एक सही परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। यही यथार्थ की द्वन्द्वात्मक स्थिति है, वह कोई स्थिर प्रत्यय नही है। चाहे नामवर सिह हो, या कोई प्रवुद्ध एव सहदय आलोचक उसमे यथर्थ का यही रूप किसी न किसी रूप म प्राप्त होता है।

डॉ॰ नामवर सिह ने लोविस का सदर्भ देते हुए साहित्यिक आलोचना के व्यापक रूप को रखा है वह एक तरह से अत अनुशासनीय दृष्टि के बगैर सभव नहीं है। जब वे आलोचना की "सास्कृतिक केंद्रीयता' की बात करते है, तो स्वायत्तता की सापेक्षता मे करते है। "सस्कृति" मात्र कोई नृतत्त्वशास्त्रीय धारणा नही है वह सस्सकारो का एक जैविक एव गतिशील रूप है जिसमे कला, दर्शन धर्म समाजविज्ञान, विज्ञान तथा सौदर्य शास्त्र आदि का एक द्वन्द्वात्मक रूप प्राप्त होता है और जहॉ तक साहित्यिक आलोचना का प्रश्न है वह अव "हाशिए से सरक कर सास्कृतिक चितन के केंद्र मे आ गयी है और जो अपेक्षाए समाजशास्त्र, मानवविज्ञान इतिहास, दर्शन, राजनीति तथा सौदर्यशास्त्र आदि अनुशासनो से थी, उन्हे साहित्यिक आलोचना ने पूरा किया।" (वाद, विवाद, सवाद पृ०४०) आलोचना का यह सास्कृतिक रूप अभी हिदी मे आरभ ही हुआ है और डॉ॰ नामवर सिह का उपर्युक्त कथन इस अर्थ मे महत्त्वपूर्ण है कि इसके द्वारा आलोचना यथार्थ और सत्य के बोध को, उसके सापेक्ष एव द्वन्द्वात्मक रूप को एक व्यापक

सदर्भ दे सकेगी।

आलाचना के इस सास्कृतिक पक्ष का ध्यान म रखकर मेरे सामने मुख्य रूप से दा तत्त्व आत है-एक ज्ञान या वोध का वहुआयामी स्तर तथा दूसरे सवदना का एक एसा स्तर जो इस वाध का गहरे मानवीय सरोकारा स सयुक्त कर सके। यह तभी सभव हे जव आलाचना भिन्न ज्ञान-क्षेत्रा एव परिवेश क अनुभवा से "ऊर्जा" प्राप्त कर रचना या कृति के वहुआयामी पक्षा को विवचित एव मूल्याकित करा। इस दृष्टि से नामवर सिह की *आलाचना-दृष्टि प्रगतिशील तत्त्वा क साथ ज्ञान या वाध का सहारा तो* अवश्य लती हे लेकिन उसे आलोचना पर हावी नहीं होने देती है। व कृति, प्रवृत्ति या रचनाकार की व्याख्या के दौरान उन्हीं ज्ञान-क्षत्रा के सदर्भो को उठात है जा किसी भी रचना या कृतिकार की रचना-दृष्टि को समक्ष रख सके, उनक 'सरोकारो' का व्याख्यायित कर मूल्याकित कर सके। जब भी हम सराकारा या कन्सन, की वात करत है तो इसका सम्वन्ध मानव, प्रकृति, व्रह्माड के आपसी रिश्ता के साथ मानव और उसके परिवश के व्यापक सवधा की ओर भी जाता है। यदि गहराई से देखा जाए तो आलोचना का कन्सर्न भी किसी न किसी रूप म मानव और उसक परिवेश के द्वन्द्वात्मक रिश्ता को ही "अर्थ" देता है, यह अर्थ देने की प्रक्रिया मे 'विवक' और 'सवेदना' का न्यूनाधिक संमिश्रित रूप प्राप्त होता है। नामवर सिह की *आलोचना मे विवेक का तत्त्व सवेदना को गति देता है* और सवेदना का तत्त्व विवेक को अतिवोद्धिकीकरण की ओर नही जाने देता है। उनकी आलाचना मे इसी से विवेक तो है, पर अतिवौद्धिकता की वोझिलता नही है। हम उनके निष्कर्षों से सहमत या असहमत हो सकत हे, पर उनकी इस आलोचना दृष्टि या प्रक्रिया से हम शायद असहमत नहीं हो सकते है। इसी विवेक और सवेदना के द्वारा वे शास्त्र या प्रचलित विचारधारा को एक 'चुनौती' के रूप मे लेते है चाहे वह मार्क्सवाद हो, रूपवाद हो या अस्तित्ववाद आदि। स्वय नामवर सिह ने पूर्वग्रह (७८-७९) म कहा है कि चितन क क्षेत्र म देशी या विदेशी शास्त्र और विचारधारा क क्षेत्र म अपने युग की सवसे प्रचलित विचारधारा का चुनौती देना, एक आलोचक की वुद्धि की मुक्तावस्था का सूचक है।" जव हम विचारधारा को एक चुनौती देते है तो हम उसे व्यापक सदर्भो स जोड़ते हे और साथ ही, उसकी सीमाआ क प्रति सजग भी होते है। मेरे विचार से यहाँ पर विचारधारा का नकार नही है, वरन् उसका सही निर्धारण है। कोई भी विचारधारा यदि वह

महान् होती है तो उसके अपने बड़े खतरे भी होते है। अत विचारधारा विहीन आलोचना या साहित्य का अस्तित्व क्या सभव है? नामवर सिह की दृष्टि मे विचारधारा अनुभूतिया की ऐसी सरचना है जिसमे अनेक प्रतीक मिथक आदि भी घुले मिले रहते है। विचारधारा बहुत कुछ सस्कार की तरह समूचे व्यक्तित्व का ऐसा अग बन जाती है कि उससे आसानी से छुटकारा सभव नही होता।" (वाद विवाद सवाद, पृ०४६) यहाँ पर विचारधारा को अनुभूतियो और सस्कारो से जोड़कर, उसके सास्कृतिक पक्ष को अर्थ दिया गया है। यहाँ पर दर्शन और सस्कृति का सहारा लेकर नामवर सिह ने विचारधारा को एक व्यापक सदर्भ दिया है जो अत अनुशासनीय दृष्टि का सूचक है। एक अन्य बात जो नामवर सिह ने रखी है, वह है विचारधारा के उपनिवेशवाद से आलोचना की मुक्ति जो आलोचना की स्वायत्तता के लिए जरूरी है। अमरीकी नयी आलोचना और रुसी रूपवाद मे हमे यही उपनिवेशवादी प्रवृत्ति प्राप्त होती है जिसका विरोध नामवरसिह ने यह कह कर किया है कि ऐसी आलोचनाओ की अपनी राजनीति होती है पर एक मायने मे वे सभी एक है कि आलोचना को परिवर्तन की क्रांतिकारी चेतना से अलग रखा जाए। (वाद-विवाद सवाद, पृ० ३८)। यहाँ पर नामवर सिह आलोचना को मात्र राजनीति से सबधित करते है जबकि आलोचना राजनीति के अतिरिक्त इतिहास, दर्शन, समाज तथा लोकतत्त्व आदि स भी सबधित है जो सास्कृतिक आलोचना का एक वृहद् आयाम है। परिवर्तन का प्रत्यय राजनीति मे ही नही वरन् समस्त मानवीय क्रियाओ के मूल मे है नही तो विकास की प्रक्रिया ही रुक जाएगी। परिवर्तन और विकास का यह रिश्ता द्वन्द्वात्मक है जिसमे नकारात्मक एव सकारात्मक प्रवृत्तियाँ कमोवेश रूप मे साथ-साथ चलती है। मेरा यहाँ पर यह मानना है कि विचारधाराए परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से आलोचना-दृष्टि के विकास मे सहायक होती है क्योंकि प्रत्येक विचारधारा मे कुछ-न-कुछ सत्य अवश्य होता है, और आलोचना-दृष्टि कृति की सापेक्षता म उन विचारधाराओ का सहारा ले सकती है जो कृति के बहुआयामी अर्थ-सदर्भो और सरोकारो की ओर ले जाएँगी, यदि उसे उस विचारधारा को व्यापक एव समय-सदर्भित करना है। मेरे विचार से नामवर सिह (तथा अन्य आलोचक भी) की पक्षधरता इसी तरह की है, वे विचारधारा को आवश्यक मानते हुए भी साहित्य की 'स्वायतता' की बात करते है, लोकतत्त्व की बात करते है, रूपतत्त्व की ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद की, रहस्यवाद, भक्ति, प्रेम तथा जातीय परम्परा आदि

की जो व्याख्या करते हे उसमे उनकी पक्षधरता आड़े नहीं आती है, पक्षधरता उसी समय आड़े आती है जब हम उसे 'अंतिम सत्य' के रूप मे स्वीकार कर ले। मार्क्सवाद एक गतिशील विज्ञान आधारित विचारधारा है, वह रुढ़िवाद का विरोधी है। अत नामवर सिह मे उपर्युक्त प्रत्ययो का क्या रूप है इसका विवेचन जरूरी है जो उनकी साहित्यिक आलोचना के मुख्य तत्त्व है।

सबसे पहले मै आलोचना और साहित्य के सदर्भ मे इतिहास की धारणा को लेना चाहूँगा जिसने नामवर सिह की आलोचना-दृष्टि को एक दिशा दी/उसमे मार्क्सवादी दृष्टि कद्र मे है, लेकिन इस दृष्टि मे जहाँ उन्होने 'द्वन्द्ववाद' वर्ग चेतना तथा राजनीति को अपने तरीके से महत्व दिया है, वही अपनी ऐतिहासिक अवधारणा म जातीय परम्परा लाकतत्त्व, साहित्य, रूपवाद तथ सौर्दयबोध के तत्त्वो ने उनकी ऐतिहासिक-दृष्टि को एक जातीय आधार दिया है, वह मात्र मार्क्सवाद का रुढ़िवादी रूप नहीं है। महापंडित राहुल ने मार्क्सवाद को एक गतिशील प्रत्यय माना है वह 'डाग्मा' नहा है और जो भी इसे 'डाग्मा' के रूप मे ग्रहण करेगा, वह उसके 'विकास' को रोकेगा। यदि गहराई से देखा जाए तो कोई भी विचारधारा जब 'डाग्मा' का रूप ग्रहण करने लगती है, तो वह 'धार्मिक रूढ़िवाद' की शिकार होने लगती है।

इतिहास हो या साहित्येतिहास दोनो के लिए नामवर सिह तथ्य या साक्ष्य और विचार के सापेक्ष सम्बन्ध को स्वीकार करते है और मात्र घटनाओ की खोज को इतिहास नहीं मानत है। उनका यह स्पष्ट कथन है कि आकड़ो और घटनाओ को टास ऐतिहासिक परिस्थितियो तथा सामाजिक शक्तियो के प्रयत्नो के रूप म व्याख्या न कर सकना असमर्थता भी हो सकती है पर व्याख्या करन से इकार करना शरारत है (इतिहास और आलोचना पृ०१३९) यदि गहराई से देखा जाए तो तथ्य और आकड़े मात्र कच्चा माल है इतिहासकार एव रचनाकार उस कच्चे माल को अपने समय सदर्भ के अनुसार जीवन्त बनाता है अपनी व्याख्या और दृष्टि के द्वारा। उस ऐतिहासिक धारणा म पूर्ववर्ती इतिहासकारो का अपना स्थान है (परम्परा) जिन्होने अपन तरीके से मानव मुक्ति और साम्राज्यवादी शक्तियो से सघर्ष करने म इतिहास का उपयोग किया। (द्विवेदी युग तथा छायावाद मे)। उन्ही के द्वारा हम एक ऐतिहासिक भूमिका मिली है और उस पूरी परम्परा से उपजा वैज्ञानिक जीवन-दर्शन हम उपलब्ध है। नामवर सिह के अनुसार

यह जीवन-दर्शन है द्वन्द्ववाद-भौतिकवाद यानी भौतिकवादी दृष्टिकोण और द्वन्द्वात्मक प्रणाली।

नामवर सिंह ने द्वन्द्ववाद- प्रणाली का हिंदी साहित्य के इतिहास पर घटित करते हुए द्वन्द्ववाद के चार लक्षणों को स्वीकार करते है सापेक्षता, गति, विकास का अग्रगामी रूप तथा वस्तुओं, घटनाओं, विचारों में व्याप्त अन्तर्विरोधों को पहचानना। यदि गहराई से देखा जाए तो द्वन्द्ववाद की ये सभी लक्षण विवाद तक जाते है तथा द्वन्द्ववाद की तीसरी दशा 'सश्लेष' (सिन्थीसिस) की ओर अपेक्षाकृत कम। अन्तर्विरोध को उभारना, फिर उनके मध्य सवाद की स्थितियों को रेखांकित करना भी द्वन्द्ववाद के अन्तर्गत आता है जिसकी ओर नामवर सिंह का ध्यान जाता तो है, पर पूरी तरह से नहीं। छायावाद, प्रगतिवाद और अस्तित्ववाद के अन्तर्विरोधों को वे पहचानते है और कहीं-कहीं पर उनके मध्य सवाद की दिशाओं को भी रेखांकित करते है। उदाहरण के तौर पर वे छायावाद में प्राप्त अन्तर्विरोधों (लौकिकता और अलौकिकता) को सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार देकर वे रहस्यवाद को भी ज्ञान विज्ञान के प्रति एक ललक के रूप में प्रस्तुत करते है और साथ ही 'विराट' की कल्पना का सामाजिक आधार देते हुए महादेवी और निराला की विराट और प्रिय की धारणा में समस्या का समाधान पाते है। निराला के 'राम' शक्ति रूपी भाव कल्पित 'विराट' रूप की उपासना में लग जाते है। यहाँ पर भी विराट कल्पना में ही समस्या का असली रूप और उसका समाधान मिलता है।' (छायावाद, पृ०२९) रहस्यभावना को वे 'दूसरी परम्परा की खोज' में ऐतिहासिक विवेचना का आधार देते है और उसे शास्त्रीयता से मुक्त करने का आवाहन करते हैं, और आचार्य द्विवेदी के विवेचन में वे सतों और सिद्धों के तात्विक या रहस्यवादी रूप का अनुभववाद और विवेकवाद के द्वारा वह ऐतिहासिक और सामाजिक आधार देते है जिसे सतो ने "गुच्छमवेद" कहा जो एक तरह से स्थूल वेद के विरुद्ध सूक्ष्मवेद का रूप था। यहाँ पर अनुभववाद का ज्ञानमीमांसीय रूप दृष्टिगत होता है। (दूसरी परम्परा की खोज, पृ०८१-८२)। असल में यह रहस्यवाद का आधुनिक रूप है जो मूलत प्रगतिशील दृष्टि का फल है क्योंकि रहस्यभावना का रूप आदिम काल से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में रहता है। नामवर सिंह ने "आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ" नामक पुस्तक में इस तथ्य को प्रस्तुत किया जो मूलत द्वन्द्ववाद और लोकधर्म की धारणाओं का प्रतिफलन है।

नामवर सिंह ने इतिहास की धारणा मे परम्परा को एक गतिशील रूप मे लिया है, और इस दृष्टि से "*दूसरी परम्परा की खोज*" उनकी एक ऐसी कृति है जिस पर विवाद रहा है, विशेषकर "दूसरी परम्परा" को लेकर। डॉ॰ प्रभात तथा डॉ॰ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य शुक्ल को दूसरी परम्परा का न मानकर महापंडित राहुल द्वारा मान्य द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद या मार्क्सवाद को दूसरी परम्परा का हिंदी मे प्रवर्तक मानते है। डॉ॰ नामवर सिह ने आचार्य द्विवेदी को नाथा मिद्धो तथा सतो की परम्परा का माना है, जो उनके अनुसार दूसरी परम्परा है जिसमे चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि मत आते है, यह उस अर्थ मे शुद्ध भौतिकवादी परम्परा नही है जो मार्क्सवाद की है। यहाँ भौतिकवाद के तत्त्व तो प्राप्त होते है, पर अतिचेतना या चाहे तो 'आध्यात्म' कह सकते है, के भी तत्त्व यहाँ मौजूद है। यहाँ आत्मवादी परम्परा के स्थान पर अनात्मवदी परम्परा है जो भारतीय दर्शन मे दूसरी परम्परा है। आचार्य द्विवेदी इसी परम्परा मे आते है जिसमें अतिचेतना का सस्पर्श है जो हमे संतो, नाथो तथा सिद्धो मे प्राप्त होता है। यहाँ पर मानव केंद्र में है। राहुल ने बौद्ध मत तथा अन्य भारतीय अनात्मवादी दर्शनों के उन तत्त्वों को लिया है (जैसे प्रतीत्यसमुत्पाद, संघीय समानता, द्वन्द्ववाद) जो मार्क्सवाद मे किसी न किसी रूप मे प्राप्त होते है। यहाँ पर 'सवाद' की स्थिति प्राप्त होती है। अतः मेरे विचार से आचार्य द्विवेदी भारतीय परम्परा मे दूसरी परम्परा के अधिक निकट है, और उनका कबीर का विवेचन इस बात का प्रमाण है। मार्क्सवाद का जहाँ तक प्रश्न है, वह "तीसरी परम्परा" है जो शुद्ध भौतिकवादी परम्परा है। नामवर सिह ने दूसरी परम्परा जो भारतीय दर्शन-चितन में चली आ रही थी, उसे ही नया सस्कार दिया, उसे व्यापकता प्रदान की, कोई "खोज" नही की। यह कहना अधिक तर्क संगत होगा कि दूसरी परम्परा को उन्होंने आधुनिक वैचारिक परिदृश्य के सदर्भ में रेखांकित किया। एक अन्य आक्षेप नामवर सिंह पर यह भी लाया जाता है कि वे पहले निश्चित से कर लेते है कि किसे स्थापित करना है, तब उसी के अनुसार विवेचन करते है। जब कोई आलोचक किसी को '*अर्थवत्ता*' देना चाहता है, तो पहले वह उसका अध्ययन करता है, तब वह निश्चय करता है कि उसे अर्थवत्ता दी जाए या नही? यदि नामवर सिह ने द्विवेदी जी को स्थापित या अर्थवत्ता देने का प्रयत्न किया, तो आचार्य द्विवेदी इस लायक थे, ठीक उसी प्रकार जैसे 'तुलसी' और 'निराला' जिन्हे अर्थवत्ता दी आचार्य शुक्ल और रामविलास शर्मा ने। इन्होंने भी अध्ययन

के उपरान्त ऐसा निर्णय लिया होगा।

नामवर सिंह ने अपनी आलोचनात्मक दृष्टि में मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद तथा काव्यशास्त्र के पदों को लिया है जो आलोचना के "बीज-शब्दों" में से कुछ शब्द है-प्रतीक है। डॉ॰ बच्चन सिंह ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक "आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द" में इन शब्दों का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विवेचन किया है जो हिंदी में शायद ऐसी पहली कृति है जो आलोचनात्मक 'बीज शब्दों' का अध्ययन प्रस्तुत करती है। असल में ये बीज शब्द जो किसी अनुशासन के कटघरे में बंद रहते हैं, जब वे अन्य क्षेत्र में अनुप्रवेश पाते हैं तो वे अपने 'अर्थ' का विस्तार करते हैं, इस प्रकार वे एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया से गुजर कर एक व्यापक परिदृश्य को संकलित करते हैं। यह सारी प्रक्रिया "व्याख्या" की अपेक्षा रखती है और आलोचना इस व्याख्या के द्वारा नए संदर्भों का न्यूनाधिक संकलन करती है। उदाहरण के तौर पर 'संरचना' शब्द को लें जो मूलतः विज्ञान का शब्द है जिसे समाजशास्त्र,नृतत्व, साहित्यिक आलोचना तथा भाषा-शास्त्र ने अपने अपने तरीके से ग्रहण किया है। विज्ञान के शब्द (संरचना, जैविकी, परमाणुवाद), दर्शन के शब्द (यथार्थवाद, द्वन्द्वात्मक, भौतिकवाद, वर्गसंघर्ष, अस्तित्ववाद के शब्द), भाषा शास्त्र (अप्रस्तुतता, स्फोट, व्यंजना, लक्षणा) मनोविज्ञान (चेतन, अचेतन, ग्रंथि, मोहभंग) तथा समाजशास्त्र (प्रतिबिम्ब, टैबू, लोक तत्व, टोटम) आदि के शब्द-प्रतीक आलोचना के भी शब्द-प्रतीक हो गए हैं। शब्द प्रतीकों और प्रत्ययों का यह अन्तर्संवाद आलोचना और सृजन के क्षेत्र में ही नहीं, वरन् अन्य ज्ञान-क्षेत्रों में भी किसी न किसी रूप में घटित हो रहा है। यह आलोचना के अन्तःअनुशासनीय रूप को समक्ष रखता है। नामवर सिंह ने भी इन शब्दों का सहारा लिया है क्योंकि आलोचना एक तरह से ऐसे शब्दों और प्रत्ययों की व्याख्या कर उनका निर्धारण करती है। ऊपर के विवेचन में मैंने द्वन्द्ववाद, इतिहास, परम्परा, पक्षधरता, विचारधारा, सांस्कृतिक केंद्रीयता, सापेक्षता तथा सहस्वभाव जैसे शब्द-प्रतीकों का जो विवेचन किया है, वह परोक्ष रूप से नामवर सिंह की आलोचना-प्रक्रिया में अपनी अहम् भूमिका रखते हैं। इसी संदर्भ में मैं नामवर सिंह द्वारा प्रयुक्त एवं व्याख्यायित उन शब्द-प्रतीकों और प्रत्ययों को लेना चाहूँगा, जो अस्तित्ववादी-दर्शन के 'शब्द' हैं जो क्रमोवेश रूप से 'कविता के नए प्रतिमान' की हैसियत से सदर्भित किए गए है। ऐसे बीज-शब्द है, काव्यबिम्ब, विसंगति, विडम्बना अनुभूति की प्रामाणिकता, तनाव तथा

अनुभूति की जटिलता। इन आलोचनात्मक पदों की सर्जनात्मक सार्थकता को व्यक्त किया गया है, और इस सार्थकता के केंद्र में मुक्तिबोध है, न कि अज्ञेय। नामवर का कथन है कि नयी कविता में मुक्तिबोध की स्थिति वही है जो 'छायावाद' में निराला की है। "(कविता के नए प्रतिमान, भूमिका)" वस्तुतः नामवर सिंह ने मुक्तिबोध की कृति "एक साहित्यिक की डायरी" की जब समीक्षा की थी, तभी उन्हें स्पष्ट हो गया था कि नयी कविता निम्न मध्यवर्ग के जीवन संघर्ष को यथार्थ के धरातल पर व्यक्त करती है, इसके मूल में अज्ञेय नहीं, वरन् मुक्तिबोध हैं। कविता के नए प्रतिमान में उन्होंने अपनी इस पूर्व-मान्यता को नए प्रतिमानों की मीमांसा के रूप में समक्ष रखा।" श्री रामचंद्र तिवारी (दस्तावेज ५२,१९९१) का उपर्युक्त मत एक सीमा तक सही है, पर अज्ञेय के देय को भी नयी कविता के संदर्भ में नकारा नहीं जा सकता है। 'तार सप्तक' के द्वारा उन्होंने नयी कविता की वह जमीन तैयार की जिसे मुक्तिबोध तथा अन्य कवियों ने अधिक उर्वर एवं अर्थवान् बनाया। अगर अज्ञेय केंद्र में नहीं हैं, तो वे परिधि में अवश्य हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इसे स्वीकार करना जरूरी है।

सबसे पहले मैं काव्य-भाषा के अन्तर्गत बिम्ब और प्रतीक को लेता हूँ जिसे नामवर सिंह प्रतिमान के रूप में विशेष महत्त्व नहीं देते हैं, लेकिन नयी कविता में (केदारनाथ सिंह आदि में) वे बिम्ब की प्रमुखता को स्वीकार करते हुए भी यह मत भी प्रस्तुत करते हैं कि बिना बिम्ब के भी कविता संभव है जैसे नागार्जुन आदि में। एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह भी कही गयी कि बिम्ब के मोह ने वस्तु को उपेक्षित किया, और क्रमशः सपाटबयानी का आग्रह बढ़ा (बिम्ब केवल मस्तिष्कगत ही नहीं, वरन् मनोवैज्ञानिक भी होते हैं और मांस पेशियों के भी (पृ०१३७)। यहाँ पर फार्वेक का यह मत कि बिम्ब चित्रकला की देन है वह, साहित्येतर होने के कारण कविता के लिए अर्थवान नहीं है, एक भ्रामक धारणा है क्योंकि कला और साहित्य का संवाद एक सत्य है। यह सही है कि बिम्ब के बिना भी कविता हो सकती है जो 'सपाट बयानी' में संभव हुई है, पर इसका यह भी अर्थ नहीं कि बिम्ब के महत्त्व को नकारा जाय।

नयी कविता और आज की कविता के संदर्भ में विडम्बना और विसंगति मात्र अस्तित्ववादी शब्द-प्रतीक नहीं रह गए हैं, वरन् उनका एक सर्जनात्मक महत्त्व है जो छायावाद की गंभीरता को तोड़ता है और हल्के फुल्के ढंग से कथ्य को अर्थ देता है। निराला और मुक्तिबोध आदि में यह

प्रवृत्ति प्राप्त होती है, और इसके प्रयोग का कोई न कोई रूप हमे आज तक प्राप्त होता है। इस अर्थ मे उसे प्रतिमान स्वीकार किया जाना चाहिए। इस विडम्बना मे नामवर सिह क्रीडा एव लीला भाव को इसलिए महत्त्व देते है (ब्लेकमर भी) कि उसके द्वारा कवि सत्य को खोजता है और उससे विदूषक के समान क्रीडा करता है। (पृ० १७३, वही) विडम्बना की अन्विति मे 'नाटकीयता' का तत्त्व भी आ जाता है। इस प्रकार विडम्बना का अपना सर्जनात्मक महत्त्व है जो हमे कबीर आदि मे भी मिलता है।

इसी प्रकार अनुभूति की जटिलता और तनाव को नामवर सिह ने चित्तवृत्तियो को जीवन से जोड़ा है, अत सृजन मे ये जटिलताए किसी न किसी रूप में आएगी ही। यहाँ वे रिचर्ड्स के सिद्धात का हवाला देते हुए इस मत की स्थापना करते है कि अनुभूति की जटिलता का प्रश्न चित्तवृत्तियो की सख्या से नही, वरन् सदर्भ से उत्पन्न होने वाले बोध की प्रकृति से है। (कविता के नए प्रतिमान, पृ०१८३)। अत अनुभूति को सज्ञान से जोड़कर देखा जाना चाहिए और चित्तवृतियो के मध्य द्वन्द्व को स्वीकार कर अनुभूति की जटिलता को द्वद्वाश्रित 'तनाव' मे घटित करना चाहिए। यह तनाव छायावाद मे सरलीकृत है जबकि नयी कविता मे जटिल। तनाव का भेद हमे मुक्तिबोध अज्ञय, शमशेर तथा श्रीकात वर्मा मे प्राप्त होता है (वही पृ० १९३-१९५) इस पूरे विवेचन मे नामवर सिह जिस तनाव की बात करते है वह सर्जनात्मक तनाव है और साथ ही छायावाद के सरलीकृत तनाव से भिन्न है। मेरे विचार से निराला की स्थिति इन दोनो प्रकार के तनाव के मध्य मे है जो उनके परिवर्ती काव्य मे देखा जा सकता है। नामवर सिह निराला को इस रूप मे निर्धारित नही करते है।

नामवर सिह की आलोचना को लेकर एक विवाद का विषय 'रूपवाद' रहा है क्योंकि मार्क्सवादी सौदयशास्त्र मे वे रूपवाद को एक नया सदर्भ देना चाहते है। "छायावाद" और "इतिहास और आलोचना" के निबधो मे ऐतिहासिक भौतिकवादी विश्लेषण की दृष्टि अधिक है किंतु "कविता के नए प्रतिमान' मे नामकर जी ने शिल्प के स्तर पर रुपवाद की प्रस्तावना की है। नेमिचद जैन ने इस रूपवादी झुकाव को एक छटपटाहट की तरह माना है जो तर्क याजना के रूपवादी बहाव और लेखक के सस्कारा मे व्याप्त मार्क्सवादी रुझान के बीच अत सघर्ष का प्रकट करता है जिस नामवर सिह हल नही कर सक है।' (जनान्तिक, पृ०१६२) यह मत पूरी तरह से इसलिए सही नही है कि रूपवाद अभिजात मानसिकता का ही

क्षेत्र नहीं है, यह प्रतीक रूप में जनवादी मानसिकता के अनुरूप नया संस्कार प्राप्त करता है। कोई भी 'शब्द-प्रतीक' समय के साथ अपना विस्तार करता है। नामवर सिंह ने रूपवाद के बारे में स्पष्ट कहा है कि "रूपवाद का रूप स्थूल समाजशास्त्रीयता नहीं है, बल्कि विषय वस्तु और रूप विधान के द्वन्द्वात्मक संबंधों की सही समझदारी पर आधारित मार्क्सवादी आलोचना ही हो सकती है।" (कविता के नए प्रतिमान पृ०१२) असल में रूपवाद कोई स्थिर धारणा नहीं है। विषय वस्तु के बदलाव के साथ और साथ ही दिक्-काल के परिवर्तित रूप के साथ "रूप" में भी बदलाव आता है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है और इस तरह विषय एवं रूप का सम्बन्ध द्वन्द्वमूलक है, वह रखीय न होकर वक्र है। लूकाच ने भी रूपवाद को स्थूल समाजशास्त्रीयता से अलग रखा है और नामवर सिंह में भी यही स्थिति है। मुक्तिबोध और निराला ने अपने समय के प्रचलित रूपवाद को चुनौती दिया और उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया जिससे नए काव्य का मूल्यांकन संभव हो सका। मेरे विचार से रूपवाद का काल सापेक्ष सम्बंध इसलिए भी जरूरी है कि उनके रुपांतरण के द्वारा हम सर्जनात्मक विशिष्टता को रेखांकित कर सकते हैं, नहीं तो हम स्थिर परम्परा को गतिशील कैसे बनाएंगे? विचारधारा अपने समय संदर्भ के अनुकूल "रूप" का अनुसंधान करती है और जहाँ पर भी सृजन है, वहाँ 'रूप' का कोई न कोई रूप अवश्य प्राप्त होगा। कथ्य से अलग बिम्बों-प्रतीकों की अर्थवत्ता का प्रश्न ही नहीं उठता, दोनों का सापेक्ष संबंध है। यदि रूपवाद साहित्य का लक्ष्य हो जाएगा, तो भी साहित्य की हानि होगी और यदि कथ्य या विषयवस्तु यांत्रिक या अरचनात्मक हो जाएगी, तो वह साहित्य के लिए अश्रेयस्कर होगी। मेरे विचार से साहित्य की सृजनात्मकता या अस्मिता के परिप्रेक्ष्य में 'वस्तु' और 'रूप' का सापेक्ष महत्त्व स्वीकार करना न्यायसंगत होगा, दोनों की "अति" का प्रभाव साहित्य पर नकारात्मक ही पड़ेगा।

डॉ० नामवर सिंह ने 'लोकधर्म' और 'शास्त्र' की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का संकेत करते हुए, आचार्य द्विवेदी के हवाले से यह स्पष्ट किया है कि भारतीय इतिहास में कभी-कभी लोक के दबाव में शास्त्र ने अपने को लचीला बनाकर लोक के अनेक तत्त्वों को आत्मसात कर लिया है। दूसरी ओर लोक ने भी शास्त्र से प्रेरणा ली है। अतः दोनों का सापेक्ष द्वन्द्वात्मक संबंध है। इस दुहरी प्रक्रिया में कभी-कभी एक ऐसे लोकधर्म का निर्माण हुआ है जो व्यापक जन विद्रोह के लिए वैचारिक आधार का काम करता

रहा है। भक्ति आंदोलन की पीठिका में यही लोकधर्म था। इसलिए लोकधर्म साधारण जनों के विद्रोह की भाषा है उसकी विचारधारा का अंतःस्रोत है। (दूसरी परम्परा की खोज पृ० ७८ ८०) एक अंतर शास्त्र और लोक में यह है कि शास्त्र के समान लोकधर्म व्यवस्थित एवं तर्क संगत विचार प्रणाली नहीं है। यह किसानों दस्तकारों तथा निम्न वर्ग की विद्रोह चेतना का एक साहित्यिक उन्मेष है। ग्राम्शी ने अपनी जेल नोटबुक में यह स्वीकार किया है कि सामान्य जनों के प्रचलित विचार अपरिष्कृत सरल और असमर्थित होते हैं और उनमें लोकवार्ताओं मिथकों तथा रोजमर्रा के लोकप्रचलित अनुभवों का पचमेल होता है लेकिन उनका महत्त्व व्यापक जन आंदोलन को ऊर्जा प्रदान करता है। संतों सिद्धों भक्तों का विद्रोह लोकधर्म की आधारशिला पर गतिशील हुआ। और इस भक्ति आंदोलन को ऐतिहासिक रूप में देखना जरूरी है मात्र तात्त्विक दृष्टि से नहीं। ऐतिहासिक सामाजिक दृष्टि से लोकतत्त्व सदैव किसी न किसी रूप में साहित्य सृजन का एक महत्वपूर्ण घटक रहा है। मेरे विचार से नामवर सिंह ने "लोकधर्म" का जो विवेचन किया है वह मार्क्सवादी सौंदर्य दृष्टि को एक व्यापक आधार देता है यही नहीं वह अन्य दृष्टियों में भी अपनी भूमिका किसी न किसी रूप में निभाता है।

अतः नामवर सिंह की आलोचना का एक सांस्कृतिक पक्ष है जिसे वे 'सांस्कृतिक कदायता' के नाम से पुकारते हैं और उसे समझने के लिए विविध ज्ञानानुशासनों के साथ-साथ साहित्य की 'स्वायत्त सापेक्षता' को स्वीकार करते हैं। यह सही है कि नामवर सिंह में किसी को उठाने और किसी को गिराने का पूर्वाग्रह अवश्य है जिसे लेकर हिंदी आलोचना के क्षेत्र में विवाद भी रहा है। उसके पीछे 'गुटबंदी' का भी हाथ है जो मेरी दृष्टि में आलोचना और सृजन दोनों के लिए घातक है लेकिन सत्य यह है कि यह "गुटबंदी" ही जिसके कारण हम तटस्थ एवं वैज्ञानिक निर्णय नहीं दे पाते हैं। इन सबके बावजूद मैंने इस लेख में इस पक्ष को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया है क्योंकि जब भी हम आलोचना में इस पक्ष को अधिक महत्त्व देंगे तो "आलोचना के विवेक" से हम दूर होते जाएँगे। यह लेख इस गुटबंदी की दृष्टि से नहीं लिखा गया है और जहाँ तक हो सका है मैंने वैज्ञानिक दृष्टि से वस्तुओं को निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। कहाँ तक सफल हुआ हूँ, यह तो सुधि पाठक ही बताएँगे।

□

[5]

लोक चेतना का बदलता परिप्रेक्ष्य

यदि हम किसी भी जाति की सास्कृतिक-प्रक्रिया को लेते है, तो इम प्रक्रिया मे 'लोक' और जन का एक 'समष्टि' रूप प्राप्त होता है। अत: "लोक" शब्द की अवधारणा में निरपेक्ष तत्त्व की अपेक्षा सापेक्ष तत्त्व का पुट कहीं ज्यादा हैं, यही कारण है कि जब भी हम 'लोक' शब्द का प्रयोग करते है, उसका एक सापेक्ष व्यापक सामाजिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक 'अर्थ' ध्वनित होता है जो एक द्वन्द्वात्मक स्थिति को प्रकट करता है। लोक की धारणा का क्रमिक विकास यह तथ्य प्रकट करता है कि उसकी धारणा में समयानुसार नए तत्त्वो का समावेश भी होता रहा है। कोई भी अवधारणा नितांत 'स्थिर' नहीं होती है, यदि उसे प्रासंगिक रहना है, तो समय-संदर्भ के अनुसार उसमे नए बोध और आशय को लाना ही पड़ेगा। 'लोक-चेतना' मे लोक और चेतना का अत.सम्बन्ध है। चेतना के स्वरूप पर विचार करें तो मनोविश्लेषण के प्रकाश मे चेतना के तीन स्तर होते है-एक अचेतन, दूसरे उपचेतन तथा तीसरे चेतन। किसी भी जाति के मनस विकास मे 'अचेतन' का महत्त्व इसलिए है कि हमारे भाव, विचार, आकाक्षाएँ तथा इच्छाएँ जिनका किसी भी जाति के जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, वह अपनी आदिम अवस्था मे 'अचेतन' में संस्कार के रूप मे एकत्र होती जाती है, और यह क्रम मात्र आदिम ही नहीं है, वरन् इतिहास की गति में वह एक सतत् गतिशील प्रक्रम (प्रोसेस) है। यही कारण है कि 'लोक' में ये संस्कार या आद्यरूप (आरिकीटाइप्स) बार-बार घटित होते है, उनकी व्याख्या

समयानुसार होती है। इसीके साथ, इतिहास की गति म नए 'आद्यरूप' या आशय भी आते है जो क्रमश 'लोक' चेतना के अग होते जाते है। अत मेरी दृष्टि से 'लोक' को मात्र आदिम (जनजातियों ग्रामीणो दलितो आदि) मानसिकता से जोड़ना ठीक नहीं है, उसमे आधुनिक मानसिकता समाहित है। यह सही है 'आदिम' सस्कार हमारे मनस् के अभिन्न अग है, वे बार-बार हमे "हॉट" करते है, हमारे अस्तित्व को अर्थ देते है, लेकिन उसी के साथ लोक चेतना मे नए ससकार, नए आद्यरूप तथा नए विचार भी अपना प्रभाव डालते है जो एक ऐतिहासिक-क्रम है।

यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो मानव समाज में दो ही 'वर्ग' रहे है, इससे पूर्व की स्थिति साम्यवादी समाज की रही है जहाँ वर्ग-भेद नही के बराबर था। आगे चलकर श्रम विभाजन के आधार पर दो वर्ग बने, एक उत्पादक वर्ग जिसके श्रम और उपभोग पर शोषक वर्ग या अभिजात वर्ग बना जो उत्पादन न करके उसका उपभाग करता है। आज के उपभोक्तावादी युग मे यह उपभोक्ता वर्ग एक सामान्य वर्ग हो गया है जिसमे सभी वर्गों के व्यक्ति शामिल है। इस श्रम-विभाजन के प्रसार से गाँवो, जनपदो के बीच नगरो का उद्‌भव और विकास हुआ। आचार्य अभिनवगुप्त न ११-१२ शताब्दी म कहा था कि 'लोको नाम जनपदवासीजन ' अर्थात् जनपद मे रहने वाला 'जन' ही लोक है। लेकिन आज 'लोक' मे यह जनपद, गाँव ही नहीं आते है, वरन नगर और जनपद के द्वन्द्व म वह तमाम जन आते है जो गाँवो की सस्कृति को, वहाँ के लोकगीतो आदि को नगर म लाकर, एक ऐसे लोक का सृजन कर रहे है जो परम्परा से चली आयी -लोक' की धारणा को, उसकी चेतना को एक तरह स व्यापक बना रहे है। 'आचलिकता' शब्द इसी द्वन्द्व और सवाद का सूचक है जिसे फणीश्वरनाथ रेणु रामदारा मिश्र त्रिलोचन नागार्जुन आदि रचनाकारो ने अपने तरीके से अर्थ दिया है। यदि आज की स्थिति को देखे तो लोक का एक अश सर्वहारा, किसान तथा दलित वर्ग नगर-निवासी हो रहा है जो नगर मे रहकर भी यह वर्ग लोक मे अपना सबध-विच्छद पूरी तरह नही कर पाया है और नगर की सभ्यता से वह आकर्षित होकर 'लोक' की भावना को वह एक 'नया' सदर्भ भी दे रहा है। अत अब 'लोक-चेतना' या लोक सस्कृति उस अर्थ मे सीमित नहीं रह गयी है जो पहले के काला म थी। इस लोक की धारणा म मात्र देहाती, जनपदवासी, आदिवासी ही नहीं है, वरन् उसमे नगर के सर्वहारा, मध्यवर्ग, नारी तथा वह बड़ा समूह भी है जो अपने श्रम से उत्पादन करता

है पर उसका उपभोक्ता वह पहले से कहीं ज्यादा है। इस प्रकार इम लोक की धारणा म अनक वर्ग है जो अपनी अत क्रियाओ द्वारा लोक के व्यापक परिदृश्य को सकेतित कर रह है।

यहाँ मै जनवादी-सस्कृति क पक्ष का इसलिए लेना चाहूगा कि यह 'लाक' का अब एक अभिन्न अग है। प्रत्यक ऐतिहासिक परिवर्तन के साथ नए मिथको विचारो तथा आद्यरूपा का सृजन हाता है और जन-सस्कृति के विकास मे यह सत्य भी लक्षित होता है। इस जन-चतना का विकास १९वी शताब्दी से आरभ हाकर आज तक आते-आते एक निश्चित रूप ल चुका है। ऐतिहासिक दृष्टि स 'जन' (मास कल्चर) शब्द एक अवधारणा है जो गुट या समूह से कही व्यापक धारणा है। यह जनवादी चतना ऐतिहासिक-शक्तिया के द्वन्द्व स विकसित हुई है जिसम अनक राजनैतिक आर्थिक एव वैचारिक शक्तिया का यागदान रहा ह। यहाँ पर यह मानना कि केवल मार्क्स लनिन और गाधी ने ही इम चेतना के विकास म योगदान दिया है लेकिन इससे पूर्व बुद्ध यहूदी विचारक आमुष बेकन सवोनरोला थामस मार आदि विचारको ने इस जन-चेतना के क्रमिक विकास मे योगदान ही नहीं दिया पर इनम म कई ने अपन का होम भी कर दिया। इन विचारको ने अवश्य यूटोपिया का निर्माण किया, पर उसके पीछ यथार्थ का द्वन्द्वात्मक रूप था जिसे महापडित राहुल ने 'समाजवादी यूटोपिया' की सज्ञा दी है। (देख मानव समाज, राहुल साकृत्यायन पृ०२२७) इन सब कारणा से 'जन' शब्द एक व्यापक धारणा का प्रतिरूप हो गया जिसम वैज्ञानिक उद्योगवाद प्रजातत्र की भावना सर्वहारा, मध्यवर्ग स्वतत्रता, समानता न्याय आदि के तत्त्व इस प्रकार क्रमश सयाजित हुए कि एक विशाल श्रम-समूह का उदय हुआ जिसे हम 'जन' शब्द से अभिमित करते है। यह जन-चेतना आज के युग का एक प्रमुख विचार-दर्शन है जिसन मात्र राजनैतिक और अर्थनीति को ही प्रभावित नहीं किया, पर साहित्य, कला, दर्शन तथा अन्य मानवीय-क्रियाओ को भी प्रभावित किया।

इस दृष्टि से 'लाक' का क्षेत्र अब कही ज्यादा व्यापक हो गया है, और वह भी इस नए प्रकार की जन-चेतना के कारण। इस स्थिति ने "लोक-जन" के व्यापक वर्ग को उत्पन्न कर दिया है जा अब मात्र गाँव, जनपद तथा आदिम जातिया तक सीमित न होकर, नगर-कस्बा तक के क्षेत्रा का अपन अदर समेट रहा है। इसी क साथ एक तत्त्व यह भी काम कर रहा है कि नृतत्त्व तथा समाजशास्त्र के अध्ययन इस पूर लाक जन-चेतना

के स्वरूप को एक ऐतिहासिक-सामाजिक 'द्वन्द्व' की प्रक्रिया के तहत प्रस्तुत कर रहे है, और इसी का फल है "जन-लोक" और "इलीट" (विशिष्ट वर्ग) के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध। लीविस तथा इलियट ने 'इलीट' तथा 'लोक जन समूह' के सम्बन्ध को रेखांकित करते हुए यह तथ्य प्रकट किया कि 'व्यक्ति' एक ऐसा स्रोत है जो 'समूह' से प्रेरणा लेता है। (कल्चर एड सोसायटी, विलियम्स, पृ०३१२) इससे यह स्पष्ट होता है कि 'इलीट' और 'जन' का सापेक्ष रिश्ता है और जहाँ पर भी यह 'इलीट' समूह से कट जाता है, वहाँ पर जन चेतना अवरुद्ध हो जाती है। इस दृष्टि से अभिजात साहित्य चाहे वह किसी समय विशेष का हो, उसमे धनिक वर्ग की विचारधारा का प्रभाव अधिक होता है उसमे आनद, विलासिता तथा चमत्कार का आग्रह अधिक होता है, यहाँ तक कि भाषा का अभिजात् रूप अधिक मुखर होता है। ऐसी स्थिति मे 'लोक जन' का सघर्षशील एव सवेदनीय रूप वहाँ पृष्ठभूमि मे चला जाता है या गायब हो जाता है। यहाँ पर मुझे याद आती है निराला की कम चर्चित पर महत्त्वपूर्ण गद्य की सवेदना को लिए उनकी कविता "दगा दी" जिसमे ऋषि, मुनि तांत्रिक (नसे टोई), सिद्ध योगी (कमल-सहस्त्ररध्र-अमृत रूप), बौद्ध (बिहार) तथा राजदरबारी कवि (अँगूठे चूसे)-ये सभी आए पर इनका सबध किसी न किसी रूप मे धनिक वर्ग या अभिजात् वर्ग से रहा, इन सबके बीच "खजड़ी" न गयी जो सतो-भक्तो-का व्यापक लोक है, वह इस वर्ग से सदा अलग ही रहा, पर सत्ता वर्ग की विसगतियो, रूढ़ियो आदि पर प्रहार करता रहा। अब कविता की ये पक्तियाँ ले-

> बड़े-बड़े ऋषि आए, मुनि आए, कवि आए
> तरह-तरह की वाणी जनता को दे गए
> ❑ ❑ ❑
> किसी न नसे टोई, किसी ने कमल देखे
> लोगो ने बिहार किया, किसी ने अँगूठे चूसे
> लोगो ने कहा धन्य हो गए।
> मगर खजड़ी न गयी।

यहाँ पर 'खजड़ी' लोक-जन चेतना का प्रतीक है, मगर निराला यही नही रूकते है, पर विदेशी सस्कृति के प्रभाव को 'पियानो' शब्द से सकेतित करते है जो खजड़ी से द्वन्द्वरत है। आगे की पंक्तिया ले-

मगर खजड़ी न गई।
मृदग तवला हुआ
वीणा सुर बहार हुई
आज पियानो के गीत सुनत है, पौ फटी।
किरनो का जाल फैला।
दिशाओ के ओठ रगे।
दिन म वेश्याए जैसे रात म
दगा की, इस सभ्यता ने दगा की। (नये पत्ते से)

यहाँ पर सम्पत्तिशाली वर्ग न मृदग की हुकार या वज्रध्वनि के खतरे को देखकर मृदग को दो भागो म विभाजित कर 'तवले' का रूप दिया जो महफिलो मे सगत दे सके। इसी तरह वीणा की 'टकार' को सितार के रूप में सुर-बहार बना दिया जो महफिलो आदि म 'रस-वर्षा कर सके। अब आता है 'पियानो' जो गुलाम बनाने वाली उपनिवेशवादी संस्कृति का प्रतीक है। इस वाद्य का झकृत परिवेश हम बाजारु और उपभोक्तावादी मनोभावो की ओर लगातार खींच रहा है। इस भूमण्डलीकरण के माहक पूर्व रुप को निराला ने १९३५-३६ म ही देख लिया था। इन क्रमिक ऐतिहासिक स्थितियो के कारण 'पौ फटी' और इसकी सर्वग्रासिनी किरणे चारो ओर फैल कर एक ऐसा सजाल बुन रही है जिसमे दिन मे ही सारे देश की सभी दिशाओ के "ओठ" रग गए है। ये दिशाए उसी तरह रग गयी है जैसे रात म वेश्याए दूसरो को आकर्षित करने के लिए बनाव शृगार करती है। ये 'वेश्याए' "भोगवादी-पूँजीवाद" की प्रतीक है। मानवीय सभ्यता का यह ऐतिहासिक क्रम निराला को यह कहने को विवश करता है कि 'सभ्यता ने दगा की' क्योंकि इन सबकी गिरफ्त म 'खजड़ी' पृष्ठभूमि म चली गयी है, और जो खजड़ी शेष है वह उपभोक्तावादी सस्कृति के कारण मात्र 'भोग' की वस्तु, अलकरण की वस्तु रह गयी है, उसका 'भोग' हो रहा है, 'आस्वादन' नहीं। अत निराला की दृष्टि म लोक-सस्कृति पर लगातार प्रहार होने पर भी 'खजड़ी' के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है। आज हम जिस स्थिति मे है, वह भोगवादी-पूँजीवादी का युग है जहाँ हर सास्कृतिक-मूल्य और प्रतिमान कमोवेश रूप म उपभोग की वस्तु बनकर रह गये है, वे एक तरह के पण्य हो गए है। यहाँ 'आस्वादन' न होकर 'भोग' हो रहा है। यह तो लोक-चेतना का भोगवादी रूप है लेकिन यह एक तथ्य है जिसे नजरअदाज नहीं किया जा सकता है। इससे सामना करना ही होगा, वह भी 'आस्वादन'

के धरातल पर। हमारे इर्द गिर्द जो लोक परम्पराएँ कलाए, और साहित्य है, उन्हे मात्र अलकरण या प्रदर्शन की 'वस्तु' न बनने दे। यदि वह थोड़ी बहुत 'वस्तु' बनती भी है, जा वह बनेगी पर उस बनने की प्रक्रिया म यदि हम उनके आतरिक सौंदर्य को उनके आद्यरूप को, उनके मर्मस्पर्शी आस्वादन को तथा उनके साम्कृतिक 'अर्थ' को भी समझने का प्रयत्न करे, तो वह "वस्तु" बनने की प्रक्रिया से कुछ ता बच सकेगी। 'लोकजन' परम्परा म नए तत्त्व लगातार आ रहे है, और सबसे बड़ा तत्त्व है प्रचार-माध्यमो और इलेक्ट्रानिक मीडिया का जिसे 'उपभाक्ता-वम्तु' की तरह परोसा जा रहा है, न कि आस्वादन के धरातल पर। ये 'माध्यम' अत्यन्त सशक्त माध्यम है यदि इनके द्वारा एक स्वस्थ लोक-सस्कृति के रूप को रखा जाए, तो मेरे विचार से लोक-जन का एक सार्थक बिम्ब सामने आ सकता है।

'लोक' और 'इलीट' के द्वन्द्वात्मक रिश्ते म मात्र सघर्ष नहीं है, वहाँ एक 'सवाद' या सश्लेष की भावना है। द्वन्द्वात्मक का अर्थ 'प्रतिवाद' या एटीथीसिस (सघर्ष) तक सीमित नहीं है, उसमे 'सिन्थैसिस' या सश्लेष भी है। द्वन्द्व के बाद यह सश्लेष एक प्रक्रिया है जो प्रकृति का सत्य है। 'लोक' और 'इलीट' की भी यही स्थिति है। गाँधी, नेहरू, होरी, दवदास, मार्क्स आदि मात्र अब परिष्कृत साहित्य के अग नही रह गए है, वे 'लोक जन' के अग होते जा रहे है। उसी प्रकार लोक के अनक आद्यरूप, प्रतीक, वम्तुए तथा चरित्र आज के लिखित साहित्य म नए रूपो म सस्कारित हो रह है। आचलिक साहित्य, ग्राम जनपदीय साहित्य तथा नगर-कस्बे का साहित्य, ये सब एक दूसरे स सवाद कर रहे है। नागार्जुन, त्रिलोचन विश्वनाथ प्रसाद तिवारी रेणु, रामदरश मिश्र तथा अनक युवा रचनाकार हमारे लोक जन की वस्तुओ, चरित्रो तथा वहाँ क जन जीवन का रचनात्मक अर्थ दे रहे है। यह सारा का सारा परिदृश्य इस बात को स्पष्ट करता है कि 'लाक-जन' चेतना का एक व्यापक रूप उभर रहा है जो लिखित साहित्य मे दखा जा सकता है। यह सवाद या सश्लेष की प्रक्रिया का सूचक नहीं है क्या?

यहाँ एक अन्य सत्य को भी अब स्वीकार करना चाहिए कि लोक-साहित्य मौखिक-परम्परा का वाहक है, वह पिछले युगो मे रहा भी है, पर अब वैज्ञानिक विकास के कारण, तथा शिक्षा के प्रचार क कारण, वह मौखिक परम्परा अब लोक-सस्कृति का सूचक नहीं रह गयी है, वह एक ऐतिहासिक स्थिति थी। यह सही है कि अपवाद के रुप म विमराम

आदि कुछ लोक गायक एव रचनाकार हो जाएँ, पर उनके साहित्य की मौखिक परम्परा होते हुए भी, उनका लिखित रूप भी ग्राह्य है। अत लोक-सस्कृति को मात्र मौखिक-परम्परा से जोड़ना, अनपढ़ो की परम्परा से जोड़ना, ग्रामीणो-जनपदो तक सीमित करना, 'लोक' के अर्थ को सीमित करना है, क्योंकि आज से ७०-८० वर्ष पहले का 'लोक' आज का लोक नही है। लोक एक विकासमान प्रत्यय है जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है।

मै अपनी बात को एक उदाहरण से स्पष्ट करना चाहूँगा क्योंकि यह विषय (सवाद का) एक अलग आलेख की अपेक्षा रखता है जो कभी आगे पूरा करूगा। त्रिलोचन एक जन-लोक कवि है, और "वही त्रिलोचन है" उनकी एक ऐसी कविता है जो वैयक्तिक होते हुए भी कवि अपने को 'लोक' मे विछा देता है: और यहाँ पर त्रिलोचन, त्रिलोचन न रहकर स्वय 'लोक' हो जाते है, वे जो कुछ भी है, लोक में बिखरे हुए है तथा तप-तप कर ही वे एक सघर्षरत आम आदमी की तरह, सोने की तरह निखर आए है। यह पूरी कविता 'जन-लोक' का सूचक है। उसका पहनावा, उसका चलना, फटे-लटे वस्त्र, चौड़ी छाती, टेढ़ी-मेढ़ी बांहें, धुन का पक्का और जो तप कर सोने की तरह निखरा हुआ है-यह है आज का 'जन'

वही त्रिलोचन है, -जिसके तन पर गंदे
कपड़े है/ कपड़े भी कैसे-फटे लटे है----
चलना तो देखो इसका-
उठा हुआ सिर, चौड़ी छाती, लम्बी बाहे
सधे कदम, तेजी से टेढ़ी मेढ़ी राहे-----
----कौन बताएं----
क्या हलचल है, इसके रुँधे रुँधाए जी मे
कभी नहीं देखा है इसको चलते धीमे।
धुन का पक्का है,चेते नहीं चिताए,
जीवन उसका जो कुछ भी है, पथ पर बिखरा है
तप-तप कर ही भट्टी में सोना निखरा है।

(उस जनपद का कवि हूँ में)

लोक-चेतना का एक ऐतिहासिक संदर्भ है-उसका 'प्रकृति' से सबंध, क्योंकि आदिम स्थिति से लेकर आज तक यह संबंध किसी न किसी रूप

म जन-मानस का आदालित करता रहा है। प्रकृति का यहाँ अथ व्यापक है-इसम वनस्पति एव जाव जगत शामिल है जा आदिम जातिया क कर्मो व विश्वासा म अपना महत्त्वपूण स्थान रखत है। नृतत्त्व विज्ञान ने इस अनादि सवध का मिथका तथा लाकवृत्ता में विवचित किया है और उनका यह अध्ययन इस तथ्य का समक्ष रखता है कि मानव क अनक कमकाण्ड' विश्वामा तथा लाकगाथाआ म इस प्रकृति का मानवीकृत रूप या कहीं कहीं चिकित्मा क लिए भी उनका प्रयाग मिलता है। अत लाक चतना का गहरा मवध इस प्रकृति म है। आज हम प्रकृति का 'दाहन' अधिक कर रह है और मरा विश्वास कि यह 'दाहन' लाकचतना मे ही राका जा मकता है। प्रकृति के प्रति एक "मानवीय" राग का रिश्ता कम हाता जा रहा है जिस लाक जन चतना स ही वचाया जा मकता है। यदि हम आज क साहित्य का देख ता रचनाकार प्रकृति क इस 'दाहन' क प्रति सजग है और उनका रचनाआ में जीवा व वनस्पतिया क अनक सकारात्मक सदभ प्राप्त हात है। प्रकृति क प्रति यह रागात्मक सवध 'लाक चतना का ही रुप है जा एक "आद्यरूप" (आरकीटाइप) की तरह मानवीय चतना का आदालित करता रहा है। यह सही है कि यह प्रकृति कहीं मासल है कही त्रासद कहा विडम्वित है ता कही सघपमूलक तथा कहीं रहस्यात्मक है ता कहीं मानवीय सवधों की यथाथता का लिए हुए। यहाँ पर मै अनक कवियों में स लोक जन कवि बाबा नागाजुन क प्रकृति-चित्रा में उपर्युक्त भिन्न रिश्तों म स एक उदाहरण लना चाहूगा जहाँ प्रकृति क प्रति एक गहरी सवदना क साथ उस पर हा रह 'नग्न नृत्य" का त्रासद एहसास प्राप्त हाता है जा लाक चेतना का ही रूप है-

नंगे तरू है नगे डाल
इन्ह कौन मे हाथ सँवार
इनका नगापन ढक जाए
हरियाली इन पर झुक जाए
नग्न नृत्य अब भी रूक जाए

(खिचड़ी विप्लव दखा हमन पृ०४२)[1]

यहाँ पर प्रकृति का चित्र मात्र 'दृश्य' नहीं है, वरन् पर्यावरण के सकट क प्रति कवि की गहरा चिता है जा लाक चतना क व्यापक परिदृश्य का समक्ष रखती है। यदि गहराइ म दखा जाए ता नागार्जुन क काव्य का यह

एक ऐसा पक्ष है जो उनके जन-कवि के परिदृश्य का एक नया आयाम देता है। वे प्रकृति के पास जाते है तभी 'वहुत दिनो के वाद' रुप-रस-गध स्पर्श-शव्द के रूपो को उन्होने 'भोगा' और 'अर्थ' दिया-

बहुत दिनो के बाद
अब की मैने जी भर भोगे
गध-रूप-रस-शव्द स्पर्श
साथ साथ इस भू पर
बहुत दिनो के बाद। (सतरगे पखो वाली पृ०२६)

मेरे विचार से जिस भी कवि मे लोक-चेतना का थाड़ा या ज्यादा स्पर्श होगा, वह प्रकृति के 'आद्यरूप' की ओर अवश्य आकर्षित होगा क्योंकि किसी न किसी स्तर पर मानव का प्रकृति से एक ऐसा 'आदिम' सबध है जो उसके 'अचतन' मे एक 'आद्यरूप' की तरह व्याप्त है जो भिन्न रूपो म अभिव्यक्ति प्राप्त करता है।

उपर्युक्त विवेचन से -लोक चतना' के बदलते परिप्रेक्ष्य को रेखांकित करते हुए मैने उसे 'जन' से भी जोड़ा है जो उसे जनपद-गॉव-आदिम जातियों क अतिरिक्त कस्बों, नगरो तथा महानगरो से भी जोड़ता है जहाँ "लोक-जन" किसी न किसी रूप म दोनो मे "सवाद" करता है और एक नयी "लोक-जन-सस्कृति" को समक्ष रखता है जिसमे सचार माध्यमो, वैज्ञानिक प्रगति तथा नए रूपाकारो, प्रतीको, बिम्बों का हस्तक्षेप हो रहा है।

❑

राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक कथा साहित्य में इतिहास की पुनर्रचना

महानपडित राहुल का व्यक्तित्व वहुआयामी था। वे नवजागरणकालीन भारत के उपज थे और नवजागरण की अनेक विशेषताओ मे से एक विशेषता भिन्न ज्ञान-क्षेत्रो के अत सम्बन्ध और सवाद की दिशाएँ थी क्योंकि यह युग विचारो के द्वन्द्व और विकास का युग था जिसक मूल मे वैज्ञानिक-दृष्टि के विवेकमूलक विवेचन का आधार था। विवेकानद, महर्षि दयानद, रानाडे, राहुल, प्रेमचद, राधाकृष्णनन् तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि की लम्बी पंक्ति नवजागरण से उद्वेलित होकर नयी वैचारिक चेतना के द्वारा भारतीय समाज मे भिन्न प्रकार के परिवर्तनो का सूत्रपात कर रही थी। राहुल इसी चेतना के प्रखर प्रकाश-स्तभ थे। विडम्बना यह रही कि राहुल को एक यायावर तथा पाण्डुलिपि सग्रहकर्ता के रूप मे ही अधिक जाना गया है, उनके अन्य महत्वपूर्ण रूपो (यथा दार्शनिक, वैज्ञानिक, पुरातत्त्वविद्, इतिहासकार तथा साहित्य सर्जक आदि) को वह 'अर्थवत्ता' नही प्राप्त हुई जो उनके वहुआयामी कृतित्व को सही परिप्रेक्ष्य प्रदान कर सकती। अव शायद वह समय आया है कि हम राहुलजी के "देय" का उचित निर्धारण और मूल्याकन करे। मेरे विचार से, यह मूल्याकन उन्ही के द्वारा हो सकता है जो भिन्न ज्ञानानुशासनो के आवश्यक ज्ञाता हो।

राहुल ने दर्शन, विज्ञान, इतिहास, नृतत्त्वशास्त्र, पुरातत्त्व, साहित्य, भाषा चितन तथा लोक साहित्य आदि विषयो पर लिखा और ये सभी विषय राहुल के ज्ञान-समुद्र के अभिन्न अग है। उनका ज्ञान और अनुभव इतिहास

और समाज सापेक्ष है और साथ ही घुमक्कड़ी से उसका गहरा सम्बन्ध है। इसका प्रतिपादन वे अपने ग्रंथ "घुमक्कड़शास्त्र" में करते हैं।

इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में मैं राहुल जी की इतिहास दृष्टि और उनके ऐतिहासिक कथा-साहित्य को लेना चाहूँगा क्योंकि उनके सारे लेखन में इतिहास और वैज्ञानिक दृष्टि का आधार है। राहुल जी ने इतिहास को वस्तुगत वैज्ञानिक आधार ही नहीं दिया, वरन् उन्होंने सृजन के स्तर पर इतिहास की पुनर्रचना की है, उस व्यापक अर्थ में मानवीय संवेदना और जन-चेतना तथा आकांक्षाओं से जोड़कर इतिहास को जनवादी-परम्परा का "अर्थ" प्रदान किया है। इस परिप्रेक्ष्य को मैं उनकी तीन ऐतिहासिक कृतियों "वोल्गा से गंगा" "जय यौधेय" तथा "सिंह सेनापति" के विशेष संदर्भ में विवेचित करूँगा।

राहुल की इतिहास दृष्टि भौतिकवादी वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित है। उन्होंने मानव विकास को श्रम से उद्‌भूत चेष्टाओं तथा प्रकृति से द्वन्द्व की स्थिति में माना है। फिर भाषा और मस्तिष्क का विकास, वनमानुष से मानव का विकास और फिर आदिम साम्यवाद से मध्य मानव तक की यात्रा और अंत में वैज्ञानिक समाजवाद या मार्क्सवाद तक की लम्बी विकास-यात्रा का जो विवेचन राहुल जी ने अपनी पुस्तक 'मानव समाज' तथा "विश्व की रूपरेखा" में किया है, वह इतिहास के विकासात्मक एवं द्वन्द्वात्मक रूप को प्रस्तुत करता है। इस विकासात्मक रूप में वे 'मार्क्सवाद' और 'बौद्ध दर्शन' को विशेष महत्त्व देते हैं क्योंकि उन्होंने बौद्ध विचारधारा को मार्क्सीय विचारों से पुष्ट ही नहीं किया है, वरन् बौद्ध दर्शन में साम्यवादी तत्त्वों को लोकेट भी किया है (जैसे समानता, संघीय वितरण, सम्पत्ति का सामूहिक विपणन, निम्नवर्ग का आकर्षण आदि)। इस प्रकार राहुल जी इतिहास को द्वन्द्वात्मक एवं विकासात्मक मानते हैं और आर्थिक आधार को भी महत्त्व देते हैं जो किसी न किसी रूप में अधिरचना (न्याय, धर्म, राजनीति, दर्शन आदि) को प्रभावित करती है। राहुल की इतिहास दृष्टि इसे मानती है, लेकिन कला, साहित्य, धर्म को वे पूरी तरह से आधार-संरचना पर निर्भर नहीं मानते हैं। 'मानव समाज', 'विश्व की रूपरेखा', 'मध्य एशिया का इतिहास' तथा 'अकबर' जैसे ग्रंथों में उनकी उपयुक्त इतिहास-दृष्टि काम करती है। यही दृष्टि उनके ऐतिहासिक उपन्यासों व कथाओं में भी परीक्षित देखी जा सकती है।

राहुल जी की इतिहास दृष्टि "वैज्ञानिक समाजवाद" पर आधारित

है। उनका स्पष्ट मानना है कि साम्यवाद का सही रूप मे समझने के लिए वैज्ञानिक भौतिकवाद को समझना जरूरी है। वैज्ञानिक समाजवाद का यह मानना है कि विज्ञान के आविष्कारो का कुछ व्यक्तियो के नफे के लिए इस्तेमाल न कर सारे समाज के लिए उसका उपयोग करना ही वैज्ञानिक साम्यवाद है। इसी विचारधारा (मार्क्सवाद) के कारण व शोषण और अन्याय का विरोध करते है और जन सघर्ष और चेतना को महत्त्व देते है। उनका कथा साहित्य इसी चेतना को,इसी मानव विकास को, तथ्यो और साक्ष्यो के आधार पर कल्पना और सवेदना की सहायता से, ऐतिहासिक कथावृत्तो की पुनर्रचना करते है जिसका विवेचन हम आगे करेंगे।

राहुल जी की इतिहास-दृष्टि म तथ्यो और साक्ष्यो का विशेष महत्त्व है और इसी से व इतिहास के लिए 'पुरातत्त्व' को जरूरी मानते है। उनका मानना है कि 'इतिहास की कसौटी परम्परा नहीं, पुरातत्त्व है। जिस ऐतिहासिक बात को पुरातत्त्व का समर्थन प्राप्त नहीं है, उसकी नींव बालू पर है।' (विविध प्रसग, पृ०३३) मेरा मानना है कि परम्परा इतिहास के लिए जरूरी है जिसे पुरातत्त्व अपने साक्ष्यो के आधार पर 'अर्थ' प्रदान करता है। यदि गहराई से देखा जाए तो राहुल जी ने पुरातत्त्व के द्वारा, अलिखित एव लिखित साक्ष्यों के द्वारा अतीत और परम्परा को "अर्थ" ही दिया है। राहुलजी ने पुरातात्त्विक सामग्री के आधार पर इतिहास-रचना की जो शुरुआत की, वह एक "पहल" थी। ईंटो की बनावट, उसकी गहराई, मूर्तिया, शिलालेख, जीवाश्म, टीले-दूहे, पाण्डुलिपियाँ, उपकरण तथा सिक्के आदि साक्ष्यो के द्वारा राहुल जी ने किन्नर जाति, थारू जनजाति, सिद्धो का साहित्य, तिब्बतीय पाण्डुलिपिया तथा शको, हूणो, मगलो के मध्य एशियाई इतिहास की जो विवेचना की, वह उनकी उस 'दृष्टि' की परिचायक है जो इतिहास को वस्तुवादी वैज्ञानिक विधि से प्रस्तुत करना चाहती है। इसी सदर्भ मे एक बात यह है कि राहुल जी के लिए पुरातत्त्व मात्र उत्खनन तक सीमित नही है, वरन् वे उसमे पाण्डुलिपियो, चित्रो, मूर्तियों आदि को भी शामिल करते है, यहाँ तक कि प्राच्य विद्या को भी। मेरे विचार से यह पुरातत्त्व का व्यापक सदर्भ है जो शायद आधुनिक पुरातत्त्व को मान्य न हो। कुछ भी हो, यह मानना जरूरी है कि राहुल जी ने इतिहास को एक व्यापक फलक प्रदान किया और यह फलक उनके ऐतिहासिक कथा-साहित्य में अपनी "रचनात्मकता" के साथ अर्थ प्राप्त करता है।

राहुल के ऐतिहासिक उपन्यास और कथाएँ, जैसाकि कहा गया कि

वैज्ञानिक और एतिहासिक भौतिकवाद या यथार्थवाद की उस परम्परा को विकमित करते है जो पेमचद और यशपाल आदि ने आरभ किया था। इसके विपरीत हजारीप्रसाद द्विवेदी म रोमानी यथार्थवाद का रूप प्राप्त होता है जबकि राहुल म यथार्थवाद का ऐतिहासिक एव वैज्ञानिक रूप प्राप्त होता है। अब प्रश्न है कि राहुल जी की यह यथार्थवादी भौतिकवादी दृष्टि क्या थी? राहुल ने अपने एतिहासिक कथा साहित्य क द्वारा गणराज्यो के जनतांत्रिक मूल्या को प्रस्तुत करते हुए उनकी सामाओ का भी सामने रखा। इसके अतिरिक्त उनक कथा साहित्य म नारी के रोमानी या छायावादी रूप का विरोध है और स्त्री पुरुष की समान सहभागिता का स्वर वहा प्रमुख है। यह न प्रमाद म है न हजारी प्रसाद द्विवदी म। उनक कथा-साहित्य का एक मुख्य अग है मानव विकास की द्वन्द्वात्मक प्रगति जा 'वोल्गा म गगा तक की कथाओ म देखी जा सकती है। यहाँ पर एतिहासिक तथ्यो का ठास आधार है और इस आधार मे कल्पना और सवेदना का अपना यागदान भी है। असल मे राहुल जी ने इन ऐतिहासिक रचनाओ के द्वारा अपन विचारा का परोक्षत प्रतिपादन किया है। यदि गहराई स देखा जाए ता 'मानव विकास , 'विश्व की रूपरेखा" तथा 'वैज्ञानिक भौतिकवाद जैसी पुस्तका मे जो सृष्टि और मानव विकास की क्रमिक स्थितिया का विवेचन है उन्हीं साक्ष्यो-तथ्या के आधार पर उन्हान 'वाल्गा से गगा तक की कथाओ का सृजन किया। मरे विचार स शायद राहुल जा एक एस रचनाकार एव चितक है जिन्हाने मानव विकास की वैज्ञानिक व्याख्या का पहली बार क्रमिक रूप मे कथात्मक रूपातरण प्रदान किया जिससे जन-सामान्य इस परम्परा का हृदयगम कर सके। यही विकास-परम्परा यदा-कदा उनके उपन्यासो म भी देखी जा सकती है जिसका सकत मे आग करूँगा।

'वाल्गा से गगा तक म राहुल जी न समाज-सरचना उसके सघर्ष तथा विकास का इस प्रकार प्रस्तुत किया है जा 'मानव समाज' ग्रथ मे वर्णित विकास स्थितिया म काफी मल खाती है अतर यह है कि यहाँ पर उन अवस्थाओ को पात्र कल्पना एव घटना क्रम के द्वन्द्व के द्वारा कथावस्तु का सृजन किया गया है जिनम मानव क आदिम श्रम एव सस्कार का रचनातमक अथवत्ता प्रदान की गया है। दूसरी बात यह है कि इन कथाओ क द्वारा आय जना क वाल्गा स गगा तक क विस्तार और आर्य सभ्यता क विकास का कहानी है। इन कहानिया म स्पष्ट है कि मानव का शरीर उसका चरित्र उसक सस्कार भौतिक आर्थिक परिस्थितिया के अनुसार

अनुकूलित हात है। गहुल जी इन कहानिया के द्वारा आय-जाति की एकता और दक्षिण म उनके विस्तार को प्रस्तुत करते है और इस क्रम म व आर्य-अनार्य सघष को 'देवासुर सग्राम' का रूप मानते है। आर्य लाग इन अनार्यो का काली त्वचा वाले तथा "लिग पूजक" कहते है। इस दवासुर सघर्ष को इसक अंतिम रण का "कोलाहल" नाम दिया है। इसी सग्रह मे दो महत्त्वपूर्ण कहानियाँ "निशा" और 'दिवा' है जो "मानव समाज" की दो अवस्थाओ 'जगल' और "आदिम साम्यवाद" से सम्बन्धित है। निशा ६००० ई० पू० के मानवो की कथा है जा प्रागैतिहासिक्त है। अवस्था जगल है घुमतू है तथा समाज की सरचना कबिलाई है। आग का आविष्कार हो चुका है और समाज मातृसत्तान्मक है और 'निशा' आगे चलकर स्वामिनी बनती है। आदिम समाजो मे यह स्थिति अब भी प्राप्त होती है। लेखक ने इस कहानी क द्वारा 'निशा' (अधकार युग का वाचक) को मातृसत्ता का प्रतीक माना है और यह कहानी उस समय की कबिलाई सस्कृति को सकेतित करती है जिसम हिद ईरान यूरप की सारी जातियाँ एक 'कबिलाई' के रूप मे है। विकास की दृष्टि से दूसरी कहानी 'दिवा' है जो अधकार युग का भेदन कर 'दिवा' के प्रतीकार्थ का व्यक्त करती है। यहा आदिम साम्यवाद का प्रकाश है जब मानव पत्थरा के उपकरण बनाता है और श्रम की उत्पादकता बढ़ती है और उस पर सभी का अधिकार है। इस प्रकार की स्थिति 'जय योधेय' उपन्यास बढ़ती है और उस पर सभी का अधिकार है। इस प्रकार की स्थिति 'जय यौधय' उपन्याम म भी है जब जय सिहवर्मा तथा वासती सामुद्रिक यात्रा के समय समुद्र तट पर बसी एक जनजाति के बीच मे आत है जहाँ आदिम साम्यवाद के चिन्ह नजर आत है। यह कहानी प्रत्यक्ष रूप से जगल मानव के आग की कहानी है जब समूह और 'जन' बनने लग है। 'दिवा' यहाँ पर भी जन नायिका है। लोग ज्यादा सुखी है और "जन समिति' का शासन है।

इसके बाद की कहानियाँ ब्रह्म दर्शन प्रावहण लापा की प्रम कथा 'नागदत्त' की कथा (धर्म और प्रहार) अश्वघाष प्रभा की प्रेम-कथा जिसमे जीवन जगत के गभीर प्रश्न है 'बाबा नूरदीन' खिलजी काल की कहानी है जा हिदू मुस्लिम सौहाद्र पर आधारित है रेखा भगत की कहानी ब्रिटिश साम्राज्य क खिलाफ (ईस्ट इंडिया कम्पनी) विद्रोह की कहानी है जा अत म जमींदार की हत्या कर दता है मग्गल सिह प्रथम स्वाधीनता सग्राम का नायक है जा मार्क्स से प्रभावित है पुराणपंथियों का विरोधी है तथा

गणराज्य की स्थापना करना चाहता है। य सभी कहानियाँ प्रत्यक्ष या पराक्ष रूप से राहुल जी के विचारा को पात्रा तथा घटनाआ के द्वारा प्रस्तुत करती है और इस प्रकार वे इतिहास (भारतीय) का नया सदर्भ देती है एक ऐसा इतिहास जहाँ "वोल्गा और गगा के तट के खून आपस म मिश्रित हो गए है।" (सुमेर का कथन) इसी सदर्भ म एक महत्वपूर्ण बात यह है कि मगल सिह जो स्वतत्रता-सग्राम मे कूद पड़ता है उसके साथ हिंदू, मुसलमान जाट, गूजर, ब्राह्मण, राजपूत सभी है, सभी एक है, सभी एक साथ रोटी पकात और खाते है। इस प्रकार राहुल जी हिंदुस्तान की जातीयता का व्यापक आधार देना चाहत है लकिन ऐसा आधार अस्तित्व म नही आ सका। राहुल की ये कहानियाँ मात्र कथाएँ नही है वरन् वे आज के भारतीय समाज के लिए प्रासंगिक है, इनका महत्त्व चाह रचनात्मकता की दृष्टि से अधिक न हो, लेकिन इतिहास और समाज क विकास तथा विचार की द्वन्द्वात्मकता के लिए उनका महत्त्व सदा रहगा। वस्तुत 'वाल्गा स गगा' आदिम जन शासित राज्या स लकर आधुनिक गणतत्र तक की एक विकासात्मक वैचारिक यात्रा है।

इसी प्रकार की वैचारिक विकास की रचनात्मक यात्रा हम उनके ऐतिहासिक उपन्यासा म देखते है। राहुल जी इन उपन्यासा (जय यौधेय, सिह सनापति,मधुरस्वप्न)के द्वारा *गणतत्रा* के प्रजातांत्रिक मूल्या को प्रस्तुत करते हुए किसान आदालन, नारी स्वातत्र्य, वर्ग-सघर्ष और शाषण तथा भिन्न वैचारिक द्वन्द्वा का इस प्रकार समायाजित करत है जो आज भी अपनी '*अर्थवत्ता*' रखते है। उदाहरण के तौर पर '*जय यौधय*' और '*सिह सेनापति*' क नायक जय और सिह खेत म काम करत है और उनकी नायिकाए भी खेत म काम करती है, ऊखल कूटती है। यदि इस प्रसग को देखा जाए तो एक बात यह स्पष्ट होती है कि राहुल जी बिहार व उत्तर प्रदेश के किसान-आदोलना के नता भी रहे और इन उपन्यासा म ऐस प्रसगा का सटीक वर्णन इन्ही आदोलना स सम्बद्ध हाने के कारण हुआ है। राहुल की दृष्टि उन गणराज्या की आर जाती है जो साम्राज्या (मगध, कौशल आदि) क उदय क साथ ध्वस्त किए गए। यदि गहराईसे देखा जाए ता राहुल जी प्राचीन भारत क चरमरात गणतत्रीय ढाँचे के त्रासद रूप को गल्प रचने की वेदना से इसलिए ओतप्रात हाते है कि वे उनके प्रगतिशील तत्त्वा को अपने समय के लोकतांत्रिक सघर्ष क लिए प्ररणा का स्त्रात मानते थ। उनके नेहासिक उपन्यास इसी वदना के प्रतिरूप है और रुधिर सबध क घटाटोप

मे वे "जातीयता के लोकतत्र" के पक्षधाती है। राहुल जी दासो, वेश्याओ और क्रीतो का विस्तृत हवाला 'जय यौधेय' मे देते है जहाँ काँची (दक्षिण भारत) मे देश-विदेश की अनेक दास-दासियो का क्रय-विक्रय होता है। दास प्रथा का यह सर्वग्रासी रूप हमे इन उपन्यासो मे मिलता है। एक दूसरे प्रकार का नारी-शोषण गणिकाओ का है जो सामाजिक दबाव से शोषित होती है। 'मधुमती' और उपासिका दो भिन्न वर्गो की नारियाँ है, मधुमती सामाजिक त्रासदी से गणिका बनती है तो उपासिका (सिहल मे) सार्थवाह की अतृप्त पत्नी होने के कारण भिक्षु जय की ओर आकर्षित होती है। ये दोनो पात्र अपने-अपने स्थान पर सम्मान के पात्र है-एक मे परिस्थितियो का दबाव है तो दूसरे मे (उपासिका) मनोवैज्ञानिक स्थिति का। लेखक ने इन दोनो पात्रो के चरित्र को रोचक सवाद शैली म प्रस्तुत किया है। यही नही धार्मिक अनुष्ठान और कर्मकाण्ड के पीछे शोषण की प्रक्रिया चलती है, उसका पर्दाफास इन उपन्यासो मे हुआ है। परलोक स्वर्ग तथा ईश्वर जैसे प्रत्ययो का खडन भी सवाद-शैली म किया जाता है जैसे जय, वसुबधु तथा आर्य प्रसग के सवाद। इन उपन्यासो म बौद्ध सघो की सरचना, भिक्षु होने की प्रक्रिया तथा सघो मे धन सचय की प्रवृत्ति -ये सभी तत्त्व उस समय की धार्मिक आर्थिक स्थिति को सकेतित करते है। राहुल ने ऐतिहासिक साक्ष्यो के आधार पर अपनी कथा वस्तु को निर्मित किया है और कल्पना-सवेदना के द्वारा इन प्रसगो को रचनात्मक सदर्भ प्रदान किया है।

एक बात और। राहुल जी ने 'जय यौधेय' उपन्यास का प्रथम पुरुष मे लिखा है और 'जय' का जो यात्रा-सदर्भ है (उत्तर से दक्षिण तक), वह लगता है कि वह स्वय राहुल का यात्रावृत्त है। लेखक के यात्रा अनुभव यहाँ पर अर्थ प्राप्त करते है और जय तथा सिह ये दोनो पात्र राहुल के व्यक्तित्व की छाप लिए हुए है जो परोक्ष है, आरोपित नही। एक अन्य विशेषता यह है कि ये पात्र काल्पनिक होते हुए भी पूरी ऐतिहासिक प्रक्रिया मे इस तरह एकीकृत हो गए है कि वे ऐतिहासिक पात्र लगते है। राहुल ने इन पात्रो के द्वारा (अन्य पात्रा के द्वारा भी जैसे वसुबधु, धर्मकीर्ति वासती आदि) जो वैचारिक द्वन्द्व का क्रमश विकास किया है, वह उपन्यास को रोचक बनाता है। उपन्यासो से गुजरते हुए मुझे हमशा यह लगता रहा कि जैसे राहुल जी के "विचार-साहित्य' को हम उपन्यासो और कथाआ म रचनात्मक "अर्थवत्ता' के साथ पढ़ रह है। इस प्रकार राहुल क उपन्यास यात्रा की नीव पर आधारित है और इसी के स थ ज्ञान अनुभव के अनकानेक

आयाम उसमे समायोजित है। मेरे विचार से राहुल जी इस दृष्टि मे एक अलग प्रकार के उपन्यासकार है।

अक्सर राहुल जी के उपन्यासो को लेकर यह कहा जाता है कि वे यथार्थवादी है, रोमानी नहीं। यह बात पूरी तरह से सत्य नहीं है। यदि हम जय या सिंह के चरित्र को ले, तो जनजाति की कन्या 'श्यामा' के प्रति उसका आकर्षण क्या है। वासती और सिह वर्मा का प्रेम सम्बन्ध क्या है, यही नही उपासिका और जय का सवाद भी रोमास और यथार्थ का द्वन्द्व है। यह अवश्य माना जाना चाहिए कि राहुल की रोमास दृष्टि छायावादी नहीं है, वरन् उनकी दृष्टि परिवर्तित काल बोध के अनुसार अधिक यथार्थमूलक, कठोर एव मारक है। रोमानी दृष्टि-साहित्य का अभिन्न अग है, उसका रूप एक नहीं है, वह समयानुसार बदलता है।

राहुल की इतिहास-दृष्टि जनवादी है इसी से उन्होने महान् ऐतिहासिक पुरुषो (यथा चद्रगुप्त, समुद्रगुप्त आदि) का अपन उपन्यासो का नायक नही बनाया वरन् जन-सामान्य को नायक का दर्जा दिया जैसे जय, सिह आदि। यहाँ पर उनकी दृष्टि वाल्टर स्काट से मेल खाती है। यहाँ 'लघु' की प्रतिष्ठा है जो मूलत यथार्थवादी दृष्टि है। राहुल के नायक व्यक्ति होते हुए भी 'वर्ग' का प्रतिनिधित्व करते है। इसी के साथ राहुल की नायिकाए अपने कर्म, व्यवहार और विचार मे पुरुष की समकक्षता प्राप्त करती है, पर इनमे प्रेम और विवाह केंद्र मे नहीं है और न वह त्रासदी है जो हमे जैनेन्द्र, अज्ञेय और शरत् मे प्राप्त होती है। राहुल जी का ध्यान नारी के नए सौदर्यशास्त्र की रचना की ओर अधिक है। वे कर्मरत-सघर्षरत नारी बिम्ब को उकरने का प्रयत्न करते है। प्रेमचद और यशपाल मे भी ऐसी नायिकाए नहीं प्राप्त होती है, और इस दृष्टि मे राहुल के नारी पात्र (जिनका सकेत कर आया हूँ) पुरुष के समकक्ष है और कही अधिक यथार्थवादी सरचनाए है। राहुल जी के नायक (जय, सिह) मूल्यो के प्रति (गणतत्र) गहन रूप मे प्रतिबद्ध है, और इसके विरोध मे अजातशत्रु चद्रगुप्त और बिम्बिसार साम्राज्यवादी मूल्यो के प्रति। ये उपन्यास इसी द्वन्द्व को प्रस्तुत करते है और जन-सामान्य क ऐतिहासिक महत्त्व को रखांकित करते है। इसी सदर्भ मे एक बात यह है कि राहुल जी ऐसे नायको को चुनत है जो दोनो पक्षो (गणतत्र व साम्राज्यवाद) के सम्पर्क मे हो, जैसे 'जय'। मेरे विचार से जय का चरित्र गणराज्य की स्थापना हेतु सघर्ष करता है, पर वह सफल नहीं हो पाता है, इस असफलता का राहुल जी ने पूरी जद्दोजहद के साथ चित्रित

किया है पर अंत में उसकी 'मृत्यु' को पृष्टभूमि म डालकर उपन्यास के कथ्य सवेदन का औपन्यासिक सरचना की दृष्टि मे कमजोर कर दिया है। यह स्थिति 'सिह सेनापति' में कुछ कम है। साम्यवादी समाज सरचना का एक ब्लूप्रिंट वे जय यौधेय में दते है जिसका विस्तार इतना अधिक है कि वह औपन्यासिक सरचना को शिथिल कर दता है। फिर भी राहुल के ये उपन्यास इतिहास की जनवादी परम्परा को जिस रूप मे प्रस्तुत करते है वह उनकी प्रगतिशील एतिहासिक दृष्टि का परिचायक है। राहुल के य नायक इतिहास की सकटापन्न स्थिति को उजागर करते है जो राष्ट्रीय आदालन मे सहायक हो सके। ये नायक मनोवैज्ञानिक दृष्टि स पूण हाते है उनका चरित्र विकास उस रूप म नहीं होता है जा अक्सर उपन्यासा में प्राप्त होता है वरन् व अपना एतिहासिक दायित्व निभान क लिए मच पर आते है। उदाहरण के तौर पर "जय यौधेय" म कालिदास और 'सिह सनापति" में महामत्री वर्षकार। ये पात्र (विशेषकर कालिदास) अनायास आते है और अपनी एतिहासिक अर्थवत्ता का प्रतिपादन कर चले जाते है। ऐसा एक सवाद है जय और महाकवि कालिदास का जो अत्यत रोचक एव नए सदर्भो को उजागर करता है। इस सवाद में कालिदास अपन यश और लखन को ऐतिहासिक सदर्भ देता है और "रघुवश" की रचना के पीछे राज्यवशो का इतिहास प्रतीकात्मक है इस तथ्य को रखता है। कालिदास का यह कथन लें "श्लेष उक्ति को भी कवि का चमत्कार कहते है। मै रघुवश काव्य लिख रहा हू। मैने परमभट्टारक को कह दिया है यहाँ दिलीप और कोई नहीं तुम्हारा दादा चद्रगुप्त है।" एक अन्य स्थान पर महाकवि कहते है "मै अपनी कविताओ म उस अमर सौदर्य और अन्तर्वेदना को गाता हू, जिन्ह जब तक मनुष्य है तब तक मरना नहीं है साथ ही मै राजाओ के स्वार्थो की रक्षा के लिए इतनी बातें लिख जा रहा हूँ कि गुप्तवश ही नहीं हरक राजवश उन्हे सुरक्षित करने का पयत्न करेगा। (जय यौधेय पृ॰३४२) यह सवाद इसलिए भी महत्त्वपूण है कि राहुल जी इसक द्वारा उस सामतीय एव साम्राज्यवादी व्यवस्था की आर सकत करत है जा सृजन और विचार का अपने हित के लिए अनुकूलित करते है। यहाँ पर कालिदास कुछ समय क लिए ही आते है पर इतने समय म व अपनी छाप छाड़ जात है जिसमें आत्म-विश्लेषण का रूप द्वन्द्व स्थिति का उचित रूप में रखता है।

राहुल ने इन दोना उपन्यासा म 'युद्ध' का वर्णन बहुत विस्तृत या लम्बा नहीं किया है जैसा कि हम वृन्दावनलाल वर्मा (झासी की रानी) तथा

तोल्सतोय (युद्ध और शांति) म पाते है। राहुल जी यहाँ पर एक-दो झड़पे दिखाकर सतोप कर लेते है जबकि युद्ध की रणनीति को दिखाने से उपन्यास की महत्ता बढ़ जाती है, लेकिन लेखक ने इन 'झड़पों' द्वारा यह तो अवश्य दिखा दिया है कि दो सघर्षशील पक्षो की "स्पिरिट" क्या है उसके पीछे लक्ष्य क्या है?

राहुल के उपन्यासो म 'जन' आधार है और अधिरचना का प्रेरक तत्त्व। वे इतिहास के महान् परिवर्तन को लोकजीवन मे परिवर्तन के रूप मे चित्रित करते है। वे यह दिखलाते है कि कैसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित करते है? यदि गहराई से देखा जाए तो राहुल जी मात्र शोषित वर्ग के चित्रण तक सीमित नही है, वरन् वे अभिजात एव जन के घात प्रतिघात को चित्रित करते है। यहाँ जन वह भौतिक बुनियाद है जिससे अभिजात वर्ग मे होने वाली घटनाओ की कलात्मक व्याख्या होती है। इस व्याख्या मे इतिहास की प्रमाणिकता तो है ही, लेकिन इसके साथ ही साथ आतरिक जीवन के गुणो का समावेश भी है जैसे नैतिकता, शूरता, त्याग, नारी-स्वातत्र्य, दृढ़ता आदि जो मूलत गणराज्यो म लोक के शील है। 'सिह सेनापति' में सिह की पत्नी रोहिणी मे ये गुण भरे हुए है। ये गुण-न्यूनाधिक रूप मे उन सभी पात्रो मे है जो जन-सामान्य से लिए गए है। राहुल जी आर्थिक सामाजिक सगठन को जो उनके उपन्यासो का आधार है, इसी आधार पर वे पात्रो के शील की रचना करते है, यहाँ तक कि विचार, व्यवहार तथा सवेदना का विकास भी इसी आधार पर आश्रित है। इसे कथा-क्रम मे सुदरता से पिरोया गया है। सिह एक छात्र के रूप मे (जय भी वसुबधु से), तक्षशिला म जन के जीवन मे प्रवेश करता है। जब तक्षशिलावासियो का यवनो से युद्ध होता है, तो सिह भी इसमे भाग लेता है। सिह के शौर्य को वहाँ के जन-सामान्य के भौतिक जीवन और उसकी बुनियाद के सदर्भ मे पूरी तरह समझा जा सकता है। वैशाली तथा तक्षशिला के गणराज्य के सूत्र, दोनो की बुनियाद मे है और सिह का शौर्य, उसके विचार तथा उसका व्यवहार इसकी उपज है। यही आधार है राहुल के ऐतिहासिक उपन्यासो का जिसे हम ऐतिहासिक भौतिकवाद की सज्ञा दे सकते है। यही दृष्टि उनके ग्रथ "मध्य एशिया का इतिहास" म भी प्राप्त होती है और "मानव समाज" म भी।

मेरे विचार से राहुल की यह मानवीय ऐतिहासिक चरित्राकन शैली इतिहास की पुनर्रचना करती है। वे इतिहास को सक्रातिकाल की श्रृखला के

रूप मे चित्रित करते है। यौधेय और वैशाली गणराज्यो के इतिहास का प्रस्तुतीकरण सकटावस्था की एक ऐसी ही स्थिति है जो स्वाधीनता सग्राम के लिए उत्प्रेरक का काम करती है। राहुल का लक्ष्य इतिहास की गति को धक्को के रूप मे दिखाना है जो द्वन्द्वात्मक है। वे मूलत देशभक्त है जो 'जन' के इतिहास पर विश्वास करते है। वे अतीत की वर्तमानता को व्यजित करते है। वर्तमान प्रतीति बिदु मे अतीत के अनुभव के बिना इतिहास का काल सापेक्ष चित्राकन सभव नही है। राहुल मे यह अतीत वर्तमान के लिए है। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास की सामाजिक, वैचारिक एव आर्थिक शक्तियो और सरोकारो को "रचनात्मक" अर्थवत्ता देता है जो सुदीर्घ विकास क्रम मे हमारे वर्तमान को 'अर्थ' प्रदान करती है। राहुल की ऐतिहासिक दृष्टि 'जन' की द्वन्द्वात्मक स्थिति है जो विकास का आधार है।

राहुल के उपन्यासो मे ऐतिहासिक अनिवार्यता कठोर और तिक्त है। यह आवश्यकता ठोस ऐतिहासिक स्थितियो मे व्यवस्था के बदलाव से उत्पन्न होती है। इतिहास की शक्तियाँ अपने आघात प्रतिघात से समाज को ढकेल रही है। यह एक युग का त्रासद परिवेश है जिसका अकन 'सिह सेनापति' और 'जय यौधेय' मे द्रष्टव्य है। राहुल के लिए इतिहास मात्र ऊपरी साज सज्जा नही है, वरन् वह विचार, व्यवहार और जीवन ऊर्जा का नियामक एव नियत्रक है।

कहना यह चाहिए कि ऐतिहासिक उपन्यास आम या लोक उपन्यास है क्योंकि आम मानसिकता यह माँग करती है कि कवि, रचनाकार और लेखक ही उन्हे ऐसा 'इतिहास' दे सकते है जो उनकी आकाक्षाओ और सरोकारो को अर्थ दे सकते है, उन्हे वाणी दे सकते है। यह कार्य शुद्ध इतिहासकार नही कर सकता है क्योंकि वह तथ्यो और साक्ष्यो को ही इतिहास मानता है। लोक केवल तथ्यो का प्रमाणिक विवरण नही चाहता, वरन् वह लोक की सवेदना मे तथ्यो का घोल चाहता है और ऐसा "घोल" रचनाकार ही दे सकता है। इतिहासकार काशी प्रसाद जायसवाल ने "हिंदू पॉलिटी" मे गणराज्यो के उद्भव और विनाश की कहानी अवश्य दी, तथा अल्तेकर ने 'यौधेय' के विनाश का विवरण भी किया, लेकिन इस विनाश की ऐतिहासिक कथा को राहुल ने 'रचनात्मकता' प्रदान की और उसे कविता के 'जादू' से सस्पर्शित कर 'जन-सामान्य' की भूमिका तथा 'अर्थवत्ता' को प्रस्तुत किया। मेरे विचार से राहुल के उपन्यासो का यही सार्थक निर्धारण है-'लोकेशन' है। ❑

वैज्ञानिक बोध तथा हिंदी का कथा-साहित्य

हिन्दी का कथा साहित्य वैज्ञानिक बोध से न्यूनाधिक प्रभावित हुआ है, वह दो स्तरो पर है, एक वैज्ञानिक प्रविधि के प्रयोग म तथा दूसरे विज्ञान बोध का कथा शिल्प म प्रयोग करन म जिसके अन्तर्गत विज्ञान कथाए आती है और एक वह प्रयोग जिनम वैज्ञानिक आशय व विचार, कथा की सरचना म ढाल गए है।

साहित्य म वैज्ञानिक प्रत्यय, विचार तथा वैज्ञानिक प्रविधि द्वारा प्राप्त साक्ष्या क आधार पर भी सृजन हुए है जा गद्य साहित्य म यदा-कदा प्राप्त हात है। इस दृष्टि म वैज्ञानिक-दृष्टि क द्वारा कथाकार पौराणिक-एतिहासिक प्रसगा का नया सदभ ही नहीं दता है, वरन् उन्हे आधुनिक मानव के विवक के अनुकूल ग्राह्य बनाता है। उदाहरण क तौर पर डॉ॰ नरन्द्र कोहली क रामकथा पर आधारित उपन्यासा का लिया जा सकता है जहाँ चमत्कारी घटनाआ का वैज्ञानिक विचारा की सापक्षता म एक विवेक सम्मत रूप दिया गया है जा रामकथा की मूल-सवदना का खंडित नहीं करता है। यहाँ पर राम का धनुष-ताड़ना एक वैज्ञानिक तकनीक के द्वारा पुष्ट हाता है, वह यह कि यहाँ पर धनुष एक यत्र है जिसक सचालन की शिक्षा विश्वामित्र राम को दत है, उसक बाद व राम का धनुष यज्ञ म ले जाते है। व धनुष का अनायास कदुक क समान न उठाकर उसके सचालन म अथक श्रम एव विवक स काम लत है। इसी प्रकार हनुमान

समुद्र तैर कर पार करते है न कि उड़कर। इस सतरण मे सामुद्रिक-विज्ञान का सहारा लिया गया है जिसका सबध समुद्र की आतरिक सरचना से है। समुद्र मार्ग मे चट्टानो, वनस्पतियो तथा जल मग्न पर्वत-श्रृखलाओ का जो चित्र समक्ष आता है, उसे हनुमान अपने सामुद्रिक ज्ञान द्वारा पार करते है। मैनाक पर्वत को पार करना कुतूहल एव साहस की सृष्टि करता है, तो दूसरी ओर पर्वतकार भयकर सर्प नागमाता सुरसा तथा चपल सिहिका जैसे विकराल एव भयकर जल-प्राणिया से हनुमान का शारीरिक और विवेकजन्य सघर्ष इस बात की पुष्टि करता है कि हनुमान को लका तक पहुँचने मे कितना श्रम व साहस तथा विवेक का सहारा लेना पड़ा। यही नही, यदि हम आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम चरण मे जाए तो देवकीनदन खत्री का बहुचर्चित तिलस्मी उपन्यास "चद्रकाता सतति" मे भी परोक्षत वैज्ञानिक तकनीक या यत्र के विविध रूप प्राप्त होगे जो तिलस्म एव फन्तासी के आवरण मे छिपे हुए है। उदाहरण के तौर पर भूतनाथ ने तिलस्मी मकान का जो विवरण दिया है, उसम विद्युतचालकता का सिद्धात है कि बिगली धातु, मिट्टी, चमड़ा मे प्रवेश कर निकल जाती है, उस तरह लकड़ी से नही। यहाँ नही मकान से धुआँ, भाप ऊपर जा रहा है, उसे सूघने पर व्यक्ति बेहोश हो जाता है। दूरदर्शन का चित्र उस समय आता है जब एक तिलस्म मे दीवार पर फोटो आती है, वह भी चलचित्र के समान (देखे चद्रकाता सतति के ६ व ७ खण्ड (पॉकेट बुक)। इस तरह के अनेक उदाहरण 'चद्रकाता' मे है जिनह एक अलग निबध का विषय बनाया जा सकता है। मेरा आशय यहाँ केवल यह है कि 'चद्रकाता सतति' का तिलस्म तथा उसकी फन्तासी मे विज्ञान की तकनीक या प्रविधि का ही सहारा नही लिया गया है, वरन् उसमे यदा कदा वैज्ञानिक सिद्धातो का परोक्ष सकेत प्राप्त होता है।

जहाँ तक वैज्ञानिक प्रविधि से प्राप्त पुरातात्विक भूगर्भीय एव समाज-नृतत्वशास्त्रीय साक्ष्या का प्रश्न है इनका प्रयोग भी कथा साहित्य मे हुआ है। इन साक्ष्या के आधार पर कथा-सृजन किया गया है और जो ततु लुप्त थे, उन्हे 'कल्पना' के द्वारा जोड़ा गया। यह अवश्य है कि इनकी सृजनात्मकता एक सी नही है किसी म कम तो किसी मे अधिक। उदाहरणस्वरूप डॉ० रागेय राघव के उपन्यास 'मुर्दो का टीला' को लिया जा सकता है जिसमे पुरातात्विक साक्ष्यो तथा नृतत्व-सदर्भो के प्रकाश म सिधु घाटी की सस्कृति को एक रचनात्मक अर्थवत्ता दी गयी है। रचनात्मकता को

दृष्टि से साक्ष्या के आधार पर पात्र सृजन और घटनाआ का 'द्वन्द्व' इस कथाकृति का एक प्रमुख स्थान देता है। इसी क्रम म महापंडित राहुल के कथा साहित्य(कहानी) का भी लिया जा सकता है। राहुल की 'वाल्गा से गंगा' की शुरू की 3 4 कहानिया पुरातात्विक जीवशास्त्रीय नृतत्त्वविज्ञानी खोजा के आधार पर रची गयी है(जैसे निशा दिवा आदि) इनके तथ्य पत्थर युग धातु तथा ताम्रयुग के है। गुहा मानव म ताकर कृषि मानव तक की यात्रा इन कहानिया म है। नदिया के तट पर आदिम सभ्यता का विकास पत्थर के हथियार आखेट अग्नि का आविष्कार मातृसत्ता का प्रधानता मास ग्रहण तथा अनेक टोटमा(वृक्ष पूजा पशु पूजा) का विकास इन साक्ष्या के आधार पर शुरू की कहानिया सृजित हुइ है। य कहानिया राहुल जी की रचनात्मकता का भी एतिहासिक सामाजिक आधार देती है जिसका रूप हम 'जय यौधेये तथा 'सिंहसेनापति' उपन्यासा में भी प्राप्त हाता है जो साक्ष्या पुरातत्व के मृण्पात्र आदि तथा पाण्डुलिपिया के आधार पर गठित किए गए है। इन उपन्यासा म रचनात्मकता का अभाव होन पर भी इनका ऐतिहासिक सामाजिक महत्व है जा द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से प्रेरित है। (देख मरा ग्रंथ महापंडित राहुल समग्र मूल्याकन पृ० १६५ १६८)। मैंने यहाँ पर गद्य साहित्य से कुछ उदाहरण देकर कवल यह दिखाना चाहा है कि वैज्ञानिक प्रविधि के कारण साहित्य-सृजन का नए आयाम प्राप्त हुए है जिसने हमारे ज्ञान एव अनुभव को एक सकारात्मक दिशा दी है। यह ध्यान देने की बात है कि विज्ञान की प्रविधि जहाँ नकारात्मक स्थितिया का जन्म दे रही है वही यह प्रविधि हमारे ज्ञान का गति एव अर्थ दे रही है और ये ज्ञान-अनुभव साहित्य की रचनात्मकता का नए आयाम दे रहे है।

इसी सदर्भ म मै विज्ञान बोध और उसकी प्रविधि का लेकर लिखे एक 'प्रयागात्मक' उपन्यास की चर्चा करना चाहूगा जो एक भौतिकीविद् तथा कथाकार के द्वारा लिखा गया है।

आधुनिक विज्ञान म रचे बसे जातीय सस्कृति और इतिहास के प्रति सवदनशील तथा साहित्यिक-कलात्मक सृजनात्मकता का अपने तरीके से आत्मसात किए हुए डॉ० धनराज चौधरी का तीसरा नया प्रयागात्मक उपन्यास 'तथापि' प्रयाग क साथ साथ यथार्थ फन्तासी तथा व्यग्य का एक अद्‌भुत 'घाल' है यही नहीं वैचारिकता के भिन्न आयाम पूरी 'सरचना' म इस तरह अन्तर्व्याप्त है कि आप इन सभी तत्वा का 'आनद' एव सवेदनात्मक

आस्वादन उसी समय कर सकत है जब आप उपन्यास को क़िस्तो मे पढ क्योंकि इसकी वस्तु-योजना उस तरह की 'क्रमिकता' को लिए हुए नही है जो पारम्परिक औपन्यासिक सरचना म हम प्राप्त होती है।

उपन्यास की सरचना म कथ्य और रूप का सापेक्ष सबध हाला है फिर भी कथ्य 'रूप' म ढल कर आता है। 'तथापि' उपन्यास म कथ्य का केन्द्र उच्च शिक्षा से सम्बन्धित है, जा फन्तासी व्यग्य तथा प्रतीकात्मकता के कारण एक ऐसी सरचना को जन्म देता है, जिसमे वनस्पति ससार जीव ससार और मानव का सापेक्ष द्वन्द्वात्मक सबध प्राप्त होता है और इसी के साथ वनस्पति ससार के पेड पौधे आदि प्रतीकात्मक मानवीकरण क द्वारा विश्वविद्यालय और कॉलेज की विसगतिया, वहाँ की आपाधापी, शोध की गिरती अवस्था, किशोर मन की उडान, तितलीनुमा फैशन की नुमायश, पुस्तकालय और सगोष्ठियो की दशा, छात्र चुनाव की त्रासद स्थिति, निर्देशक और शोध छात्र का सबध तथा कर्मचारियो का आपसी द्वन्द्व तथा तनाव- ये सभी प्रसग और घटनाए मूलत वनस्पति और प्राणी ससार के द्वारा साकेतिक रूप से व्यक्त की गई है। इस उपन्यास की सरचना म प्रोफेसर और सिह-शावक को एक प्रेक्षक के रूप मे प्रस्तुत किया गया है, जो उपर्युक्त स्थितियो और घटनाओ के दृष्टा है, तो दूसरी ओर उनके आपसी 'सवाद' वैचारिकता और सवेदना की भावभूमि को स्पर्श करते हुए एक 'आत्मीय' ससार की सृष्टि करते है। उदाहरण के तौर पर शावक को माँ की याद आई,उस समय का यह सवेदनात्मक चित्र ले"उन्ह (प्रोफेसर) याद आया कि शावक की आखो से आसू टपक रहे है। उन्होने दुलराया -"क्यों बच्चे?" तब शावक कहता है-"नहीं। माँ की याद आ गई"----जब माँ मरी थी तब पिताजी उसे टाग से खीच कर एक ताल म " उसकी हिचकिया बध गई और फिर शावक ने कहा तभी से उसके पिता उदास गुमसुम रहने लगे। यह कहत कहते उसका गीला मुह प्रोफेसर की गोद म लुढक गया। इसी समय लेखक प्रोफेसर को द्रवित होते दिखाता है और उसे भी पत्नी की याद आती है और वह मच्छरदानी से बाहर निकले अपने पुत्री के हाथ को चूमता है क्योंकि उसकी भी मा नहीं है।(पृ० ७५)

यह पूरा चित्र एक आत्मीय सवदनात्मक चित्र है। इस प्रकार के वैचारिक सवेदनात्मक प्रसग उपन्यास म बिखरे हुए है जा उपन्यास की सरचना को 'फ्लैसेस' मे प्रस्तुत करते हुए, क्रमहीनता के बावजूद एक

आतरिक 'क्रम' को प्रकट करते है जा अत्यत परोक्ष एव सूक्ष्म है। इस उपन्यास की सरचना मे एक अन्य तत्त्व जो वडी कुशलता से व्याप्त है, वह है वैज्ञानिक विचारो तथा रूपाकार का सृजनात्मक प्रयोग। मेरा यह मानना है कि यह उपन्यास उसी समय 'अर्थवत्ता' प्राप्त करेगा जब पाठक के पास विज्ञान की वैचारिक पृष्ठभूमि हो क्योंकि लेखक ने किशोर छात्रा और ट्यूटर शिक्षक (पूल ऑफिसर) का जो प्रसंग शुरू म तथा अत म दिया है वह दो स्तरो पर चलता है एक गणित के सप्रत्यया प्रश्नो का हल तथा दूसरे किशोर मन की भावुकता, आकर्षण और उडान। ये दोनो स्तर एक अद्भुत द्वन्द्वात्मक स्थिति म चलत है जिसम हास्य भी है व्यग्य भी है, गणित यांत्रिकी की गुथियाँ भी है, भौतिकी की स्थितियाँ भी है और इन सबके बावजूद आकर्षण और विकर्षण का एक एसा द्वन्द्व है जो किशोर मन के मनोविज्ञान को, उसकी जटिलता को उसकी तरग को अत्यत सूक्ष्मता से सकेतित करते है तथा इन सबके दौरान गणित यांत्रिकी और भौतिकी के नियम और सिद्धान्त अपनी रचनात्मकता के साथ यदा कदा आते है। छात्रा रामानुजम बनना चाहती है, पर स्थितियाँ उस स्वप्न को साकार नहीं होने देती है - यह सारा प्रसग किशोर मन की उस त्रासदी को व्यक्त करता है जो आज का एक सत्य है। गणित के प्रति इस प्रसग मे अनेक महत्वपूर्ण कथन है-विचार है जो सारे प्रसग का "वैचारिक गतिशीलता" से जोड देते है। गणित की भारतीय परम्परा को छात्रा महसूस करती है कि यहाँ रामानुजम, आर्यभट्ट, शकुतला जैसे दिग्गज हुए धरती अब भी उर्वर है, और भी दे सकती है बशर्ते मौसम साफ हो। (पृ०६) यहां पर 'मौसम' शब्द अत्यत व्यजनात्मक है जो "साथक परिप्रेक्ष्य" की माग करता है जो आज कहाँ है? इसी प्रसग म गणित और साहित्य के सवाद पर ये पंक्तिया-"गणित से साहित्य का मेल हो जाए तो अक और वर्ण की हिसाब-किताब की छिछली भाषा छोड गहरे हो जाएँ।' (पृ० १८) गणित का यह 'गहरापन' साहित्य के सस्पर्श की माग करता है जो हम धनराज चौधरी की कृतियो मे प्राप्त होता है। *छात्रा ट्यूटर को कनखियो से देखती है, उसका मन चचल* होता है। वह चाहती है कि व क्रम से गणित कहते ही रहे, पर वह प्रश्न करती है"चित्र समाकरण, सूत्र वर्ण और अको से बनी पंक्तिया मात्र ही क्या होता है गणित। किसी रोचक विषय सी गणित की भाषा भी लचीली होती तो और अच्छा होता।' (पृ० ११) अंत म छात्रा के प्रति अव्यक्त आकर्षण और फिर उसको ऊपरी स्थूल नजर से देखना और इसी के साथ

यह कथन-रूखे बाल, चुन्नी कीडो ने छेदी है। नाखून सादे- केवल स्थूल कामकाजी नजर। गणितज्ञ और देख ही क्या सकता है? ऊपरी रचना ही, सूक्ष्म नहीं। गणितज्ञ कैसे पैठे?" (पृ॰१०७) यदि गहराई मे देखा जाए तो धनराज चौधरी मनोभावो, अभिवृत्तियो तथा सवेदनाओ को उभारने के साथ उन्हे गणित, विज्ञान तथा अन्य ज्ञान-क्षेत्रो से इस प्रकार जोडते है कि पूरी सरचना यथार्थ और फन्तासी के द्वन्द्व को 'अर्थ' देती है। यांत्रिकी की गतिकी और बल, अनिश्चितता का रूप, स्वभाव या प्रकृति का वर्चस्व आदि अनेक सप्रत्ययो को लेखक ने अपनी सर्जना और सोच के द्वारा यथार्थ के दश को गहराने का प्रयत्न किया है।

उपन्यास की सरचना मे सिह-शावक तथा प्रोफेसर प्रेक्षक के रूप मे जो परिदृश्य देखते है वह है विश्वविद्यालय तथा सस्थानो की विसगतियो, कार्यकलापो तथा कर्मचारियो के सबध की वयग्यात्मक स्थिति जो वनस्पति ससार के द्वारा एक पूरी व्यवस्था पर व्यग्य होने के साथ-साथ परोक्षत भारतीय सामाजिक-शैक्षणिक व्यवस्था पर भी व्यग्य है। दुरमुख, मेहदी, इगा आदि हैज श्रेणी की वनस्पतिया चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी है रोहिडा 'वृहद्‌शिक्षालय' के कुलपति, गन्ना कुलसचिव, भिन्न बेले सहायक उपकुलसचिव विद्यार्थी है चटख फुलवारी, चम्पा, चमेली, मोगरा, रात की रानी है शोधछात्र, कनेर, गुलाब हरसिगार आदि प्रवक्ता है। इस पूरे समुदाय का पालन करते है प्रोफेसर जो लोक उपकार के कामो मे व्यस्त रहते है और शोध अध्ययन अध्यापन के हिज्जे तक उन्हे मुश्किल से याद रहते है। उन सबके चारो ओर होती है ऊची-ऊची दीवारे जिससे भीतरी कहलाता है वृहद्‌शिक्षालय परिसर। इस परिसर मे शोध अध्ययन के अलावा सभी दद-फद चलते है। (पृ॰४२-४३) इस परिसर की विडम्बना यह है (जो प्रोफेसर शावक से कहता है) कि इसे शिक्षक कम प्रशासक अधिक चलाते है (पृ॰७५)। आगे चलकर प्रोफेसर शावक को ज्ञानियो के शिविर म ले जाता है जहा फर्राश मेहदी अपनी दुल्हन सुगधी से जो सवाद करता है वह इन शिविरो पर करारा व्यग्य है। पत्नी ने कागज के टुकड़ो को बुहार जिज्ञासा प्रकट की "रूखा-सूखा ऐसा कैसा समारोह"। पाच साल स 'शिक्षा' की सफाई कर रहे पति न चेहरे पर गभीरता डाल चुप रहने का इशारा कर समझाया- "यह ज्ञानिया का शिविर है नसेड़ियो का नही।" फिर लमोढ़े वक्ता का व्यग्यात्मक भाषण जो शिक्षा की दुनिया को नए तरीके से सजाने

जा रहे है। (पृ० ९४) यह सारा प्रसग वनस्पति ससार के द्वारा व्यग्यात्मक तरीके से रखा गया है जहा सोच और व्यग्य एक साथ घुल मिल गए है।

उपन्यास की सरचना का आरभ और अत शेर से होता है जो विश्वविद्यालय का प्रोफेसर है। आरभ म छात्रा का नाटकीय सवाद जो 'कुछ न होने' की पीड़ा से भरी है वह मरना चाहती है, शेर उससे इस 'कुछ नहीं' के बारे म पूछता है, तब छात्रा कहती है कि वह रामानुजम बनना चाहती है पर व्यवस्था के कारण ऐसा नही हो पाता जिसका सकेत मैने ऊपर किया है।

अत म शेर का रूप अत्यन्त व्यग्यात्मक एव विडम्बनापूर्ण है जब एक परिवार शेर देखने चिड़ियाघर आता है तब उनम म एक बच्चा 'शेर' के बारे म पूछता है, तो वर्दीधारी कहता है रात को आया था रात भर के लिए। पुरुष स्त्री कुछ न समझ सके उन्होने पूछा "कहा से" जवाब मिला-"उनिवर्सीटी से"। इस पर पति पत्नी हसते रहे-कैसे पागल भर रखे है विश्वविद्यालयो म जो कटघर म बैठ शोध करते है। (पृ०१३०) यहा पर शोध व ज्ञान का कटघरे से बाहर लाने की लालसा है, और यही स्थिति क्या राजनीति धर्म और अर्थनीति की नहीं है? यह प्रसग अत्यत व्यजनात्मक रूप म इस भयावह 'तथ्य' को समक्ष रखता है। पूरी औपन्यासिक सरचना इस 'आरभ' और 'अत' के मध्य गतिशील है, जिसम रोमास प्रेम भी है, यथार्थ का वानस्पतिक रूपकत्व भी है, जीव और मानव का अर्न्तसबध और सवाद भी है तथा गणित, भौतिकी तथा ज्ञान-क्षेत्रो के आशयो एव रूपाकारो का जीवन और समाज के सदर्भ म रचनात्मक प्रयोग है, जो अपने म 'नया' है क्योकि वैज्ञानिक विषयो पर कथाए तो लिखी गई पर धनराज चौधरी ने इस उपन्यास के द्वारा वैज्ञानिक रूपको-बिम्बो-आशयो को जीवन के यथार्थ से जोड़कर एक नए प्रकार के वैज्ञानिक सोच एव प्रभाव को औपन्यासिक सरचना मे रूपातरित करने का जो प्रयत्न किया है, वह अपने म अनूठा और सर्जनात्मक है। यह सही है कि इसकी अपनी सीमा है क्योकि इसका सही आस्वाद व लोग ही कर सकते है जो प्रबुद्ध हों, विज्ञान के प्रति सचेत हो लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि इस 'सीमा' के होने से उसका साहित्यिक महत्व कम आका जाए। यह उपन्यास मनोभौतिकी क्षेत्र म एक नया अन्वेषण है और इस दृष्टि से इसके 'महत्व' को साहित्य म निर्धारित करना आवश्यक है।

अत मे साहित्य और विज्ञान के 'सवाद' का तीसरा क्षेत्र "विज्ञान कथाए" है जहॉ पर कल्पना और फन्तासी की आधारभूमि विज्ञान द्वारा प्राप्त तथ्यो और निष्कर्षो पर आधारित होती है। ये कथाए विज्ञान के किसी भी क्षेत्र से (यथा सृष्टि विज्ञान सापेक्षवाद, भूगर्भविज्ञान, भौतिकी आदि) ली जा सकती है और इनके द्वारा या तो भविष्य-कल्पनाएँ की जाती है अथवा वैज्ञानिक विषयो-अनुसधानो एव मानव के सघर्ष तथा सवाद को वाणी दी जाती है। असल मे इन विज्ञान-कथाओ की एक सशक्त परम्परा पाश्चात्य देशो मे रही है क्योंकि वहॉ के वैज्ञानिको रचनाकारो तथा विचारको ने प्राप्त तथ्यो और निष्कर्षों के आधार पर इन कथाओ की (फिक्शन) सृष्टि की है जिनमे कमोबेश रूप से रचनात्मकता के दर्शन होते है तथा पात्रो तथा घटनाओ के सघर्ष की यदा यदा तीव्रता प्राप्त होती है। इस दृष्टि से एच० जी० वेल्स फिलिप जोस फार्मर ब्लाडामीर ओब्रूचेव, [Obruchew] एसीमाव तथा गैमाउ आदि की विज्ञान-कथाए नए अभियान क्षेत्रो तथा फन्तासियो के लोक मे ले जाती है। एच०जी० वेल्स एसीमोव की विज्ञान-कथाए सृष्टि एव अतरिक्ष विज्ञान मे सबधित है तथा गैमाउ की कथाएँ सापेक्षवाद मे। ब्लाडामीर ओब्रूचेव की कथाए अधिकार भूगर्भविज्ञान एव पुरातत्व मे सबधित है। जब हम हिदी साहित्य तथा अन्य भारतीय भाषाओ के साहित्य की ओर दृष्टिपात करते है तो ऐसी विज्ञान-कथाए अपेक्षाकृत काफी कम है फिर भी ऐसा नही है कि इनकी परम्परा नही प्राप्त होती है। यह अवश्य है कि इनकी कथा सयोजना उतनी गठित एव रचनात्मक नहीं है जितनी कि उपर्युक्त विज्ञान-कथाकारो की। इस दृष्टि से डॉ० नार्लिकर ने कुछ विज्ञान-कथाएँ अवश्य लिखी जो स्वय एक वैज्ञानिक है, और इनमे तथ्य, फन्तासी और सृजनात्मकता का अभीष्ट सयोजन प्राप्त होता है। मुझे इसी सदर्भ मे शकर के उपन्यास"आदमी और कीड़े" की याद आ रही है जिसमे एक वैज्ञानिक एव कीट-ससार के अत सघर्ष को बखूबी चित्रित किया गया है। इसे मैने काफी वर्ष पूर्व 'धर्मयुग' मे पढा था। मेरा यहा पर मात्र यह सकेत करना है कि यहॉ के साहित्य मे इन विज्ञान-कथाओ का स्वरूप जरूर प्राप्त होता है, और इसी क्रम मे हिदी मे लिखी कुछ विज्ञान-कथाओ का सकेत अवश्य करना चाहूगा जिनका महत्व 'सृजन' की दृष्टि से किसी न किसी रूप मे माना जा सकता है। मेरे सामने श्री हरीश गोयल की विज्ञान-कथा "कालजयी यात्रा" तथा डॉ० भगवत शरण चतुर्वेदी की पुस्तक"हिमशैल" है। ये दोना उपन्यास अतरिक्ष विज्ञान

एव सृष्टि विज्ञान से संबंधित है। ये दोनो विज्ञान-कथाएं अभियानात्मक एव फन्तासी का सृजन करती है, लेकिन इनके पीछे विज्ञान द्वारा प्राप्त तथ्यों और निष्कर्षों का न्यूनाधिक संयोजन है जो भविष्य-कल्पना की आधारभूमि प्रस्तुत करता है।

श्री हरीश गोयल ने "कालजयी यात्रा" में सौर मंडल से पर 'विश्वकर्मा' ग्रह की यात्रा को एक अभियान के रूप में चित्रित किया है जिसके पात्र है वैज्ञानिक गण जैसे स्मरगपाणि निशीथ, अनामिका आदि। अधिकतर कथा की गति यात्रा के संवादो के द्वारा आगे बढती है और ये संवाद पूरे उपन्यास में इसलिए संयोजित किए गए है कि इनमें अंतरिक्ष, ग्रहपिंडो, चार-आयामी विश्व उडनतश्तरी, उल्कापिंड, कायान्तरण का रूप, अंतरिक्षवासी ग्रहो का संकेत तथा मानव-पक्षी आदि के बारे में पाठक ज्ञान लाभ कर सके। यह अवश्य है कि यह उपन्यास लेखक के उस अथक श्रम एवं अध्ययन को पेश करता है जो उसने अंतरिक्ष विज्ञान के अध्ययन के दौरान प्राप्त किए। इन तथ्यों और संभावनाओं का जो संयोजन इस कृति में हुआ है, वह हमारे अदर कुतूहल, जिज्ञासा और एक ऐसे संभावित ग्रह में ले जाता है जिसका नाम 'विश्वकर्मा' है जो प्लीस्टोसीन-युग (हिमयुग) से गुजर रहा है। इस ग्रह का वर्णन, वहाँ की वनस्पति, जीव, पक्षी, ग्लेशियर आदि का संकेत, लेखक के अध्ययन व ज्ञान को तो प्रकट करता है, लेकिन संवादो का संयोजन ऐसा लगता है कि इन तथ्यों की जानकारी के लिए ही किया गया है। यही कारण है कि पूरा उपन्यास जानकारियों का भंडार(जो अपने में महत्वपूर्ण है) बन कर रह गया है जिसमें औपन्यासिकता पूरी तरह से विकसित नहीं हो सकी है। एक उदाहरण है-इसी ग्रह का जो एक पक्षी का लेकर है-

"अरे, यह विचित्र पक्षी, चमगादड़ नहीं, बल्कि टेराडक्टाइल है" मैंने पक्षी के चौड़े पंख, टपरिंग मस्तिष्क तथा लम्बी दंतयुक्त चोंच की ओर देखते हुए कहा।

अनामिका ने आश्चर्य व्यक्त किया--'टेराडक्टाइल'।

"हां टेराडक्टाइल। ये विचित्र पक्षी हमें क्रिटेसस कल्प (मध्यजीवी महाकल्प का अंतिम युग) की याद दिला रहे है जबकि इनका आकार में प्रभुत्व था। इस समय तक ये उड़न-दानव अपने अधिकतम आकार में पहुँच चुके थे।" दृश्य प्लेट पर टेराडक्टाइल के चौमीटे पंख तथा नुकीली दंतयुक्त चोंच स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी। (कालजयी यात्रा, पृ० ११०)

इस प्रकार के ज्ञानवर्धक सवाद इस उपन्यास को एक विशिष्टता तो देते है, पर अच्छा यह होता कि ये ज्ञान कुछ 'डाइल्यूट' होकर आता। इस उपन्यास की एक विशेषता यह है कि लेखक ने परिशिष्ट मे पारिभाषिक शब्दो की सूची दी है, और उनके अर्थों को भी स्पष्ट किया है। इससे लगता है कि लेखक भूगर्भविज्ञान, पुरातत्व, भौतिकी तथा जीव विज्ञान आदि के स्रोतो से इस उपन्यास की सरचना करता है। हरीश गोयल का यह प्रयत्न इसलिए भी स्वागतयोग्य है कि उन्होने हिदी मे विज्ञान-कथा की परम्परा को "अर्थ" दिया है।

दूसरी कथा-कृति "हिमर्शल" डॉ॰ भगवतशरण चतुर्वेदी की विज्ञान कथा है जो अभियानात्मक होने के साथ ही साहित्यिक दृष्टि से अधिक रचनात्मक एव सवेदनात्मक है, जबकि इसमे अतरिक्ष विज्ञान एव सम्पूर्ण सूर्य-ग्रहण (खग्रास) का प्रथम बार ऐसा चित्र है जो पृथ्वी को पूर्णरूपेण अंधकारमय कर देता है, और इसका सूर्य किसी अन्य ग्रह निवासियो के द्वारा चुरा लिया जाता है। अजरेकर, तदुल तथा पृथ्वी ग्रह के वैज्ञानिको(जो इग्लैड, फ्रास, रूस, भारत के है आदि) ने हिमर्शल के सम्राट की सहायता से पृथ्वी के सूर्य को पुन प्राप्त कर लिया। अत मे, हिमर्शल का ग्रहभेदनुमा यान पृथ्वी के राष्ट्रो की यात्रा कर रहा था, और हर देश के लाखों देशवासी इस विचित्र वैज्ञानिक उपकरण को बडे विस्मय से रोक रहे थे। (पृ॰ १३९) उपन्यास का अत इन पंक्तियो से होता है-"हिमर्शल के इस रोमाचक प्रसग के पश्चात् आज ऐसा लग रहा है जैसे आकाश गगा पृथ्वी की गगा मे नहाकर पवित्र हो गयी हो, और पृथ्वी की प्रतिष्ठा, सितारो से आगे तक पहुँच, निस्सीम हो गयी हो।" यही नही, तदुल (भारतीय वैज्ञानिक जो हिमर्शल के सम्राट से कहता है) का यह कथन- जो आकाश गगा मे पृथ्वी के भावी वर्चस्व को सकेतित करता है, वहीं पृथ्वी को एक परिवार के रूप मे चित्रित कर एक यूरोपिया की कल्पना करता है जो मात्र सभावना है, उसके निकट तो पहुचा जा सकता है, पर शायद पूर्णरूपेण प्राप्त नही किया जा सकता है। इसका यह अर्थ नही कि मानव प्रयत्न करना ही छोड दे। तदुल कहता है----"जिस पृथ्वी को मैने देखा था- बोली,कपडो, धर्म और हदो मे बटी-बिखरी हुई-अब वह नहीं रही। आज सारी पृथ्वी एक परिवार है। आपके सामने सम्पूर्ण पृथ्वी के प्रतिनिधि एकजुट हुए खडे है। अब ऐसा कौन सा ग्रह है इस आकाशगगा मे जो पृथ्वी की ओर आँख

उठाकर भी देख सके।" (पृ० १३५)

यहाँ पर स्वय लेखक का यह मतव्य ध्यान देने याग्य है कि कवि, शब्दा म, सपना का एसा उपयाग करता है जिसे विज्ञान सदिया बाद प्रमाणित करता है। कई वर्षों पूर्व एच० जी० वेल्स ने अपने उपन्यास "द फर्स्ट मैन ऑन द मून" के द्वारा चद्रमा पर मानव के पदार्पण की जो कल्पना की थी उसे विज्ञान ने सत्य कर दिखाया। यह उपन्यास 'हिमर्शल' भी इसी प्रकार की एक कल्पना है मपना है जा किसी रूप म कुछ न कुछ रूप भविष्य म ग्रहण कर सके?

'हिमर्शल' के सवाद, पात्र-सृष्टि तथा परिवेश के चित्र कही कही मार्मिक है, और इस कृति म वैज्ञानिक सोच एव तकनीक का प्रयाग प्रच्छन्न रूप से किया गया है, वह हम आतंकित नहीं करता है जो 'कालजयी यात्रा' म गुजरने पर हाता है। फिर भी, मुझ लगता है कि डॉ० भगवतशरण उपाध्याय और अधिक अच्छी विज्ञान-कथाए दे सकते है, यदि व वैज्ञानिक साहित्य तथा माच को और अधिक आत्मसात् करे।

अत मे, मै विज्ञान और साहित्य के इन सवाद-आयामो के सदर्भ मे यह अवश्य कहना चाहूँगा कि जो लोग यह धारणा बनाए हुए है कि विज्ञान और साहित्य एक दूसर के विलोम है, उनमे किसी भी प्रकार का सवाद या अत सम्बन्ध नहीं है, यह आलेख इस पूर्वाग्रह पर प्रश्नचिह्न अवश्य लगाता है। दूसरी वात जो इस विवेचन से निगमित होती है कि सृजन प्रक्रिया मे विज्ञान-वाध का अर्थ, सिद्धातो तथा सप्रत्ययो के आधार पर जो सोच-सवेदना का एक 'जैविक' रूप गठित होता है, वह ही भिन्न रुपाकारो तथा प्रतीकों के द्वारा एक नए तरह की 'सौदर्य भावना को, जो विवेक पर आश्रित होते हुए भी मात्र सवेगात्मक नही है, वरन् उसमे वैचारिक उद्वेलन उत्पन्न करने की क्षमता है। इस उद्वेलन से हमारे सोच-सवेदन का बहुआयामी ससार ही नहीं उजागर होता है, वरन् हमारे "आस्वादन" का 'क्षितिज' भी विस्तृत होता है। तीसरी वात जो इस विवेचन-विश्लेषण से स्पष्ट होती है कि विज्ञान मात्र तकनीक एव यांत्रिकता का रूप नही है, वरन् वह चितन और वैचारिकता को भी 'गति' और 'अर्थ' देता है। यह मानव, प्रकृति तथा ब्रह्माड के 'रहस्यों' तथा नव-अर्थ-छवियो को सकेतित करता है जो पराक्षत रचनाकार की सृजन- प्रक्रिया का 'गहराता' और 'व्यापक' बनाता है। ☐

नाविक विद्रोह और कविता की संवेदना

आज बहुत ही कम लोग ऐसे हागे जो फरवरी १९४६ की उस महत्वपूर्ण घटना के बारे मे जानते हा जो 'नाविक विद्रोह' के नाम से जानी जाती है। यह विद्रोह बम्बई और कराची क नौसैनिक कन्द्रा तथा दिल्ली, इलाहाबाद और कलकत्ता के नौसैनिक मुख्यालया म एक व्यवस्थित रूप मे भडका और जिसने ब्रिटिश राज्य की नींव का हिला कर रख दिया। इस निणायक प्रहार ने ब्रिटिश राज्य का विवश किया कि वह अपनी कूटनीति से सत्ता-स्थानान्तरण के नाम पर, अपनी शर्तों पर काग्रस का मत्ता सौपे जिसे हम "स्वतत्रता' कहते है। इस सार घटनाक्रम म नाविक विद्रोह की क्या भूमिका रही, यह देखना जरूरी है?

भारत म जन-विद्रोह और क्रांतिकारी चेतना का इतिहास १८५७ से १९४६ क लम्बे काल खण्ड म कभी वक्र ता कभी मथर गति स चापकर वधुआ, गदर पार्टी, भगत सिह-आजाद आदि स होता हुआ १९४६ क नाविक विद्रोह म अपनी कारगर भूमिका निभाता है जिस नजरअदाज करना ऐतिहासिक दृष्टि मे न्यायसगत नहीं है क्योंकि हमे जिस भी रूप म स्वतत्रता(?) प्राप्त हुई है उसम मात्र काग्रेस का ही यागदान नही है, वरन् क्रान्तिकारी आदोलन का भी अपना विशिष्ट योगदान है। इस योगदान को ब्रिटिश सत्ता ने दबान का पूरा प्रयत्न किया और काग्स तथा लीग ने इसे कमोवश नकारन का ही प्रयत्न किया।

जन-आंदोलन और क्रान्ति चेतना के विकास मे रूसी क्रांति(१९१७), दो महायुद्धों के बीच उपजी उपनिवेशवादी शोषण की त्रासद स्थितिया तथा आजाद हिन्द फौज की वह भूमिका जिसने साही सेनाओं मे विद्रोह तथा जनचेतना को तीव्र रूप में आदोलित किया-इन सब शक्तियों ने मिल कर नाविक विद्रोह और उसके साथ नालबद्ध जन-आन्दोलन को वह परिदृश्य प्रदान किया जिसे निर्धारित करना इतिहास के अल्पजात "घटना-क्रम" को उसका सही स्थान देना है।

ऐतिहासिक दृष्टि से १९१७ की रूसी क्रांति ने उपनिवेशवादी देशों के जन जागरण को एक दिशा दी। प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धो के पहले और बाद में जो इन देशों में साम्राज्यवादी शोषण की प्रक्रिया रही, उसका लाभाश पश्चिम यूरोप के कुछ मजदूरों को प्राप्त होता रहा जिसके चलते इन मजदूरों ने कोई निर्णायक युद्ध नहीं किया, न विश्व युद्ध से पूर्व और न बाद में। यही कारण है कि सोवियत रूस के सच्चे मित्र वे देश है जो उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्षरत रहे और जैसे-जैसे एशिया, अफ्रीका तथा अमरीका में यह मुक्ति-संघर्ष तेज हुआ, वैसे-वैसे इन देशों की जनता और सोवियत जनता की मैत्री साम्राज्यवाद के विरूद्ध तेज होती गयी। डॉ० रामविलास शर्मा ने इसी परिप्रेक्ष्य में भारत के स्वाधीनता संग्राम और रूसी क्रांति के अंत सम्बन्ध को देखा है। (मार्क्स और पिछड़े हुए समाज, रामविलास शर्मा, पृ० ४५९)। यही नहीं लेनिन ने रूसी क्रांति के कार्यक्रम से पराधीन देशों के स्वतंत्रता आदोलनों को अभिन्न रुप से जोड़ दिया था। मार्क्स ने १८५३ मे यह मत रखा था कि भारतीय फौजे ऐसी साधन हो सकती है जिसे अंग्रेजों ने प्रशिक्षित तो अवश्य किया अपने लाभ एवं रक्षा के लिए, लेकिन ये फौजे ही उनके विरूद्ध अपनी मुक्ति के लिए एकजुट हो सकती है। मार्क्स की यह भविष्यवाणी १८५७ मे चरितार्थ हुई और फिर १९४६ के नाविक विद्रोह मे। १९१२ मे जर्मन लेखक गैआर्ग वेगनर ने अपनी पुस्तक "आज का भारत" में यह मत रखा था कि भारतीय फौज में अग्रेज ७५ हजार है और देशी सैनिकों की संख्या लगभग दो लाख। आगे चल कर रूस की नयी सरकार ने भारत के प्रति अपनी नीति को 'ब्लू बुक'(Bluc Book)नाम से प्रकाशित किया जिसमें इसका वर्णन था कि रूस की क्रांति किस तरह उपनिवेशवाद का अंत कर सकती हैं। इस पुस्तक पर प्रतिबंध भी लगाया गया। फिर भी इस पुस्तक के कुछ अश १९२० मे सिंध से प्रकाशित"भारतवासी" पत्र में प्रकाशित किये गये। इस क्रांतिकारी चेतना

को एक व्यापक सदर्भ दिया "आजाद हिन्द फौज" ने जिसका परोक्ष प्रभाव हम नाविक विद्रोह मे पाते है। दूसरे महायुद्ध के बाद अंग्रेजी राज को देशी सेना पर पूरा भरोसा नही रह गया था। महायुद्ध के समय अनेक देशी सैनिक आजाद हिन्द फौज मे शामिल हो गये थे। जापान मे अनेक देशी सैनिक बदी हुए थे जिन्हे अग्रेजो ने जापान की दया पर छोड दिया था, वे भी आजाद हिन्द फौज मे आ गये जिन्होने देश की स्वतत्रता के लिए सघर्ष किया। अग्रेज सरकार इन्हे "बागी" करार कर उन पर मुकदमा चलाकर मृत्युदड देना चाहती थी, पर जनता व फौज के रूख से भयभीत होकर वह ऐसा न कर सकी। डॉ॰ रामविलास शर्मा, रजनी पाम दत्त तथा सुमति सरकार (और कुछ हद तक नेहरू भी) समान रूप से यह मानते है कि आजाद हिन्द फौज के कारण सेना और जनता के बीच जो पहले फासला था, वह अब बहुत कम रह गया था और नाविक विद्रोह मे बिल्कुल खत्म हो गया क्योंकि इस विद्रोह मे जनता तथा फौज ने कधे से कधा मिला कर सघर्ष किया। आजाद हिन्द फौज के इस प्रभाव से चिन्तित हो मध्य प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर ट्वाइनेम तथा भारतीय सेना के सेनाध्यक्ष सर सी॰ ऑकिनलेक ने वायसराय वावेल को अपने पत्रो द्वारा यह सूचित किया कि अब यह जानना बहुत कठिन है कि देशी फौजो के मन मे क्या है और साथ ही जनता मे आजाद हिन्द फौज के प्रति लगातार हमदर्दी बढ रही है। इस समय हमारी अपनी नैतिकता का मानदण्ड काम नही करेगा। (भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद से, डॉ, रामविलास शर्मा, पृ॰ ४१४)।

इस विस्फोटक स्थिति के प्रकाश मे नाविक विद्रोह की चिनगारी, जिसने ज्वाला का रूप धारण किया, इस ज्वाला म यदि उच्चस्तरीय राष्ट्रीय नेता अपने सहयोग का घृत डालते, तो हमारी स्वतत्रता का परिदृश्य ही कुछ और होता? सफल विद्रोह क्रांति कही जाती है और असफल विद्रोह को सत्ताधारी "बगावत" या "म्यूटनी" के नाम से पुकारते है, पर सत्य तो यह है कि विद्रोह चाहे सफल हो या असफल, जब वह वृहद् रूप ग्रहण कर लेता है, वह दोनो स्थितियो मे "क्रांति" ही है। यह सही है कि शाही सेना मे असतोष की आग सत्ता अधिकारियो आदि के समान वेतनमान, समान भोजन तथा अन्य मागो को लेकर थी जो जनवरी १९४६ के अत मे, जहाज "तलवार" के सैनिकों मे एक सगठित विद्रोह के रूप मे भडकी। "तलवार" के एक ट्रेनी श्री आर॰ के॰ सिंह को ब्रिटिश ऑफिसर न इसलिए बदी बनाया कि उसने अफसर के दुर्व्यवहार का विरोध किया। इसके बाद

रेटिंग बी०सी० दत्त ने"जयहिन्द" तथा "भारत छोडो" का उस समय लिखा जब ऑफिसर कमांडिंग सेना की सलामी ले रहा था। दूसरे दिन हडताल का आह्वान हुआ तथा कैसिल फोर्ड बारको तथा बम्बई बंदरगाह मे लंगर डाले २२ जहाजो मे विद्रोह की आग भडकी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि विद्रोही बेडे पर कांग्रेस का तिरंगा मुस्लिम लीग का हरा तथा साम्यवादियो का लाल झंडा एक साथ मस्तूलो पर चढा दिये गए। बम्बई के नागरिको छात्रो तथा फौज ने मिल कर एक साथ विद्रोह को एक व्यवस्थित रूप दिया। इसका प्रत्यक्षदर्शी वर्णन उस समय के हडताल संघर्ष-समिति के क्रियाशील सदस्य श्री विश्वनाथ बोस ने अपनी पुस्तक "आर आई एन म्यूटनी"(१९८७) मे किया है। श्री बोस ने नौसैनिको द्वारा पेश की गयी मांगों का जिक्र किया है और यह स्पष्ट किया है कि इन मांगो मे राजनैतिक मांग थी जिनके कारण उच्चस्तरीय नेताओ ने हस्तक्षेप किया। दूसरी ओर शासको ने सैनिको को यह धमकी दी कि यदि वे आत्मसमर्पण नहीं करते है तो ब्रिटिश जहाजी बेडे से आर०आई०एन० को नष्ट कर दिया जायेगा। इसका प्रभाव यह हुआ कि वायु, थल सेना के सैनिक भी विद्रोह मे आ शामिल हुए तथा मजदूर, किसान, छात्र तथा बम्बई की जनता ने एक साथ मिल कर धमकी का सामना किया और शासको की धमकी को नाकाम कर दिया। इससे शासको को धक्का लगा और उन्होंने यह प्रचारित करना शुरू कर दिया कि यह कार्य"साम्यवादी आंदोलन" का है जिससे कांग्रेस तथा अन्य वर्गों के नेताओ का सहयोग कमोबेश रूप से रोका जा सके। श्री बोस ने यह भी लिखा है कि बम्बई के विराट विद्रोह का प्रभाव कलकत्ता, कराची, मद्रास और जबलपुर मे भी पडा। यहाँ पर रामविलास शर्मा का मत है कि बम्बई से अधिक खतरनाक विद्रोह कराची का था, यदि बम्बई के समान जनता फौज का साथ देती तो पाकिस्तान की सारी योजना खटाई में पड जाती।(भारत मे अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद,रामविलास शर्मा,पृष्ठ ४०४)।

इस पूरे घटनाक्रम मे एक बात यह स्पष्ट होती है कि जनता और अनेक जन आंदोलन(जैसे उत्तर प्रदेश का किसान और छात्र आंदोलन, मैसूर का सोना खान मजदूर आंदोलन, ग्वालियर का कपडा मिल आंदोलन तथा तेलंगना विद्रोह आदि) का जहाँ तक प्रश्न है, वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष के लिए तैयार थे, लेकिन राष्ट्रीय नेताओ के रवैये तथा असहयोग ने, जो मूलत समझौते से सत्ता प्राप्त करना चाहते थे, ऐसा नहीं होने दिया। यदि इन्हे एक सही और सामूहिक नेतृत्व प्राप्त हो

जाता तो शायद देश का विभाजन सभव नही होता। केन्द्रीय हडताल समिति ने राष्ट्रीय नेताओ से मदद एव सहयोग मागा गम्भीर स्थिति को देख कर अरूणा आसफ अली ने हस्तक्षेप किया और नेहरु जो इस समय माउटबैटन के साथ सिगापुर म थे सूचना मिलने पर उन्होने नौसैनिको का बधाई देते हुए कहा कि उनका यह कदम बिल्कुल सही वक्त पर उठाया गया है लेकिन भारत लौटने पर नेहरू ने झॉसी की एक सभा मे कहा कि जवानो ने कुछ ऐसे भी काम किए है जिनसे हम सहमत नही है। सरदार पटेल ने विद्रोह को वापस लेने की सलाह दी और यह विश्वास दिलाया कि सत्ता पर वे प्रभाव डाल कर उन पर किसी प्रकार का अत्याचार नही होने देगे। काग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद ने तो यहाँ तक कहा कि "इस समय विदेशी शासको से लडने का समय नही है क्योंकि वे देखभाल करने वाली सरकार के रूप मे फिलहाल काम कर रहे है।" गाधी जी ने अप्रैल १९४६ के ' हरिजन" अक मे विद्रोह की इस तरह भर्त्सना की-"यदि वे ऊपर से नीचे तक एकताबद्ध होते तो बात मेरी समझ मे आती। तब इसका अर्थ यह होता कि भारत को निकृष्ट अव्यवस्थित लोगो के हाथ सौप दिया जाएँ। मै इस काम का अजाम देखने के लिए १२५ वर्ष जीना नही चाहता।' "विद्रोह वापस लेने पर पटेल ने जो आश्वासन दिया था वह भी नही माना गया जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण सिग्नलमैन दयाल सिह राजपुरोहित का है जिसने एक कर्मठ योद्धा के रूप मे विद्रोह का सचालन किया था। श्री भूपेन्द्र हूजा ने इसका हवाला अपने लेख "आर०आई०एन० अपराइजिग" मे दिया है जिसका सार यह है कि आदोलन के अन्तिम दौर मे सरकार को यह भय था कि कही दूसरा नौसैनिक विद्रोह न भडक उठे, अत सरकार ने इन विद्रोहियो के पूरे उपकेन्द्र को कोचीन के निकट एक "द्वीप" (नाम है वेनदुर्थी) मे स्थानातरित कर दिया (२८ जुलाई से २५ मई १९४६ तक) जहाँ इन्हे कडी सुरक्षा मे रखा गया और अनेक तरह की शारीरिक, मानसिक यातनाये दी गयी। इन सैनिको पर बर्बर अत्याचार किये गये, बलपूर्वक इन सैनिको से जगल साफ कराए गए तथा भवन निर्माण मे मजदूरो की तरह काम करवाया गया। यह यातना उस समय समाप्त हुई जब ब्रिटिश प्रधानमत्री ने सत्ता स्थानातरण के द्वारा सत्ता सौपने की घोषणा की। इसी समय लेबर पार्टी के अध्यक्ष प्रोफेसर लास्की ने २३ मई १९४६ मे अपनी एक भेटवार्ता मे व्यग्यात्मक रूप मे यह कहा कि "आधुनिक इतिहास मे किसी साम्राज्यवादी शक्ति ने किसी देश की जनता को इतने बडे पैमाने पर अहिसक तरीके से

पदत्याग करते हुए नहीं देखा गया। मै आशा करता हूँ कि भारतीय राष्ट्रीय नेता 'सोने की तस्तरी' म दिए गए इम उपहार की प्रशसा करेंगे।' हमारे नेतागण इस "सोने की तस्तरी" को पाकर धन्य हो गए क्योंकि वे "सोने" को बटोरने मे लग गए।

यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाए, तो इस सत्ता स्थानांतरण मे जन-विद्रोहो, फौजी विद्रोहों तथा क्रांतिकारियों की शहादत का अपना विशिष्ट स्थान है, वह मात्र "अहिंसा" की देन नहीं है। एक खतरा जो उच्चस्तरीय नेताओ को यह भी था कि यदि वे इस जनक्रांति का समर्थन ओर सहयोग देते, तो शायद आगे चल कर देश का नेतृत्व उनके हाथो से निकल जाता जिसे वे किसी भी हालत म नहीं चाहते थे। मुझे याद आता है भगतसिंह का वह कथन, जो मात्र अनुमान ही था, पर वह सत्य हो गया। शहादत से पूर्व युवा क्रांतिकारियों के प्रति उनका सबोधन था-" क्रांति का अर्थ यह नही है कि सत्ता-स्थानातरण श्वेत शासको के स्थान पर भारतीय सत्ताधारियो के हाथ मे चली जाए। इससे किसानो, मजदूरो तथा जनता को क्या फर्क पड़ेगा यदि लार्ड अरविन के स्थान पर वायसराय सर तेगबहादुर सप्रू हो जाए या लार्ड रीडिंग के स्थान पर सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास भारत के वायसराय हो जाए। एक जागृत जन समूह के अभाव में यह भय सदा बना रहेगा कि अग्रेज पिट्ठू भारतीय शासक उसी प्रकार मनमानेपन और अत्याचार के शिकार न हो जाए जैसे कि श्वेत सत्ताधारी रहे है। (श्री शिव वर्मा की पुस्तक "सलेक्टेड रायटिंग्स ऑफ भगत सिंह", भूमिका से)।

१९४६ का नाविक विद्रोह और जन-आन्दोलनो की एक शानदार परम्परा, चाहे वह असफल ही क्यो न रही हो, उनका ऐतिहासिक महत्व सदैव रहेगा क्योंकि इन विद्रोहों और आंदोलनो ने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को गति एवं दिशा दी है। इस क्रांतिकारी और विद्रोही चेतना को हमारे रचनाकारो ने किसी न किसी रूप मे रचनात्मक अर्थवत्ता दी है जिसकी परम्परा प्रसाद, निराला, सुभद्राकुमारी चौहान से लेकर शमशेर, साहिर, जोश मलिहाबादी तथा मखदूम आदि मे किसी न किसी रूप मे देखी जा सकती है। यहाँ पर मै शमशेर और साहिर की रचनाओ को इसलिए लेना चाहता हूँ कि इन कवियों ने(और भी है) 'नाविक विद्रोह' को अपनी सवेदना का हिस्सा बनाकर, इसके महत्व को एक रचनात्मक 'अर्थवत्ता' प्रदान की है। शमशेर की दो कविताए"नाविक विद्रोहियों पर बमबारी बम्बई 1946" तथा "जहाजियो की क्रांति" ऐसी दो कविताएँ है जो मुक्तछद में

शमशेरीय-बिम्ब-शैली की सफल सरचना वाली कविताए है। मैने उपर्युक्त घटना-क्रम और उसकी वैचारिक प्रतिक्रिया पर जो विवेचन किया है उनकी अनुगूजे इन रचनाओ मे सकेतित होती है। 'जहाजियो की क्रांति' एक लम्बी कविता है जिसमे विद्रोह के स्वरूप तथा महत्व पर तथा राष्ट्रीय नेताओ की भूमिका पर विक्षोभ प्रकट किया गया है। विद्रोह के स्वरूप पर ये पंक्तियाँ ले -

"धुले बादल
काले
मतवाले दल के दल
निकले कहीं तिरगे, कही हरे, लाल
लिए झडे
' आजाद हिद फौजी छूटे"
नही तो
दुश्मनो पर/मिलकर/
हमारे वार/भरपूर हो
"जय हिद। जय हिद"

अब नेताओ की भूमिका पर यें पंक्तियाँ ले-

आए। नेतागण आए।।
शात किया सागर को
शात के छीटे बरसाए---
जनता ने दात भीज लिए
और चुप हो रही।
"जय हो, नेताओ की?"

इन "तूफानी लहरो" की सरचना क्या थी, इसे कवि एक 'जन विद्रोह' के रूप मे लेता है-

"इन तूफानी लहरो मे
चमक उठी है
मजूरो की आखे
खुल उठं है
बम्बई की जनता के दाँत,
बिफर उठे है-एक साथ
सभी वर्ग और जातियो के क्रोध भरे

सीने।"

दूसरी कविता "नाविक विद्रोहियो पर बमबारी" का यह दृश्य ले और साथ ही कवि की प्रतिक्रिया-

लगी हो आग जगल मे कही जैसे,
हमारे दिल सुलगते है।
हम नगे बदन रहते है घोसलो मे
बादलो सा,
शोर तूफानो मे उठता है-
डिवीजन के डिवीजन मार्च करते है
नए बमवार हमको ढूढत फिरते हैं
सरकारे पलटती जहाँ हम दर्द से करवट बदलते है
हमारे अपने नेता भूल जाते है उन्हे खुद
और तब,
इन्कलाब आता है उसके दौर को गुम करने।"

साहिर की नज्म मे विद्रोह एव विक्षोभ की एक तीव्र रवानगी है जो उनके शब्द-चयन मे एकाकार हो गयी है। पूरी नजम पाठक के दिलो-दिमाग को झकझोर कर रख देती है। मुल्क और कोम के रहबरों(नेतागण) को संबोधित यह नज्म, फौज और जनता के एक साथ मिलकर वहे लहू की बात इस तरह करती है-

ए रहबरे! मुल्के-कौम जरा, आंखें तो उठा, नजरे तो मिला,
कुछ हम भी सुने, हमको भी बता, ये किसका लहूँ है,कोन मरा।
कोन सा जज्बा था जिससे फर्सूदा-निजामे-जीस्त हिला।
झुलसे हुए वीरा गुलशन मे इक आस-उम्मीद का फूल खिला
जनता का लहू फौजो से मिला, फौजो का लहूँ जनता से मिला
ये किसका जुनूँ है, कोन मरा
ए रहबरे मुल्को-कौम बता
ये किसका लहू है, कौन मरा?
क्या ये विद्रोही बागी, गुडे या "अव्यवस्थित निष्कृष्ट लोग" थे-
क्या कौमो-वतन की जय गाकर मरते हुए राही गुडे थे?
जो देश का परचम लेकर उठे, वे शोख-सिपाही गुंडे थे?
जो बोर-गुलामी सह न सके, वे मुजरिमे-साही गुंडे थे?

समझौते की राजनीति तथा जनता की विद्रोही चेतना से आख मूँदना। ये दोनो तथ्य उच्चस्तरीय नेताओ के मनोविज्ञान को यूँ स्पष्ट करता है

ममझौते की उम्मीद सही सरकार के वायदे ठीक सही,
हा मस्के सितम अफसाना सही, हा प्यार के वायदे ठीक सही
अपना के कलेजे मत छेदो, अंगियार के वायदे ठीक सही
जमहूर मे यूँ दामन न छुड़ा
ए रहबरे मुतको कौम बता
यह किसका लहूँ है कौन मरा।

इन कविताओ के अतिरिक्त निराला रचनावली (खड २) को देखते समय मुझे निराला की एक कविता"खून की होली जो खेली" प्राप्त हुई जो 1946 के छात्र-विद्रोह(उत्तर-प्रदेश) पर केंद्रित है। यह कविता छायावादी-प्रभाव से अछूती नही है, फिर भी यह कविता"किरन उतरी है प्रात की' के द्वारा एक 'सार्थक' भविष्य की कल्पना को लिए हुए है

निकले क्या कोपल लाल
फाग की आग लगी है
फागुन की टेढी तान
खून की होलीजो खेली"
'खुल गयी गीतो की रात
किरण उतरी है प्रात
हाय कुसुम वरदान
खून की होली जो खेली'

अत मे एक कृति का और जिक्र करना चाहूँगा जो नितात भिन्न प्रकृति का रचना है। मेरा सकेत है श्री केदारनाथ अग्रवाल की जन शैली 'अल्हा' मे लिखी अवधी म उनकी लम्बी कविता "बम्बई का रक्त स्नान" जो ३१ पृष्ठ की रचना है जिसमे नाविक विद्रोह म पी०सी० दत्त, कुसुम रनदिवे सैनिको, मजदूरो, विद्यार्थियो तथा कामगरो की शहादत और उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका का बखूबी सकेतित किया गया है। पूरी कविता मे 'आल्हा' की रवानगी है जो जन-मानस क अधिक अनुकूल है। नाविको के आत्मसमर्पण (पटेल के प्रस्ताव पर) का चित्र तथा जनता के विक्षोभ को कवि इस प्रकार प्रस्तुत करता है

बाढ़ी नदिया मन के उमंग। थिर ह्वैगा ज्वानन का जोर।
मौन जहँसि औ गूगा ह्वैगा बाज दमामा जो घनघारे॥
करिया नाग बढ़े जो फुँफके नोकरसाही जिन्हें डेरान।
मार कुण्डली चुप ह्वै सोएं तजि कै अपने मन का मान
जनता सुनि के बहुत दुखित भै वोका तनिको नीक न लाग।
लाख किहेंसि, हिरदय समुझायेसि बुती न बुतए मन कौ आग॥
कविता के अंत में कवि की यह श्रद्धाञ्जनि ले-
माथा नायब, आसु बहायेब, सुमिरेब सबका वीर बखान।
नौसेनिक के औ जनता के करनी का कीन्हेव अभिमान॥
अंत मे साथिव! एक कंठ सौ चालीस कोटि करो गुजार।
जै नौसैनिक! जै जनता जै! जै ने भारत भूमि हमार॥

यहॉं पर मैने कुछ कविताओं के द्वारा यह दिखाने का पयत्न किया है कि जन-आंदोलनों की एक विशिष्ट भूमिका भारतीय मुक्ति संग्राम में रही है, और इस जन-चेतना ने साहित्य सृजन को आदोलित ही नहीं किया, वरन् साहित्य मे उस 'भावभूमि' को 'अर्थ' और 'स्वर' प्रदान किया जिसे उच्चस्तरीय नेतागण परोक्षतः एवं प्रत्यक्षतः नकारते ही रहे। उपर्युक्त रचनाएँ, (मैने मात्र कुछ का ही सकेत किया है, और भी हो सकती हैं) यदि गहराई से देखा जाएं, तो जन आकांक्षा को वाणी देती है और उस दौर के जन आक्रोश एवं विक्षोभ को संकेतित करती है जो सृजन और जन-आंदोलनों के सापेक्ष रिश्ते को एक 'ऐतिहासिक दस्तावेज' के रूप मे प्रस्तुत करती है।

❑

भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य का एक नया संदर्भ: कालबोध

भवानी भाई हिन्दी काव्यधारा के एक ऐसे कवि है जो "सहज" सवेदना के कवि है, और यह "सहजता" उन्हे समकालीन कविता से प्रत्यक्षत जोडती है। इस "सहजता" के नीचे विचार-सवेदन के भिन्न "अडरकरन्ट्स" प्रवाहित रहते है जो "सहजता" को अर्थगर्भित व्यजना प्रदान करते है। भवानी भाई की सहजता उस अर्थ मे "सहज" नही है जो सपाट हो और रेखीय हो, वरन् उनकी सहजता बकिम एव सर्पिल आशयो से युक्त होकर आती है। यही कारण है कि भवानी भाई की रचना-प्रक्रिया मे गहन से गहन विचार भी "सहज" भगिमा के साथ अभिव्यक्ति प्राप्त करते है। यहाँ पर सामान्य रूप से विचार, सवेदन मे घुल-मिलकर अपनी अर्थवत्ता प्राप्त करता है और यही कारण है कि यहाँ वैचारिक द्वन्द्व तो है, लेकिन आरोपित नही, वह कवि की सृजन-प्रक्रिया मे एकाकार हो गया है। विचार-सवेदन का यह रूप हमे सामान्यत भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओ मे मिलता है। इस वैचारिकता और सवेदना के भिन्न आयाम है जो यथार्थ और सत्य के बाह्य और आतरिक पक्षों को "अर्थ" देते है। इस वैचारिकता मे अक्सर अनेक सप्रत्ययो का योगदान रहता है जो ज्ञान के भिन्न क्षेत्रो से सबधित है। विकास, द्वन्द्वात्मकता, ईश्वर, आत्मा, परमाणु पदार्थ, ऊर्जा, दिक्, काल और गति आदि ऐसे सप्रत्यय है जो सृजनात्मक साहित्य म

अपनी 'रचनात्मक" अथवत्ता प्राप्त करत है। आज का रचनात्मकता में इस तत्व का ध्यान म रखना इसलिए जरूरी है कि विचार सवदन क भिन्न आयाम और उनक सप्रत्यय और प्रतीक किसी न किसी रूप म साहित्य और कला म अपना रचनात्मक अथवत्ता का दज कर रह है। इस दृष्टि म मैं भजाना भाइ की कविता क एक नितात नए पक्ष को आर सकत करना चाहूँगा जिसकी आर शायद अभी तक समाक्षका का ध्यान नहीं गया है। यह आयाम है काल बाध और उसकी सर्जनात्मकता का जा मर विचार म कवि क विचार सवदन का एक विशिष्ट आयाम है।

अब प्रश्न है कि काल एक सप्रत्यय है और इसका सृजन क्षत्र म जब प्रयाग हाता है ता उसकी अभिव्यक्ति कैसा हाता है? यहाँ पर यह प्रश्न सभी सप्रत्यया और प्रतीका क लिए सत्य है। रचनाकार काल का अपन अनुभव बिम्बा या रूपाकारा क द्वारा ग्रहण करता है और उस अभिव्यक्ति दता है। यहाँ पर एक तथ्य की आर सकत आवश्यक है कि यह अभिव्यक्ति उसी समय साथक मानी जाएगी जब रचनाकार का काल(या काइ प्रत्यय)सप्रत्यय का तात्विक एव भौतिक ज्ञान हागा वरना इस ज्ञान क उसका काल प्रत्यक्षीकरण (परसप्शन) अधूरा रहगा। यह एक सत्य है कि दिक् काल मानवीय अनुभव की पूव अपक्षा है और हमारा काइ भी अनुभव दिक् काल का सापक्षता म हाता है। यदि हम विचारा क इतिहास पर दृष्टि डाल ता सप्रत्यया या अवधारणाआ का विकास द्वन्द्वात्मक रहा है और दिक् काल क सदभ म भी यह सत्य है। धम दशन म काल प्रत्यय का रूप मूलत चक्राकार और सर्पिल रहा है लकिन विज्ञान-दर्शन क विकास के साथ काल का स्वरूप रखीय माना गया लकिन मानवीय अनुभव एव सनना म काल क य दोनों रूप आवश्यकतानुसार ग्रहण किए गए है। दूसरा महत्वपूण परिवतन यह आया कि न्यूटन तथा प्राचीन दशना म काल का निरपक्ष एव दिव्य रूप दिया गया लकिन आइन्स्टीन न काल को सापेक्ष माना और साथ ही आनद्धहीन(अनबाउडड)। दिक्-काल सापक्ष हात हुए भी सीमित एव आनद्धहीन है, यह प्रस्थापना अपन म एक तात्विक रूप है। काल का प्रत्यक्षीकरण भूत वतमान और भविष्य की सापक्षता म उनकी निरन्तरता में हाता है और रचनाकार काल का इसी सापक्षता म रचनात्मक सदर्भ दता है। यह पूरा का पूरा प्रत्यक्षीकरण अनुभव बिम्बा क द्वारा होता है। अत काल का प्रत्यक्ष एक आत्मगत विषय है क्योंकि दृष्टा की सापक्षता

मे दिक्-काल का अस्तित्व है। आइस्टीन का यह मत सृजन के क्षेत्र मे भी लागू होता है जिसका परोक्ष सकेत भवानी प्रसाद मिश्र ने यूँ किया है

सब कुछ
जी रहा है मेरे माध्यम स
इसलिए यह भी लगता है
जितना मै जी रहा हूँ
उतना ही सब कुछ
जी रहा है।(व्यक्तिगत, पृ० १४२)

किसी भी वस्तु या घटना का अस्तित्व और बोध व्यक्ति या दृष्टा सापेक्ष है और काल-बोध भी दृष्टा सापेक्ष है। यह दृष्टा या व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह काल को कितने सदर्भों और क्षेत्रो तक ले जाता है, वह अपने को परिवेश मे कहा तक बिछा पाता है। इस अर्थ मे रचनाकार का काल बोध अनेक आयामो की ओर गतिशील होता है। भवानी भाई मे काल बोध का स्वरूप व आयाम कितने और किस प्रकार के है, उनकी छानबीन इस आलेख का विषय है।

भवानी भाई की सृजनात्मकता मे काल प्रत्यय का स्वरूप मूलरूप से चक्रीय और शाश्वत है। जो भारतीय दर्शन से प्रभावित है। काल का यह शाश्वत रुप निरपेक्ष नहीं है, वरन् यह मानव-जीवन सापेक्ष है, वह एक प्रकार से "पलो" का सघात है जो गतिशील है, यह गतिशीलता काल का एक ऐसा गुण है जो काल की धारणा को गत्यात्मक एव द्वन्द्वात्मक बनाता है-

शाश्वत काल,
बाधकर किनारे पलो के
कल-कल बह जाता है।(अधेरी कविताए,पृ० ३२)

कवि के मनस् मे काल का यह रूप "काल-पुरुष" की भावना को जन्म देता है जो उसके अस्तित्व का एक मानवीकृत रूपाकार है। भारतीय दर्शन मे हिरण्यगर्भ(विज्ञान का कास्मिक एग) से काल पुरुष और इतिहास पुरुष का आविर्भाव हुआ। काल पुरुष एक ब्रह्माडीय धारणा है जबकि इतिहास-पुरुष, मानवीय काल की धारणा है। काल की व्यापक धारणा से इतिहास(मानव) इसका एक अग है, अत इतिहास एक घटना है जो काल मे घटित हो रही है। कवि ने काल को एक समूचा पुरुष माना है जो खाता,

पाता, सुनना आदि ही नहीं है वरन् अपने सृजन पटु हाथों से वह सृष्टि चक्र को गतिशील रखता है। यहाँ पर काल का सृजनात्मक रूप है और परोक्ष रूप से उसका चक्राकार रूप भी यहां सन्निहित है इसी के साथ काल का सर्वग्रासी रूप भी है जो भयावह है। काल के ये दो रूप-सृजन और संहार(विलय) समानान्तर रूप से चलते है। इस पूरी स्थिति का एक सर्जनात्मक रूप हमें कवि की सुन्दर कविता"काल पुरुष" में प्राप्त होती है,कुछ अंश यहाँ दे रहा हूं-

सब कुछ समा जाता है, काल के गाल में
मिश्र की सभ्यता, रोम का साम्राज्य
★ ★ ★
गाल ही नहीं है मगर काल के
समूचा पुरुष है वह
हाथ-पाव-नाक-कान वाला
खाता पीता ही नहीं है केवल काल पुरुष
★ ★ ★
रचता है
मारता-संवारता है सृजन-पटु-हाथों से
ममता भरे मन से
कल्पनाओं को चीजों में
चीजों को बदलता है,वृक्षों में
वृक्षों को बीजों में।" (अधूरी कविताएँ, पृ० २१)

अन्तिम दो पंक्तियाँ परोक्षत: वृक्ष और बीज के आवर्ती सम्बन्ध के द्वारा काल के चक्रीय रूप का संकेतित कर रही हैं। यह पूरी कविता काल-पुरुष के गत्यात्मक रूप को बखूबी प्रकट करती है। एक अन्य स्थिति उसमें यह उत्पन्न होती है कि कवि के लिए काल एक "ख्याल" है, एक चमत्कार है। इस काल के सभी "मारे" हुए है। (तूस की आग,पृ० ३०)

कवि की रचनाओं में काल, घटना और विचार का एक ऐसा संबंध प्राप्त होता है जो मूलत: मानवीय काल से सम्बंधित है। यहाँ पर कवि का चिंतन स्पष्ट है जो सांकेतिक है। वैज्ञानिक-दर्शन की दृष्टि में दिक्-काल सापेक्ष हे, काल की प्रतीति हम घटनाओं के द्वारा करते है और दिक् की

प्रतीति अतराल अवकाश के द्वारा। कवि के रचना ससार मे घटनाओ का द्वन्द्वपरक रूप है और ये घटनाएँ जीवन-जगत सामेक्ष है कवि इन घटनाओ के पास जाना चाहता है न कि घटनाएं स्वय उसके पास आए-"घटनाएँ/ हम तक आएँ/ इसमे अच्छा है/ कि हम/घटनाओ तक जाएँ।" (परिवर्तन जिए पृ० १७)

यह घटनाओ तक जाना परोक्ष रूप से घटनाओ से द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न करता है, और यही कारण है कि कवि **"घटना के मारे मैं मरा नही/ और तो और डरा नहीं"** (बुनी हुई रस्सी,पृ० ३१) कहकर घटनाओ या काल से सघर्ष की स्थिति को व्यक्त करता है। इसे हम सघर्ष-काल की सज्ञा दे सकते है। चाणक्य ने अर्थशास्त्र मे कहा है कि पौरुष, देश और काल मे से पौरूष सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि पौरूष के द्वारा ही हम देश काल स लोहा लेते है(काल यात्रा वासुदेव पोद्दार, पृ० ४०) आधुनिक कविता का इतिहास यह बताता है कि अनेक कवियो ने काल के सघर्षगत रूप को चित्रित किया है यथा निराला, मुक्तिबोध विश्वभरनाथ उपाध्याय विजेन्द्र तथा विश्वनाथ प्रसाद तिवारी आदि। भवानी भाई मे यह सघर्ष का रूप कही परोक्ष रूप से तो कही अधिक स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। यह अवश्य है कि इसमे वह पैनापन एव आक्रामक मुद्रा नही है जो हमे यदा-कदा उपर्युक्त कवियो मे प्राप्त होती है। कुछ भी हो भवानी भाई की कविता घटनाओ से सघर्ष करती है और यही कारण है कि कवि घटनाओ मे जीता है और ये ही घटनाएँ सोच-विचार को जन्म देती है।

"मै घटनाओ मे जीता हूँ
या विचारो मे
घटनाएँ आती है
और छोड जाती है सोच-विचार(तूस की आग,पृ० ६५)

कवि यही पर नही रुकता है, वरन् वह घटनाओ और विचारो को समाज की सापेक्षता मे स्वीकार करता है-"मगर समाज मे सामजस्य साधना चाहिए/ घटनाओ और विचारो मे"(तूस की आग,पृ० ६९)। यहाँ पर यह सकेत जरूरी है कि विचार का जन्म शून्य से नही होता, वरन् उसके लिए भौतिक आधार चाहिए। यदि मार्क्स या गाधी के विचार दर्शन का विश्लेषण करे(या कोई भी विचार) तो यह तथ्य उजागर होता है कि उनके पीछे कोई न कोई सामाजिक वैचारिक घटनाओ का आधार रहा है। अत विचार-प्रक्रिया

और घटना का द्वन्द्वात्मक एव सापेक्ष रिश्ता है।

काल एक जैविक प्रत्यय है, वह एक तरह म पल निमिष प्रहर, लव का एक सघात है, ये सब काल के अविच्छिन्न अग है जो मर्मष्टि रूप से 'अखिल काल" का बिम्ब उपस्थित करते है। यही नहीं हर क्षण या पल इसका सस्पर्श पाकर अनत(मनवतर) का द्योतक हो जाता है। काल और क्षण का यह सम्बन्ध भी सापेक्ष है, तभी तो कवि का यह कथन कितना "अर्थपूर्ण" है -

> गा सकते है
> मन ही मन समय के
> उस समूचेपन को जिसम
> लव और निमिष
> पल और प्रहर नहीं रहते
> सब हो जाते अखिल काल
> हर क्षण हो जाता है
> मनवतर जिसके स्पर्श से। (नीली रेखा तक, पृ० १४६)

क्षण, घटना, व्यक्ति तथा अणु-कोश- ये सभी घटक किसी न किसी रूप म मानवीय अनुभव के अग है। हम चाहे तो इन्हे 'पिड" की सज्ञा द सकते है। क्षण का महत्व वैज्ञानिक चितन म भी है। विज्ञान-दार्शनिक ईडिंगटन का कहना है कि एक मिनट का सौवा हिस्सा "अनत"(इन्फिनटी) की व्यजना कर सकता है। सृजन के क्षेत्र म पल या क्षण का महत्व इसी बात से है कि वह कहाँ तक अपने को व्यापक अर्थ सदर्भो का वाहक बना सका है, तभी माखन लाल चतुर्वेदी की यह पंक्ति ' क्षण म उलझे महान विशाल' अपनी अर्थवत्ता को प्रकट कर सकती है। भवानी भाई म क्षण का मनवतर हो जाना इसी तथ्य को सकेतित करता है। दूसर शब्दो म माइक्रोकाज्म(सूक्ष्म पल)की सार्थकता इसमे है कि वह मैक्रोकाज्म(वृहद्-अखिल) की सरचना मे कहाँ तक अर्थपूर्ण योगदान दे सका है? परोक्षत यही तत्र का पिड और ब्रह्माड का सापक्ष रूप है जो कविता और सृजन म अनक रूपाकारो के द्वारा व्यक्त होता है।

भवानी भाई की कविता म काल प्रत्यय का उपर्युक्त रूप इस बात को स्पष्ट करता है कि कवि के मनस् मे काल की धारणा समष्टि या अखिल

की धारणा है जो अनुभव बिम्बो के द्वारा व्यक्त हाती है। इस अनुभव मे काल खण्डो(भूत, वर्तमान और भविष्य) की निरन्तरता का अपना महत्त्व है। अब देखना यह है कि भवानी भाई म 'त्रिकाल' का क्या रूप है, और वे भूत वर्तमान और भविष्य की सभावना को किस रूप मे ले रहे है? भवानी भाई की काल धारणा मे त्रिकाल का सापेक्ष निरतरता का रूप है। यहॉ पर एक स्थिति वह भी है कि कवि भूत या अतीत को(स्मृति) वर्तमान की सापेक्षता मे अर्थ देता है और उसे कभी कभी भविष्योन्मुख बनाता है। भूतादि काल के गुण भी है और शक्तियॉ भी। भर्तृहरि इन्हे काल की शक्तियो के रुप मे देखता है और उन्हे ब्रह्म मे सम्बन्धित करता है। भर्तृहरि की यह धारणा भाषिक सरचना की दृष्टि से विवचित की गई है। यदि इसे अन्य दृष्टि से देखा जाए तो मुझे "ब्रह्म" की धारणा यहाँ पर आवश्यक नही लगती क्योंकि बगैर ब्रह्म के भी हम एक तार्किक सगति प्राप्त करते है। त्रिकाल, काल की खण्डीय स्थिति को प्रकट करता है अनुभव और रचना के धरातल पर यही सत्य है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी। दूसरे शब्दो मे त्रिकाल की धारणा एक प्रक्रिया के रूप मे भी ग्रहण की जा सकती है। इस सदर्भ मे कवि की एक छोटी सी कविता है"अनागत क स्वागत मे" जो विगत, वर्तमान और अनागत को अनुभव वृत्त म लाती है और उनके सापेक्ष एव गत्यात्मक रूप को प्रकट करती है

> तोडो,
> रूढ विगत के घेरे
> किन्तु बुझाओ मत
> उसकी विभा
> इसे तो लाओ
> ओट देकर अपने प्राणो की
> वर्तमान तक
> अनागत के स्वागत मे
> दीप्त नहीं होगे
> इसके बिना दीपक। (परिवर्तन जिए,पृ० १९)

यहॉं पर अतीत की विभा को वर्तमान की सापेक्षता मे अर्थवत्ता दी गई है और अनागत जा सभावना है उसक "दीपक" इस "विभा" के द्वारा ही दीप्त हाग। यहाँ पर वर्तमान प्रतीति विन्दु की महत्ता का भी परोक्षत

स्वीकार किया गया है क्योंकि वर्तमान ही वह बिन्दु है जहाँ पर खडे होकर व्यक्ति अतीत को प्रासंगिक बनाता है और भविष्य को अनुमानित करता है स्वप्न देखता है जो यथार्थ की भूमि पर कल्पित होता है। स्टेश ने अपनी पुस्तक"टाइम एण्ड इटर्निटी" मे(काल और अनतता) इस वर्तमान बिन्दु को 'अनत-अव' की संज्ञा दी है जो सदैव वर्तमान रहता है, वह क्रमश पश्चगामी(भूत) और अग्रगामी(सभावना) स्थिति मे सदैव गतिशील रहता है। अनागत की यह इच्छा एक मानवीय आकांक्षा है क्योंकि उसकी चेतना पश्चगामी(भूत) भी है और अग्रगामी भी(भविष्य)। यह चेतना की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया है। कवि मे भी यही स्थिति है। स्वतन्त्रता से पूर्व उसने अपना सब कुछ दाव पर लगा दिया था, एक ऐसे भविष्य के लिए जिसके आगे वर्तमान भी सिर झुकाए। यहाँ पर कवि की पीडा स्पष्ट है, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उसका मोह भग होता है जो पूरे देश का मोह भग है

> नही आया
> वह अनागत
> जिसे हमने
> अपना सब कुछ दाव पर
> लगाकर बुलाया था
> छोडकर अहकार
> हर बडे से बडे वर्तमान
> इसके आगे सिर झुकाएँ (नीली रेखा तक,पृ० ३९)

कवि समय के साथ इसलिए आया था कि इसे थोड़ा आगे ले जाए या "जाना चाहता था इसे लाघकर" (बुनी हुई रस्सी) - ये दोनो स्थितिया समय को अतिक्रात कर इस तथ्य को प्रकट करती है कि मानव समय के आगे पूरी तरह से नतशिर नहीं होना चाहता है। एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि कवि विगत को एक बल या शक्ति के रूप मे स्वीकार करता है जो इसे कई बार थामता-संभालता है जैसे "एक गिरते हुए/संग्राम साथी को/ जान पर खेल जाने वाला दूसरा संग्राम साथी।"(व्यक्तिगत, पृ० १४८) यहाँ तक कि वह मृत्यु को प्राप्त होते शरीर को भी इसीलिए अर्थ देता है कि 'ऐसी मृत्यु/ वरदान भी हो सकती है/ आगे आने वाले के लिए" (परिवर्तन जिए, पृ० १५)

काल का यह मानवीय एव ६ माजिक रूप राजनैतिक आर्थिक काल को भी अपने अदर समेटे हुए है क्योंकि कवि वर्तमान की स्थितियो एव विडम्बनाओ से पूरी तरह परिचित है खासतौर स वह आर्थिक विडम्बना से उद्भूत जीवन दृष्टि के प्रति इतना सवदनशील है कि उसे लगता है

जिन्दगी शोरगुल हा गई है
दो पैसे से
दस पैसे तक
पहुचने का पुल हो गई है (परिवर्तन जिए पृ० ५१)

इसी सदर्भ मे कवि के सामने यह नितात स्पष्ट है कि राष्ट्रीय पैमाने काल की सापेक्षता के अनुसार बदलते रहते है **"कितने दिन टिकता है/अपने अपने समय का/ राष्ट्रीय पैमाना।"** (वही पृ० ७७) यदि हम कवि की मारी काव्य यात्रा को समग्र रूप मे देखे तो हम पाते है कि कवि विचार सवेदन के मानवीय पक्ष को अथवा मानवीय काल के भिन आनुभविक सदर्भो को समेटे हुए है जिसमे वैयक्तिक सामाजिक राजनैतिक एव दार्शनिक आशयो को रचनात्मक अर्थवत्ता दी गई है।

भवानी भाई की काल धारणा मे एक तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वे काल को इतना महत्व नही देते है जितना कि अपने होने को क्योंकि उनका स्पष्ट कथन है

यदि तुम
अपने होने को
महत्वपूर्ण नही मानते
तो तुम
काल नही समझते
क्षण नही समझते। (नीली रेखा तक पृ० ९१)

यही नही कवि तो यहाँ तक कहता है कि **"समय खुद तुम हो/जितनी देर तुम हो/ उतनी देर समय है।"** (अधेरी कविताए पृ० 28) यहाँ काल से पूर्व "होना' या अस्तित्व को महत्व दिया गया है। दर्शन के क्षेत्र मे एक मान्यता यह भी है कि काल चिरतन है, नित्य है, उसका अस्तित्व दृष्टा निरपेक्ष भी है, वह तो रहेगा ही, रचना मे मानवीय एव ब्रह्माडीय काल को अर्थवत्ता दी गई है जो व्यक्ति अनुभव सापेक्ष है।

उपर्युक्त विवेचन से यह नितात स्पष्ट है कि कवि न काल प्रत्यय का भिन्न रचनात्मक सदर्भो मे अपन अनुभव बिम्बो के द्वारा अथवत्ता प्रदान की है। यहा पर काल का चक्राकार रूप है मानव अनुभव सापेक्ष है त्रिकाल की निरन्तरता है अतीत और भविष्य क प्रति एक आशा है आर्थिक राजनैतिक काल का प्रत्यक्षीकरण है तथा इसकी गत्यात्मकता और द्वन्द्वात्मकता क पति जागरूकता। इस सपूर्ण स्थिति के प्रकाश मे कवि काल का एक ऐसे हिसाबी रूप म प्रस्तुत करता है जो अपनी वही म व्यक्ति का उसी समय शामिल करगा जब वह अन्तर बाह्य की सापक्ष एकता का अजाम दे सकेगा

बडा हिसाबी है काल
वह तभी लिखेगा
अपनी वही क किसी
कोने मे तुम्हे
जब तुम
भीतर और बाहर को
कर लोग
परस्पर एक। (व्यक्तिगत, पृ० ५५४)

❑

मुक्तिबोध काव्य में इतिहास-बोध का रचनात्मक स्वरूप

इतिहास मानव-सापेक्ष काल मे घटित होने वाली एक सतत् प्रक्रिया है जो मानव जाति के उत्थान-पतन की रेखीय एव चक्रीय गति है। इस दृष्टि से इतिहास मात्र तिथिक्रम और राजाओ सामतो का इतिहास नही है, वरन् वह मानव की बाह्य एव आतरिक सास्कृतिक यात्रा है। इतिहास की धारणा म अलिखित और लिखित दोनो प्रकार के इतिहास को शामिल करना जरूरी है क्योंकि अलिखित या प्रागइतिहास(मिथक भी, पुरातत्व भी) भी आगे चलकर लिखित रूप मे इतिहास की द्वन्द्वात्मक-प्रक्रिया के अभिन्न अग बन जाते है। इसी से, महापंडित राहुल ने इतिहास के लिए पुरातत्व को जरूरी माना है, और हम आगे देखेगे कि मुक्तिबोध की इतिहास-धारणा मे पुरातत्व का अपना विशेष स्थान है।

मुक्तिबोध की इतिहास धारणा उपयुक्त तत्वो को लेकर चलती है और इस धारणा को उन्होंने रचनात्मक ऊर्जा प्रदान कर, इतिहास की पुनर्रचना की है, अथवा दूसरे शब्दा मे "प्रतिविश्व" की रचना की है। मुक्तिबोध के लिए इतिहास कोई "स्थिर"धारणा नही है, वह एक गतिवान द्वन्द्वात्मक प्रत्यय है। जीवनानुभव कहाॅ से आते है? व्यक्ति कहाॅ से प्रेरणा और परम्परा ग्रहण करता है? इसका उत्तर मुक्तिबोध के अनुसार यह है कि जीवनानुभव विकास-प्रक्रिया (इतिहास) से आते है, और इतिहास इन्ही अनुभवो और विचारा की गाथा कहता है। विचार, यथार्थ घटना से जन्म लेते है, अत विचार और घटना क सापेक्ष सम्बन्ध है -

और उस स्पर्श मे (आत्मा का)
मानवेतिहासो के घूमत भटकते हुए
अगार वप
दूर देश दशा के वृहत्-जीवनानुभव
विवक के प्रतिनिधि
किसी स्पष्ट लक्ष्य का छवि उत्कर्ष।

य जीवनानुभव "विवक' के प्रतिनिधि हैं इसका अर्थ यह हुआ कि अनुभव जब तक विवक द्वारा परिचालित नही हाते तब तक व किसी "स्पष्ट लक्ष्य" के सौदय का नहीं दख सकग। य जीवनानुभव जब विवक द्वारा अर्थ प्राप्त करते हे तो व ज्ञान क्षत्रा का सृजन करत है। असल म मुक्तिबाध की सृजन प्रक्रिया म ज्ञान सवदन का विशष स्थान हे क्योंकि ज्ञान और अनुभव हमारी सवदना को गहरात है उसे व्यापक सदर्भ प्रदान करते है। यदि गहराइ स दखा जाए ता य अनुभव कभी कभी पराक्ष या प्रत्यक्ष रूप मे "परम्परा" स भी आते है, उस परम्परा स हम क्या ल और क्या नही, इसका विवक जरूरी है जा विज्ञान-दशन का एक मुख्य प्रत्ययहै।

मुक्तिबाध की इतिहास-धारणा म दो दृष्टियो का एक समन्वित रुप प्राप्त होता है, एक इतिहास का वस्तुपरक या भौतिकवादी द्वन्द्ववादी रुप, और दूसरा इतिहास का "आत्मपरक" रूप। मुक्तिबोध जब "वाह्य के अयातरीकरण" की बात करते है तव व वाह्य क महत्व को स्वीकार करते हुए भी उसके अभ्यातरीकरण पर भी जोर देते हैं क्योंकि सृजन-प्रक्रिया का यह एक अभिन्न अग है जो परोक्ष रूप स इतिहास-बोध की रचनात्मक प्रक्रिया है। मुक्तिबोध न मार्क्स, डार्विन की वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टि (वस्तुपरक) को स्वीकार करते हुए उस आत्म-चितन-प्रक्रिया से सम्बन्धित कर एक एसा 'रसायन' प्रस्तुत किया है जो एक तरह से "मुक्तिबोधीय इतिहास-सवदन" को व्यजित करता है। यही कारण है कि मुक्तिबोध के इतिहास-बोध म "आत्मसघर्ष" का एक व्यापक अर्थवान् रूप है जो ऐतिहासिक सघर्षशील चतना को अर्थ प्रदान करता है। सच तो यह है कि मुक्तिबोध की दृष्टि इतिहास का एक "गति" के रूप म ग्रहण करती है। उनकी पूरी काव्य यात्रा यही गति हे इतिहास है जो उनक ज्ञान-सवेदन को प्रखर और अर्थवान् बनाता हे यही कारण है कि मुक्तिबोध 'क्षण' को न पकड गति को पकडते है और जो भी रचनाकार इस 'गति' को पकडने का प्रयत्न करेगा, वह घटनाओ, परम्पराओ और विचारो का 'मथन' करेगा और

इस 'मथन' स अपनी 'रचना-दृष्टि' का विकास करगा। 'अधर म' कविता इस दृष्टि स एक महत्वपूर्ण कविता है जो इतिहास क एक फैल हुए "कैनवास" का प्रस्तुत करती है जिसमें सदियां युगों की पीडा-व्यथा और विवक की छायाएँ अपन "गतिशील विम्ब" फकती है। य विम्ब इतिहास की गत्यात्मकता को साथकता प्रदान करत है

जिनम कि जल म-
सचत हाकर सैकडों सदिया ज्वलत अपन विम्ब फकती।
वदना नदियां
जिनमें डूब है युगानुयुग स
मानव क आँसू
पितरा की चिता का उद्विग्न रग भी
विवक पीडा की गहराइ बचैन
डूबा है जिसम श्रमिक का सताप।

असल में, यह इतिहास की जनवादी परम्परा है जो श्रमिक को पीड़ा का भी 'लाकट' करती है। इतिहास का यह जनवादी रूप 'जन-सस्कृति' का इतिहास है जिसक निमाण म एतिहासिक शक्तिया और अनक वैचारिक शक्तिया का यागदान रहा है जो प्रजातांत्रिक मूल्यों क द्वारा ही सभव हुआ है। आधुनिक मिथका म (जिनम इतिवृत्त का अत्यत धूमिल रूप तथा अवधारणा का सघनीकृत रूप मिलता है जो पारम्परिक मिथका म भिन्न है) "जन-सस्कृति का मिथक" एक एसी शक्ति है जिसकी ओर रचनाकार और विचारक लगातार टकरा रह है। (इस पक्ष का सम्यक विवचन मैंन अपनी पुस्तक 'मिथक दर्शन का विकास' क 'आधुनिक मिथक' नामक अध्याय म किया है। यहाँ मात्र सकत है)। मुक्तिबोध इतिहास क इसी विम्ब स टकरात है, और अपन अनुभव एव ज्ञान सवदना स व इतिहास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का ग्रहण करत है। इतिहास की 'वस्तु' पारदर्शी हाती है जिसम काल क विम्ब प्रतिच्छायित हात है। इतिहास की पुनरचना म इन्हीं काल विम्बा का एक जैविक अनुभव रहता है। मुक्तिबोध की कविताओ म एस काल विम्बा का रचनात्मक रूप प्राप्त हाता है। य विम्ब भिन्न क्षत्रा म लिए गए है, समाज, दर्शन, धर्म, पुरातत्त्व, विज्ञान और इतिहास स यथा जल, बरगद, महल, प्रस्तर, खण्ड, भूगर्भीय सदन, ब्रह्मराक्षस, पहाड़, चट्टानें, जीवाश्म, प्रकाशवर्ष, परमाणु, ऊर्जा, गणितीय समीकरण और सामुद्रिक रूपकार आदि। मरा यह मानना है कि य सभी विम्ब और रूपकार इतिहास

की विकासात्मक प्रक्रिया का किसी न किसी रूप म अर्थ' दते है। इस 'अर्थ' दने की प्रक्रिया म एतिहासिक 'वदना' को आकार-प्राप्त हाता है और कवि का आत्मसघर्ष वैयक्तिक न रहकर सामूहिक हा जाता है। कवि का रचना ससार एक बीहड़ उबड़-खाबड़ ससार है जिसम एतिहासिक दद व पीड़ा है सघर्षरत मानव की ऊजा है। इसी पीड़ा का कवि ने एतिहासिक परिप्रेक्ष्य म दखा है। 'महल' शापण शक्ति का बिम्ब या प्रतीक है और उसक विराध म जन की शक्ति है जा अपन अस्तित्व के लिए सघर्षरत है। इतिहास (बुजुआ) की यह विडम्बना रही है कि इतिहास राजतत्रा व राजाआ का ही रहा है वहाँ घुटत व पिसत आदमी की कथा कहाँ है? यह प्रश्न इतिहास की धारणा का ललकारता है और मुक्तिबाध का 'विद्राही' मन इसे पूरी शिद्दत से अर्थ देता है। निम्न पंक्तिया म "कान्ट्रास्ट' के द्वारा इस पैन रूप मे व्यक्त किया गया है

> खूबसूरत कमरा म कई बार
> हमारी आंखा क सामने
> हमार विद्राह के बावजूद
> बलात्कार किय गए
> नक्षीण कक्षो मे
>
> ★ ★ ★
>
> सिकुड़ते हुए घेरे म वे तन-मन
> दबत पिघलते हुए भाप बन गए।

हम "बागी' करार दिए गए और फिर "बद तहखानो" मे फेंक दिये गये। यह है आतक और दमन का रूप। ऐसा क्या हुआ, इसका उत्तर स्वय कवि के शब्दा म -

> क्योंकि हमे ज्ञान था,
> ज्ञान-अपराध बना।

इस पर इस 'महल' का इतिहास "रहस्य-पुरुष छायाएँ" ही लिखती है। फिर भी इस आतक एव तानाशाही म 'हम' (जन) जी रहे है, यह भी सृष्टि का क्या कम चमत्कार है।-"इतने भीम जड़ीभूत/टीलो के नीचे हम दवे हैं/फिर भी जी रह है/सृष्टि का चमत्कार।' असल म,मुक्तिबोध ने इतिहास क इस सार्वकालिक 'व्यग्य' को बड़ी सतर्कता से व्यक्त किया है। पुरातात्त्विक उत्खनन से रूपाकारा (जीवाप्म) को लेकर मुक्तिबोध ने परोक्ष

रूप स इतिहास का जा चित्र उपस्थित किया है, वह भी चट्टाना के भीतर उभरते हुए 'हमार' ही चित्र नजर आयगे ये चित्र 'आदमी' क है जा इतिहास के हाशिए पर है 'ता इन चट्टाना की/आन्तरिक परता की सतहा म/चित्र उभर आयगे/हमारे चहरे के तन बदन के शरीर क।"

इससे स्पष्ट है कि मुक्तिबाध बाह्य यथार्थ को एक आतरिक ऊजा प्रदान करत है और इस ऊर्जा का अनेक तरह क बिम्बा रूपाकारा प्रतीका से सम्बद्ध कर इतिहास की पुनर्रचना करते है। आतरिकता की यह परिणति निरपक्ष नही है, वह स्वकेंद्रित नहीं है। (जैसा कि अस्तित्ववादिया म देखी जाती है)। वह काव्य चेतना और ज्ञान चेतना दोना म अन्तर्निहित है। बाह्य के प्रति गहरी प्रतिबद्धता मुक्तिबाध की कविता को जहाँ यथार्थवादी बनाती है, उसे इतिहास व परम्परा से जाड़ती है, वहीं यह सारा "परिदृश्य" अर्थवान हो जाता है जब व्यापक आतरिकता का सस्पर्श उसे प्राप्त होता है। मेरी दृष्टि से, इतिहास की व्याख्या वस्तुपरक होते हुए भी वह व्यक्ति या 'स्व' के स्थान को 'सापेक्ष' महत्त्व देती है। इतिहास की व्याख्या 'अर्थ' प्रदान करने म है और 'यह अर्थ' उसी समय प्राप्त हो सकता है जब व्यक्ति अपने को उस ऐतिहासिक प्रक्रिया में 'लोकेट' कर सके। इतिहासकार इस कार्य को तथ्या और साक्ष्या के विवेचन द्वारा करता है और रचनाकार इस कार्य को तथ्या एव साक्ष्यों का सहारा लेकर 'सवेदना' के स्तर पर "रचनात्मक 'अर्थ" देता है। मुक्तिबोध व्यक्ति के इस "लोकेशन" के प्रति सजग है क्योंकि इतिहास की गति मे व्यक्ति की "कटी-पिटी निजत्व रेखाए" कभी भी समाप्त नहीं हा सकती है।

> लगता है मेरे इस पठार
> पर ये जो गोल, टीले या पत्थरी उभार,
> उनमे
> कटी-पिटी निजत्व रेखाए
> व्यक्तित्व रेखाए-
> जिन्दा है सच, जीवित अभी तक।

स्पष्ट है कि यहाँ इतिहास और व्यक्ति सापेक्ष है एक दूसरे को प्रभावित करते है।

मुक्तिबोध की इतिहास धारणा म परम्परा, वह भी "गतिशील परम्परा" का स्थान है। वह परम्परा को विवक सम्मत ज्ञान से ग्रहण करता है। यह

एक सत्य है वर्तमान अतीत की उपज है और भविष्य वर्तमान की कोख म जन्म लेता है। अत 'जीवित अतीत' की पहचान, इतिहास-बोध की पूर्वमान्यता है। मुक्तिबोध मे 'जीवित अतीत की पहचान है, वह परम्परा का ज्ञान-प्रक्रिया के द्वारा ग्रहण करते है, किसी रूढ़ या अधविश्वास के तहत नही। कवि का यह कथन इसका प्रमाण है-

> कि वे तो दे गए है, अद्यतन सब शास्त्र
> मेरा भी सुविकसित हो गया है मन
> मेरे हाथ मे है क्षुब्ध सदियो के, विविध भाषी, विविध दशी,
> अनेको ग्रथ-पुस्तक-पत्र, जिनम मगन होकर मै
> जगत सवेदनो से आगामिष्यत् के
> सही नक्शे बनाता हू।

अत चाहे आतरिकता या 'स्व' हो, या परम्परा हो, ऐतिहासिक प्रक्रिया मे इन दोनो का महत्व है जो एक तरह म विषयी और विषय (सब्जेक्ट-आबजेक्ट) के सम्बन्धो का अध्ययन है। यह सबध, क्रिस्टोफर कॉडवेल के अनुसार मनुष्यो की उत्पादन-प्रक्रिया तथा प्रकृति (जैव-अजैव) पर मनुष्यों के प्रभाव का अध्ययन है। यदि हम इस उत्पादन क्रिया को सृजन क्रिया से जोड़ दे, तो इतिहास उन दोनो क्रियाओं का एक समन्वित रूप है।

मुक्तिबोध के इतिहास बोध मे दो तत्त्व प्रमुख है-परिवर्तन और प्रगति। परिर्वतन के द्वारा प्रगति सभव होती है जो रेखीय भी है और चक्राकार भी। यह ऐतिहासिक प्रगति द्वन्द्वात्मक है जो वर्ग सघर्ष को जन्म देती है। मार्क्स ने जहाँ जगत को समझने का नया रास्ता दिया, वहीं उसे परिवर्तित करने की दृष्टि दी। मार्क्स का यह क्रान्तिदर्शन सर्वहारा को केद्र मे लाता है। मुक्तिबोध ने मार्क्स की द्वन्द्वात्मक धारणा को स्वीकार किया और उसे जन-सघर्ष सापेक्ष माना। असल म, मुक्तिबोध ने शोषण को सर्वहारा तक न सीमित कर, उसे 'जन' तक स्वीकार किया है। एक तरह से वह सर्वव्यापी शोषण के प्रति सजग है जो एक 'बदीगृह' है-"शोषण के बदीगृह जनमे/ जीवन की तीव्र धार होगी।" ये जन क्या है, कुहरे के जनतत्री वानर जो भीड़ है, डार्क मासेज' है-

> सत्ता के शिखरो पर स्वर्णिम
> हमला न कर बैठे खतरनाक

कुहरे के तनतत्री,बानर ये, नर ये।
समुदाय, भीड़
डार्क मासेज ये, मॉब ये।"

मुक्तिबोध मे यह मॉब या जिन्हे हम 'डार्क मासेज' कहते है वे वर्ग चेतना का एक क्रियात्मक रूप है। यह निष्क्रिय इकाई नही है। जब भीड़ लक्ष्य प्रेरित होती है, तो वह क्राति की ओर बढ़ती है। आलोचको ने नयी कविता को व्यक्तिवादी कविता कहा है और अपने सृजन के लिए भीड़ को खतरनाक माना है। मुक्तिबोध ने भीड़ की व्याख्या करते हुए इसका उत्तर दिया है-"कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह जानता है कि एक स्थान मे सगठित एकत्रित जनता भीड़ नही है। जहॉ एक प्रेरणा और उद्देश्य है, वहॉ एक स्फीत और सक्रिय चेतना है। दश-विदेश के पिछले इतिहास से हम यह सूचित होता है कि सगठित जनता ने असाधारण कार्य किये है। हमारे कई नए कवियो को समूह से ही डर लगता है। क्यो? इसलिए कि पश्चिमी विचार उसे वैसा ही सिखाते है।" (एक साहित्यिक की डयरी) 'जनता विवेक शून्य है भीड़ है, उसका साथ मत दो। तुम सचेत व्यक्तिवादी प्राण केद्र हो"- ये वाक्य मुक्तिबोध की उस आत्मग्लानि को व्यग्यात्मक रूप मे रखते है जो नये कवियो मे घर कर रही थी। मुक्तिबोध के अनुसार ऐसी विचारधारा प्रति क्रियावादी है जो बुद्धिजीवियो को जनता से अलग करने की नापाक साजिश है। रचनाकार और विचारक 'जन' से प्रेरणा लेता है, उससे ऊर्जा प्राप्त करता है। मुक्तिबोध को ऐसी 'भीड़' से रागात्मक सम्बन्ध है क्योंकि वह उसी वर्ग का व्यक्ति है। वह ऐतिहासिक 'दर्द' से अन्तर्व्याप्ति है तभी इतिहास बोध उसकी रचना-प्रक्रिया मे घुल गया है।

वे दिशाकालधन वातावरण-पटल जैसे
चलते-जन-जन के साथ
वे है आगे वे है पीछे

इसी शोषण की प्रक्रिया पर इतिहास का दर्शन प्रस्तुत किया गया है-'उनकी ही पीड़ा की बुनियाद पर ही/खड़ा किया गया है एक ढॉचा/ एक फिलासफी मुक्तिबोध के इतिहास वोध (रचना प्रक्रिया म भी) मे आक्रोश का तीखा स्वर सारी रचनाप्रक्रिया म जज्ब हा गया है वह आरापित तथा क्षणिक भावावेश का नही है। असल म, वे विद्रोह एव क्राति को 'आवेश' के रूप मे नही लेते है, वरन् एक 'समझ' और 'एहसास' के रूप म लेत

है। क्रांति का रूप सगठित आवेश का रूप है जा दूरगामी प्रभाववाला होता है, वह क्षणिक आवग का रूप नहीं है। इस क्रांति का आवाहन व विम्ब-सृजन द्वारा कहते है यथा तड़ित उजाला, या शक्ति का पहाड़ आदि यथा "क्रोध की गुहाआ का मुँह खोले/शक्ति के पहाड़ दहाड़ते/" अथवा "समय का कण-कण/गगन की कालिमा से/बूँद-बूँद चू रहा/ तड़ित उजाला वन"। यहाँ पर कालिमा विम्ब से तड़ित उजाला फूट रहा है जो श्याम और श्वेत के सापेक्ष सम्बन्ध को व्यक्त करता है,यह सवध हमें ऋग्वेद म भी प्राप्त होता है जो सृष्टि के उद्‌भव को कालिमा से मानता है। असल मे ये "आद्यरूप" है जो कवि की रचना प्रक्रिया मे नय अर्थ क वाहक हो गये है। इसी के साथ, बुद्धिजीवियो की क्रांति मे एक विशिष्ट भूमिका हाती है, इसे व 'ब्रह्मराक्षस' कविता मे परोक्ष एव नकारात्मक रूप मे मानते है। स्थिति यह है कि यह वर्ग भी रक्तपायी 'वर्ग' मे "नाभिनाल वद्ध" रूप से जुड़ा हुआ है जिसकी ओर मुक्तिबोध इस तरह सकेत करते है-

> मत्र चुप, साहित्यिक चुप और कवि जन निर्वाक्
> चितक, शिल्पकार, नर्तक चुप है
> रक्तपायी वर्ग से नाभिनालवद्ध ये सव लोग
> नपुसक भोग-शिरा-जालो मे उलझे।

इतिहास हम यह वताता है कि क्रांति के पीछे विचारको-रचनाकारों का एक क्रियात्मक योगदान होता है, और मुक्तिवोध के इतिहास-बोध मे क्रांति की यह अवधारणा हे जो एक गतिशील प्रत्यय है।

मुक्तिवोध ने इतिहास को एक गति के रूप म और यहाँ तक कि एक 'मूल्य' के रूप मे ग्रहण किया है। "इतिहास ही वताएगा" यह वाक्य उसकी मूल्यवत्ता की ओर परोक्ष सकेत है। इतिहास मानव सापेक्ष है, और कवि के अनुसार "इतिहास स्तरो में तब हमारा चिह्न रह जाएगा"-यह कथन इतिहास और व्यक्ति के सवध को दिखाता है। इतिहास से ही व्यक्ति 'दृष्टि' लेता है, और 'जन' उसके केन्द्र मे है। 'व्यक्ति' से 'जन' तक की यात्रा इतिहास यात्रा है और मुक्तिवोध का इतिहास वोध इसी व्यापक सत्य का उद्‌घोप है।

□

अफ्रीकी कविता का परिदृश्य

समकालीन अफ्रीकी कविता का परिदृश्य व्यापक है। विडम्बना यह रही है कि अफ्रीकी महाद्वीप के 'बोध' को अभी तक हमने उपनिवेशवादी दृष्टि से ही देखा है, और यदि यह कहा जाए कि हमारा अफ्रीकी बोध "आदिम" या "स्टीरियो टाइप" ही अधिक है, तो अत्युक्ति न होगी।क्या अफ्रीका की सस्कृति और उसके इतिहास को मात्र उपनिवेशकाल तक सीमित माना जाए? मेरे विचार से यह उचित नही है क्योंकि अफ्रीका का इतिहास उपनिवेश काल से पूर्व कई शताब्दियो का इतिहास है। ट्रेवर-गेमर का यह मत है कि सुहेल क्षेत्र, सोमित, मालिन और मोस्सी आदि क्षेत्रा का इतिहास अकान, ईवी फोती तथा योसबा जातियो का एक जैविक इतिहास है। यही नहीं, (१६-१७) शताब्दी में अफ्रीका में अनेक 'नगर-राज्य' (मध्यअफ्रीका मे) का निर्माण हुआ जो हमे यूनान के 'नगर-राज्यों' की याद दिलाते है। यह सही है कि इन 'नगरराज्यो' के बारे मे हम कम ही जानते है (यथा काजम्बो, बुन्जौरी मोम्बासा आदि), लेकिन इतना निश्चित है कि इस दीर्घ काल के इतिहास का हम अफ्रीकी-इतिहास का अभिन्न अग मानते है। अफ्रीका का नृतत्त्वशास्त्रीय और रोमानी अध्ययन उन्हे "जन-जातियो" (?) के तौर पर ही स्वीकार करता है और इस प्रवृत्ति को आज का अफ्रीकी समाज नही मानता है, यहाँ तक कि वह अपने को "ट्राइब" भी नही कहना चाहता है। यह एक सत्य है कि किसी भी सस्कृति के इतिहास मे आदिम या आद्य-सस्कार होत है और यही बात अफ्रीकी

समाज के प्रति सत्य है। आज का अफ्रीकी-समाज भी परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व से गुजर रहा है, और इसका प्रमाण है वहाँ की कविता (साहित्य भी)। जहाँ एक ओर यह कविता जातीय "स्मृति" और लोकवृत्तो को धरोहर के रूप म स्वीकार करती है, वहाँ वह आधुनिक विचारो, प्रतीको और नए आशयो को अपने तरीके से "अर्थ" दे रही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज की अफ्रीकी कविता जहाँ एक ओर जातीय-स्मृति के सरोकारो से सबंधित है, वही वह उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध सघर्ष की कविता है, इस 'सघर्ष' मे 'जातीय स्मृति' के रुपाकार अपनी अहम् भूमिका अदा करते है, यही नही प्रकृति और प्रेम के आशय और रुपाकार इस 'सघर्ष' चेतना को 'गति' देते है। इस उपनिवेशवादी शोषण की प्रक्रिया ने कमावश रूप मे तीसरी दुनिया के देशो मे सघर्ष एव विद्रोह की चेतना को क्रमश बल प्रदान किया और इस तरह अफ्रीका के मुक्ति-आदोलन म वहाँ के कविया और रचनाकारो का विशेष हाथ रहा जिन्होंने भोक्ता और दृष्टा के रूप मे, इस सघर्ष चेतना को सॉन पर चढ़ाया और अपनी सवेदना का हिस्सा बनाया। इन कविया की विद्रोह और सघर्ष चेतना मे "नारेबाजी" नही है, वरन् सघर्ष की एक अर्थवान् व्यजना है जो शायद प्रतिबद्धता क बगैर सभव नही है। यह संवेदना वस्तुओ, घटनाओ, चरित्रो तथा लाक-रुपाकारो के द्वारा सकेतित होती है। उदाहरणस्वरूप, दक्षिण अफ्रीका के कवि सिफा सेपाम्ला "आड़ूके पेड़" के द्वारा उस सवेदना को प्रकट करते है:-

"हवा मे जड़ बना देने वाली गर्मी से बात करो
पूछो, कि नृशंसता कब तक जारी रहेगी,
आओ, बात करे आडू के पेड़ से
पता कर कि जमीन पर होना कैसा लगता है
आओ, हम शैतान से खुद ही बात करे
यही समय है कि
गर्म लोहे पर चोट करे। (सिफा सोपाम्ला)

दूसरी आर, सेनेगल क प्रसिद्ध कवि सेघोर "अश्वेत-रक्त की बेचैनी" को वाणी देते है -

"सुनो हमारे गीता को सुना
सुना, हमार अश्वेत रक्त की बेचैनी
सुनो, खाए हुए गॉवो के बीच

अफ्रीका की काली नब्ज सुनो।" (सघोर)

इसी बेचैनी मे जातीय स्मृति का सार्थक निर्धारण है क्योंकि कवि उस स्मृति से सघर्ष के लिए प्रेरणा लेना चाहता है तभी सेघोर इसी कविता मे आगे कहता है-

मुझे अपने पुरखो की गध को जानने दो
उनकी जीवित आवाज को सुनने और दोहराने दो
मुझे सीखने दो जीना,
इससे पहले कि
मै नीद की अतल गहराईयो मे
उतर जाऊ एक गोताखार से भी ज्यादा। (सेघोर)

अत , अफ्रीकी कविता के पूरे परिदृश्य में जहाँ एक ओर उपनिवेशवाद से सघर्ष की ऊर्जा नजर आती है, वही जातीय परम्परा, मौखिक परम्परा तथा लोक आशायो का जो रूप दृष्टिगत होता है, वह कवि को अपनी "जमीन" से जोड़ता है। यह सघर्ष चेतना (१९१५-२०) के मध्य अपना आकार ग्रहण करती नजर आती है जब अश्वेत अमरीका का प्रभाव अफ्रीका पर पड़ता है और आगे चलकर (१९६०-७०) के बीच अफ्रीका की सघर्ष चेतना का प्रभाव अमरीका की अश्वेत जाति पर पड़ता है। यही वह बिदु है जब अफ्रीका सौदर्यबोध और नीग्रोच्यूड का अश्वेत काला-आदोलन का प्रभाव वहाँ के साहित्य पर ही नहीं पड़ता है, वरन् ससार मे जहाँ-जहाँ भी अश्वेत-सघर्ष का रूप प्राप्त होता है (यथा अमरीका, अफ्रीका, वेस्ट इडीज, लैटिन अमरीका), वहाँ इस आदोलन का प्रभाव लक्षित होता है। अनेक विचारको का तो यहाँ तक मत है कि अश्वेत जाति ने ही अमरीका का निर्माण और विकास किया, और इन्ही के कारण अमरीका एक "शक्ति" के रूप मे उभर कर आया।

अफ्रीकी इतिहास मे जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण आदोलन माना गया है, वह है कीनिया का "माऊ माऊ" आदोलन जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशस्त्र आदोलन था। "माऊ" का अर्थ है आतंकित करना। किग मार्टिन लूदर (जूनियर) का विचार था कि इसी आदोलन के द्वारा अश्वेत अपनी मुक्ति प्राप्त कर सकते है और साथ ही, उनके सघर्ष मे यह आदोलन विचारधारात्मक शक्ति प्रदान कर सकता है जो उसकी रचनाशीलता को भी 'गति' दे सकता है। इसी आदोलन ने सुहेली भाषा को

वह स्थान दिया जो अफ्रीकी जागरण मे अहम् भूमिका अदा कर सको। इसी के साथ 'शव्द' की यातुक शक्ति (वर्ड-मैजिक) को महत्त्व दिया गया जो वस्तुओं को अपने अधिकार में करने में समर्थ हे, और यही शक्ति कविता के शव्दों मे भी होती है। इसे "आभामी विज्ञान" (सूडो-साइंस) भी कहते हैं जो विज्ञान का आदिम रूप हैं जो प्रकृति-शक्तियों पर विजय या अधिकार प्राप्त करने के निमित्त प्रयुक्त होता था। जर्मन विचारक जान हिन्ज जॉन जिसने अफ्रीकी समाज एवं संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया है, ठसका मत है कि "नोम्मों" या शव्द के द्वारा व्यक्ति या समूह एक प्रभाव-मडल की सृष्टि करता है जिससे कि वस्तु क्रमशः नियंत्रित हो जाती है। अत शव्द-यातु के अभ्यास से कविता के शव्दों का दूरगामी प्रभाव पड़ता हे।" दूसरी ओर प्रसिद्ध कवि सेंघोर का कथन है कि अफ्रीकी साहित्य और कला की प्रक्रिया सामूहिक और प्रकार्यात्मक (फग्शनल) हें जो परोक्ष रूप से "शव्द-यातु" पर आधारित है। इसे हम अपनी जरुरतो के लिए प्रयुक्त करते है। अफ्रीकी नाम, लोकवृत्त, आशय आद्यरूपो का प्रयोग शव्द की इसी शक्ति के द्वारा घटित होता है जो मात्र अफ्रीकी कविता में ही नहीं, वरन् अमरीका की अश्वेत कविता में भी प्राप्त होता है। अहमद अलहामिसी और वेंगारा ने अपने संपादन "व्लेक आर्ट:एन अन्थॉलोजी आफ व्लेक लिट्रेचर" की भूमिका मे ये काव्य पंक्तियाँ प्रस्तुत की हें

"ओ, मुलुगूं (देवता)
हम तुझे ये वलि की वस्तुएं भेंट करते हे
कि तुम हमें वह शक्ति दो
जिससे हम अपने हथियारों को
प्रदीप्त कर सके
अपनी मुक्ति के सशस्त्र संघर्ष मे।"

अफ्रीकी कविता का यह साहित्यिक गुरिल्ला रुप अनायास नहीं आया, वरन् वह तीन सोपानों से क्रमशः घटित हुआ। पहला काल ग्रहणशीलता का माना गया जिसमे पाश्चात्य प्रभाव को आत्मसात् किया गया। इसके बाद पूर्व-संघर्ष काल है जो सघर्ष या 'कन्फ्रेन्टेशन' की तैयारी का समय हे तथा तीसरा "संघर्ष की तीव्रता" का काल है जिसमें संघर्षरत कवि का वह रूप है जो सोयी हुई जनता को शोषण के विरुद्ध खड़ा कर सके। अनेक रचनाकार जिन्होंने कभी लिखना भी नहीं सोचा था, वे लेखन कार्य में नयी "ऊर्जा" लेकर प्रविष्ट हुए और नए "यथार्थ की क्रियात्मकता"

मे अपना योगदान दिया। इस 'क्रियात्मकता' मे मौखिक परम्परा का भी अपना हाथ रहा है क्योंकि इस परम्परा के गीतो मे भी परोक्षत मृत्यु बोध, सघर्ष-चेतना तथा सवेदना के भिन्न स्तर प्राप्त होते है जिनका प्रभाव अफ्रीकी कवियो पर पड़ा है। इथोपिया, कॉगो, दक्षिण अफ्रीका, तथा नाईजीरिया आदि के लोकगीतो मे सघर्ष तथा राग-सवेदन के भिन्न स्तर प्राप्त होते है। उदाहरणस्वरूप, एक गीत है यूथोपिया का जिसमे बधू से कहा जाता है कि यदि तुम्हे पति के घर मे सरपट खच्चर और चोगा न मिले तो तुम उसकी पिडली पर लात मार कर आ जाना-

"चाहिए तुम्हे सरपट खच्चर
न दे वे यह सब तो,
तो तुम उनकी पिडली पर
मार कर लात
आ जाना घर।"

नाईजीरिया के एक लोकगीत मे "भूख की पीड़ा" को व्यक्त किया गया है जो अफ्रीकी कविता मे अनेक रूपो मे अभिव्यक्त हुई है-

भूख एक आदमी को छत पर चढ़ा देती है
और वह शहतीर से लटका रहता है।
भूख किसी को लिटा देती है
जो खड़ा नही रह सकता
जब भूखा नही होता है मुसलमान, वह कहता है
मना है हमे बानर खाना
और जब भूखा होता है इब्राहीम
वह खा लेता है बानर।"

यही नही लोकगीतो मे माता, पिता, बेटा और बधू बार-बार आते है (आद्यरूप के समान) और अफ्रीकी कवि के लिए वे "अस्मिता" के अग ही नही है, वरन् वे कभी-कभी मुक्ति और सघर्ष के वाहक हो जाते है। मोजाम्बिक के कवि जार्ज रिबोलो 'माँ' के माध्यम से उस 'ऊर्जा' का आवाहन करता है जो 'माँ' को मुक्त कर सके -

"माँ, कितना सुदर है मुक्ति के लिए लड़ना
लाम पर जब डटा रहता हूँ
तुम्हारी छवि उतर आती है

मै तुम्हारे लिए ही लड़ता हूँ माँ
ताकि पोछ सकू
तुम्हारी आँखो के आँसू।" (जार्ज रिबोलो)

इसी तरह नाईजीरिया के प्रसिद्ध कवि ओकारा बेटे को सबोधित कर हल्के व्यग्य के द्वारा 'शोषण' की धूमिल क्रिया का संकेत करता है:-

"पर जब वे मिलाते है हाथ
उनका हृदय नही होता
जबकि उनका बाया हाथ
मेरी खाली जेब टटोलता रहता है।" (ओकार)

इसी सदर्भ मे एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ पर 'प्रणय' भी कभी-कभी मात्र "अन्तर्ग्रहण" न होकर वह "खमीर" है देशप्रेम का शोयिका (नाईजीरिया) की ये पंक्तियाँ ले-

"प्रेम,
अकेला ही नही प्राप्त करता
परिपूर्णता
आलिगन अन्तर्ग्रहण है
नर और नारी का प्यार उठाता है खमीर
राष्ट्रप्रेम की।" (शोयिका)

अफ्रीकी ही नहीं, वरन् सारी अश्वेत कविता मे 'सुदरता' की धारणा अभिजात् सौदर्य-भावना से अलग "काले" के सौदर्य को एक प्रतिलोम के रूप मे रखता है। दूसरे शब्दो में अश्वेत कवि अश्वेत-सौंदर्य को श्वेत-सौंदर्य के समकक्ष रखना चाहते है और साथ ही, सौदर्य को सघर्ष और 'श्रम' से जोड़कर "सौदर्य के सघर्षशील रूप" को अर्थ देना चाहते है। दक्षिण अफ्रीका के कवि ए॰ एन॰ सी॰ कुमालो ने नेशनल काग्रेस की महिलाओ की नेता लिलियन नोयी पर एक कविता लिखी जब वह पन्द्रह वर्षो का कठोर यातनापूर्ण कारावास काट कर आती है उस समय वह ५९ वर्ष की थी -

"तुम एक शेरनी हो/निडर/निर्भीक
सुनो लिलियन,
उनसठ की उम्र म
हर स्त्री सुदर हो
जेसे कि तुम।"

इस प्रकार हम देखते है कि अफ्रीकी कविता का सौदर्यबोध अभिजात् मानसिकता का न होकर वाचिक परम्परा की सामूहिकता पर ही अधिक आश्रित है और यह सौदर्य मात्र आत्मगत न होकर वस्तुगत सघर्ष-चेतना को व्यक्त करता है जो समूह और व्यक्ति के द्वन्द्व से उपजा सौदर्य-बीज है। अफ्रीकी आलोचक नोरेत्जे का यह मत है कि अफ्रीकी और अश्वेत कविता मे सघर्ष और आक्रमण है, पर हिसा की नारेबाजी नही है। कविता की मुद्रा अहिसक होते हुए भी सघर्षशील है जो अपने 'शत्रु' को पहचानती है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन कवियो ने अतियथार्थवाद (सूरियलिज्म) मे फ्राससी प्रतीकवाद को नही प्रविष्ट होने दिया जो कुठाओ तथा अचेतन प्रवृत्तियो का रगस्थल है। अफ्रीकी कविता मे अधिकतर जो प्रतीक बिम्ब आए है, वे या तो 'लोक' के है या आध्यात्म के। ये प्रतीक मानसिक रूग्णता एव सेक्स के रूप नही है जो हमे फ्रेच प्रतीकवाद मे प्राप्त होते है। अत अफ्रीकी कविता मे 'काला-सौदर्य' मात्र कल्पना नही है, वरन् वह एक क्रियाशील विचार है जो एक साहित्यिक आदोलन के रुप मे सामने आया। काला 'कुरूप' नही है, वरन् वह सृजन का सस्पर्श पाकर 'सुदर' हो जाता है, उसी प्रकार जैसे कुरूप सृजनात्मक होकर सुदर हो जाता है। निराला तथा नागार्जुन आदि हिदी कवियो मे भी सौदर्य का यह रूप प्राप्त होता है जो श्रम और सघर्ष का सौदर्य है। सार्त्र ने इस कालेवाद को "अतिवाद" कहा है जो मेरी दृष्टि से उचित नही है। यह इसलिए कि 'कालावाद' एक नकारी हुई जाति का वह बल एव ऊर्जा है जो उपनिवेशवादी प्रभुसत्ता के समकक्ष एक शक्तिशाली सकारात्मक हथियार है जिसका सबध उनकी जातीय अस्मिता से है। क्या योरोप काले सगीत, काले नृत्य तथा काले सौदर्य को नकार सका है जबकि सत्य यह है कि इनका प्रवेश योरोपीय समाज मे हो चुका है। यह भी एक सत्य है कि अश्वेत मानसिकता ने ऐसा कोई व्यवहार नही किया जो श्वेत-घृणा और अन्याय के समकक्ष रखा जाए। इतनी नफरत, अन्याय, शोषण तथा अत्याचार से लगातार जूझते हुए भी अश्वेत साहित्य का कालावाद नस्लवाद की घृणा से नही जुड़ता है जिसके दर्शन हमे श्वेत मानसिकता मे प्राप्त होते है। सोयका, माइकेल ऐकिरो, क्लार्क तथा ओकिम्बो आदि कवियो ने इस वैचारिक ऊर्जा को सवेदना मे ढाला और इस तरह उसे अपने अस्तित्व और सघर्ष का वाहक बनाया। क्रिस्टोफर ओकिम्बो ने राष्ट्रीयता के तत्त्व की गतिशील रचना की और ओकारा जैसे कवियो ने लोक-परम्परा के सास्कृतिक पक्ष की खोज

को। इस प्रकार अफ्रीका की इस नयी कविता ने जनजागरण की चेतना को विकसित किया। यही नही, इन कवियो ने विदेशी भाषा (अग्रेजी) के मोह को भी छोड़ा जिसमे वे लम्बे समय से रचना कर रहे थे,उन्हे यह लगा कि क्या वे श्वेत शासको के लिए लिख रह है? अत· अफ्रीका का नया कवि पुनः सुहेली, हौजा, वाण्ह आदि की रचनात्मक सभावनाओ की ओर बढ़ा। इससे हुआ यह कि नया कवि अपनी 'जमीन' से जुड़ा और उनका शब्द-शब्द मुक्ति और सघर्ष के लिए बलिदान हुआ। नाईजीरिया के राष्ट्रकवि ओकिम्बों ने एक स्थान पर लिखा है कि 'मैने कविता लिखना उस समय आरभ किया जब मैने एक कराहते हुए राष्ट्र को अपने अदर महसूस किया और तब मुझे लगा कि मै अपने अदर मुड़ कर देखू। जब मै अपनी तलाश मे अपने भीतर उतरा तो मेरे अदर से जो 'सघर्ष बाहर निकला, वह कविता बन कर फूट पड़ा।" ओकिम्बो की निम्न पंक्तियाँ जो मेघ-आगमन से संबंधित है, उसमे संघर्ष और विद्रोह की तीव्र बेचैनी है·-

अब जबकि
विजयी सेना की शोभायात्रा
सड़क की छोर पर है
ध्यान दो, ओ नर्तको, ओ-मेघ-गर्जनाओं।
रक्त की गंध तैरती हुई
अपराह्न के नील-लोहित-कुहासे मे" (ओकिम्बो)

कवि की यह ओजस्वी वाणी हमे बरबस निराला 'बादल-राग' कविता की याद दिलाती है जो परोक्षतः उपनिवेशवादी शोषण से मुक्ति की अदम्य आकाक्षा रखने वाली कविता है। अतः अफ्रीकी कविता एक बड़े सांस्कृतिक समाज के विद्रोह की कविता रही है जिसने उनके मुक्ति-सघर्ष को बल दिया, वहीं वह अब समानता और विकास के लिए संघर्ष करती हुई कविता है। इसी से, अफ्रीकी कवि, कविता को राजनीति से सम्बद्ध करके देखता है, वह तो यहाँ तक कहता है कि जहाँ हर वस्तु, हर सोच परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से राजनैतिक हो, वहाँ कविता मे राजनीतिक-मुहावरे से परहेज क्यों? इस तरह जहाँ अफ्रीकी कविता नए मुहावरे को अर्थ देती है, वही वह परम्परा से कटी नहीं है। कहा जाता है कि इस दृष्टि से नाईजीरिया का साहित्य सबसे समृद्ध है। लम्बे सघर्ष के बाद नाईजीरिया १९६३ में गणराज्य बना। और तभी उसने फुलेनी, योरुबा तथा इबा आदि

जनजातियो की काव्य परम्परा को नया सदर्भ दिया, वही चिनुआ अचिबी ने अश्वेत कविता को उसका वह सौदर्यशास्त्र दिया जो उनकी जमीन से जुड़ा अभिजात् मानसिकता के प्रतिपक्ष का सौदर्यबोध था। वोले सोयिका ने कविता, उपन्यास, निबध तथा पत्रकारिता मे वह योगदान दिया जिसने अश्वेत साहित्य को विश्व के रगमच पर प्रतिष्ठित किया। यही नही, सोयिका ने नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर अश्वेत प्रतिभा किसी से कम नही है, यह सिद्ध कर दिया। इसी प्रकार, दक्षिण अफ्रीका के कवियो ने राजनैतिक चेतना के साथ मानवीय सघर्ष तथा मानवीय सरोकारों को "अर्थ" दिया। डेनिस ब्रूडस, चुगारा, एरिक मेजनी, बेजामिन मोलाइसे तथा हेनरी पेट जैसे कवियो ने यहाँ की काव्य-प्रतिभा को विकसित कर, उसे विश्व मे विशेष स्थान दिलवाया। मोलाइसे जैसे युवा कवि को फासी पर लटका दिया गया, लेकिन उसकी भविष्यवाणी "काले राज्य करेगे" सत्य हो गयी है। नेल्सन मडेला यहाँ के कवियो के लिए सघर्ष-चेतना का प्रतीक बन गया। बोले सोयिका की लम्बी कविता "उसने कह दिया, नहीं" मडेला को एक सघर्ष-प्रतीक के रूप मे प्रतिष्ठित करती है जिसने 'जलपोत' का मार्ग ही बदल दिया -

> और उन्होने देखा-
> उसके हाथ की बधी हुई मुट्ठियाँ
> हजारो रोमकूपो से रिसती
> रक्त की बूँदे,
> एक अकेला मछुआरा
> व्यग्र तना हुआ, मारता हाथ पर हाथ
> बदल दिया उसने जलपोत का मार्ग।" (सोयिका)

यहाँ पर एक तथ्य की ओर सकेत जरूरी है। अश्वेत साहित्य का परिदृश्य बहुत व्यापक है जिसमे अमरीका, कनाड़ा, लेटिन, अमरीका, सारा अफ्रीकी साहित्य, दक्षिण पूर्व एशिया के लोक साहित्य तथा दलित साहित्य आदि शामिल है। यदि गहराई से देखा जाए, तो इनमे कुछ सम्बन्ध-सूत्र है जैसे मौखिक व लोक परम्परा की सामूहिकता, अलकृत-काव्य-रचना का अभाव, विद्रोह एव सघर्ष के तत्त्व, मानवीयता के गुण, काव्य रचना का खुलापन तथा आवेश एव विक्षोभ की मिश्रित अभिव्यक्ति। यहाँ पर यह भी ध्यातव्य है कि अश्वेत-सस्कृति का दूसरा नाम ही है विरोध और विद्रोह

को मस्कृति जिसका मबध भू क एक बहुत बड़े भाग से है। ऐसे भविष्य की मकल्पना यहाँ मभावित प्रतीत होती है जब यह विरोधी विद्रोही सस्कृति एक प्रमुख शक्ति के रूप म उभर तब कदाभिमुखी प्रवृत्ति के बल पकड़ने की दशा म वह कला और साहित्य के स्वनिमित नियमा अभिप्रायो और अभिवृत्तिया को सृजित कर सकेगी? यहाँ पर म कूलैरन्स मेजर की पुस्तक "दि न्यू ब्लैक पोयट्री' (नयी अश्वेत कविता) की भूमिका का जिक्र करना चाहूगा। जिसने 'सम्पूर्ण' अश्वेत कविता की विरासत को 'गुलाम-शरीरा की सकेत लिपि" कहा है जो राजनैतिक सामाजिक परिवर्तन के समानातर नैतिक तथा सौदर्यशास्त्रीय अनुपातो मरोकारा का निधारित करने क मार्ग म सचेष्ट है। उसका यह कहना है कि "बिना नए और बुनियादी सौदर्यशास्त्र के अश्वत जाति का भविष्य सभव नही है। यह अश्वत दृष्टि समाज और राष्ट्र क सौदर्यबोध का व्यापक और अर्थवान् बनाएगी। अब समय आ गया है कि श्वेत या गोरी जातिया की पौराणिकता को सुधारन की जरुरत है। प्रत्येक देश या समुदाय जहाँ सास्कृतिक उपनिवेशवाद हावी है, उसका पर्दाफाश कर उसकी पौराणिकता को नया सदभ देना है। गोरी सस्कृति मे अश्वेत सस्कृति का प्रवेश या यो कहे कि दोनो सस्कृतिया के प्रगतिशील एव मानवीय तत्त्वो का विवेक सम्मत समन्वय सारी मानवीय सस्कृति की दीर्घकालीन विरासत को नयी स्फूर्ति एव चेतना से भर सकता है।" मेजर का यह कथन उस वृहद् सास्कृतिक 'सवाद' की आर सकेत है जो मानवीय इतिहास की द्वन्द्वात्मक-प्रक्रिया का "सभावित रूप है। इसम यह भी स्पष्ट होता है कि सारे अश्वेत और दलित साहित्य को उसकी 'अर्थवत्ता' देना जरूरी है, उसकी 'आवाज को सुनना जानना और यथाचित महत्त्व दना आज की माँग है क्योंकि इन जातिया की अपनी महत्त्वपूर्ण अस्मिता है जो इतिहास गति का अभिन्न अग है। आज जबकि य अश्वेत देशा कि जातियाँ अपने 'वजूद' को पहचान चुकी हैं अपनी सोई हुई 'सघर्ष चेतना पहचान चुकी है तथा अपनी 'मुक्ति' को कमावेश रूप से प्राप्त कर चुकी है, तब तो यह और जरूरी है कि सृजन और सस्कृति के क्षेत्र म वे अपने को एकजुट कर, तभी वे 'मानवीय' सस्कृति म एक सार्थक हस्तक्षेप कर सकगी। यही कारण है कि एक अमरीकी अश्वेत कवि लैंगस्टन ह्यूज सारी अश्वेत जाति के बीच एक सवाद चाहता है जिससे कि एक सामूहिक पौराणिकता" का क्रमश विकास हो सके। कवि कहता है-

हम सब सबंधित है-तुम और मै
तुम वेस्टइडीज स
मै घना से
हम सब सबंधित है-तुम और मै
तुम अमरीका से
मै अफ्रीका से
हम भाई भाई है-तुम और मै।

यह वह 'नस्लवाद' नहीं है जा अधिकार, शापण और यातना का अपने हित मे प्रयुक्त करता है, वरन् यह युगा मे पीड़ित, उपक्षित एव शोपित जाति की वह "अस्मिता" है, 'ऊर्जा' और 'आवाज' है जिसे अनसुना नहीं किया जाना चाहिए। अफ्रीकी अश्वेत साहित्य और सारा अश्वेत साहित्य इस तथ्य को बार-बार अपनी "सृजनात्मक-ऊर्जा" से व्यक्त कर रहा है।

उपयोगी सदर्भ

1 "डायाजिनीज" पत्रिका (फ्रास) अक १३५, १९५६ से प्रकाशित लेख "दि अफ्रीकन् इन्सीपरेशन आफ ब्लैक आर्ट मूवमेंट, पृ० ९३-१०४० लेखक एडवर्ड आ० ण्को।

2 दि मुन्टू दि न्यू अफ्रीकन कल्चर, जैनहिन्ज जॉन (१९६२)

3 ब्लेक आर्ट एन एन्थालाजी आफ ब्लैक लिट्रेचर, सपादक अहमद अलहन्सी एण्ड बैगारा (१९६९)

4 सलेक्टेड पोयम्स, सपादक लैंगस्टन ह्यूज (१९७५)

5 "इतिहास बोध" (पत्रिका), सपादक लाल बहादुर वर्मा अक १० मे प्रकाशित श्री ध्रुव गुप्ता का लेख "अमारा अफ्रीकी बोध।

6 "पहल" पत्रिका का अफ्रीकी साहित्य अक (१९९१)

7 नाइजीरिया की कविताओ का अनुवाद, अनुवादक वीरेन्द्र कुमार बरनवाल (१९८९) (पुस्तक का नाम 'पानी की छीटें सूरज के चहरे पर")

❑

[12]

मुक्त बाजार और समकालीन कविता

समकालीन कविता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में मुक्त बाजार, उपभोक्तावाद तथा भूमंडलीकरण की प्रक्रियाएं जहाँ एक ओर समाज एवं संस्कृति को प्रभावित कर रही है, वही आज की कविता भी इस खतरे को पहचान कर, इसे अपनी संवेदना का हिस्सा बनाकर, देश और समाज को (यहाँ तक कि तीसरी-दूसरी दुनियां को भी) आगाह ही नही कर रही, वरन् अपने समय के 'संकट' को अर्थवत्ता दे रही है। इतिहास इस बात का गवाह है कि जब जब मानवीय इतिहास मे ऐसे 'संकट' एवं गतिरोध आए हैं, तब तब रचनाकारों, विचारको तथा कलाकारो ने अपने-तरीके से इनसे रचनात्मक संघर्ष किया है। यह रचनात्मक संघर्ष इस बात का सबूत है कि रचनाकारो ने सदा परिवर्तन के सकारात्मक रूप की कामना की है तथा शोषण, दमन तथा अंधविश्वासो का विरोध किया है। इस रचनात्मक संघर्ष विवेचन के पूर्व 'मुक्त बाजार'की धारणा क्या है इस पर विचार अपेक्षित है।

'मुक्त बाजार' एक तरह से पूँजीवाद का परिवर्तित रूप है जो बीसवीं शताब्दी के अंत में साम्राज्यवाद का रूप लेता जा रहा है जो उत्तर-आधुनिकता और इक्कीसवीं सदी में अपने "डेने' पसारने की स्थिति मे है। इसमे पूँजी अपने इजारेदारी में परिवर्तित कर, एक योजना बद्ध कार्यक्रम के तहत, उदारीकरण तथा निजीकरण आदि के द्वारा दूसरी तथा तीसरी दुनिया के देशो का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शोषण कर रही है और परोक्ष रूप से आम जनता को कगाली और गरीबी के दलदल में खींच

कर 'पूँजी' को विकसित देशो (जिनका अगुआ अमरीका ह) मे अधिक स अधिक केंद्रित करने का मार्ग प्रशस्त कर रही है। यह इजारेदारी पूजीवाद भूमडलीकरण के तहत (जो एक मोहक नाम है, पर है स्वार्थ से प्रेरित शोषण का प्रतिरूप) एक ऐसा सप्रत्यय है जिसकी चपेट म सत्ता और अर्थव्यवस्थाएँ आ गयी है। यही स्थिति दूसरी तथा तीसरी दुनिया के देशा की है। मात्र चीन ही एक ऐसा देश है जो इस गिरफ्त मे पूरी तरह से नही आया है। नद चतुर्वेदी अपनी एक कविता "अधकार होने से पूर्व" मे इस सकट को साकेतिक रूप मे प्रस्तुत करते है -

आज सब जानते है
मै मिर्फ कगालो की तरह
सबको याद दिलाता हू
जरा जल्दी करो
अधकार होने के पूर्व
(एक और अतरीप, सितबर-८६)

पूजीवाद का यह रूप जो आज एक अजगर की तरह अविकसित देशो की सस्कृतियो को परोक्ष रूप से उदग्रस्त कर रहा है, वह पहले के (उपनिवेशवादी) पूजीवाद से भिन्न है। यह पूजीवाद उपभाक्तवाद के विकराल रूप को प्रश्रय दे रहा है या हम इसे चाहे तो भोगवादी-पूँजीवाद कह सकते है। यही भोगवादी पूँजीवाद अनेक रूपों मे हमारे सामने है। बहुराष्ट्रीय कम्पनिया, उपभोक्तवादी विश्व सुदरी प्रतियोगिता, पाच सितारा होटल तथा एलेक्ट्रानिक मीडिया आदि इस पूँजीवाद के बहुमुखी विकास के स्तभ है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गहराई से देखे तो समाजवादी तत्र जो प्रतिबंधित और गतिरूद्ध था उसके भीतर क्रमश पूँजीवादी लूट-तत्र और भोग-तत्र ने उन्हे खोखला बना दिया उनकी (रूस तथा पूर्वी यूराप के देशो की) अर्थव्यवस्थाओ को चरमरा कर दख दिया। अत सावियत रूस तथा पूर्वी यूरोप के देशो का जो विखडन या बिखराव हुआ है, वह समाजवादी खोल मे लिपटा पूँजीवादी कुलीन तत्र बिखरा है। अत विश्व का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की चपेट मे क्रमश आता जा रहा है जो एक यथार्थ है और समाजवादी शक्तिया इस शक्ति के सामने उतनी बलशाली नही है कि इसे रोक सके। मुक्त बाजार की अवधारणा इसी अर्थ मे भूमण्डलीकरण की धारणा से हाथ मिलाती है जहाँ पूँजी इजारेदारी के

द्वारा भूमण्डलीकरण की ओर अग्रसर है। समकालीन कविता के अनेक कवि कहीं साकेतित रूप से तो कहीं प्रत्यक्ष रूप से इस "हमले" के प्रति सचेत है और इस पूरे परिदृश्य का एक "रचनात्मक अर्थवत्ता" दे रहे है।। नरेन्द्र जैन की कविता 'बरबूटे' (चींटिया जो भयकर होती है) साकेतिक रूप से इस पूरे माहोल को, इस आक्रमण को इस तरह व्यक्त करती है

यह एक भयावह हमला है
और हमलावर है बरबूटे
दीमक की प्रजाति है जैसे
सुबह तक निगल जाएगी
आस पास की दुनिया

*　　*　　*

बरबूटे कहा नही है?
कहाँ नहीं हो रहा हमला?
कहा नही मारे जा रहे नागरिक।

(पहल ५३ पृ० ११६)

सकटग्रस्त एव अविकसित देशो मे जो मुक्त बाजार व्यवस्था लागू हो रही है, उसे "उदारीकरण" कहा जा रहा है। इसका अर्थ यह है कि इन देशो की अर्थव्यवस्थाए प्रतिबंधित और बद थी, और इस नीति के कारण, जैसा कि मनमोहन सिह का कहना है, इन देशो की अधोगति हुई है तथा देश के अदर उद्यम मरा है। इसी के चलते देश के अदर नयी आर्थिक नीति लागू की गयी जो 'मुक्त बाजार' की व्यवस्था है। अत्र जो भूमण्डलीय गाँव" ग्लोबल विलेज) की अवधारणा विकसित हो रही है उसके तहत सार्वभौमिक वस्तुओं का निर्धारण विकसित देश कर रह है। मुक्त बाजार इस 'तय" करने की दिशा म एक खतरनाक कदम है जिसमे उपभोक्तावाद तो बढ़ ही रहा है साथ ही इस नए पूँजीवाद क तहत पूँजी को अपने 'हित' म ज्यादा से ज्यादा बटोरने की स्थिति है जो हमें क्रमश 'कगाली' की ओर ले जाएगी। इस "लूट तत्र" मे शक्तिशाली देश दूसरा का लूटते है, और इस लूट का मूलमत्र है "लूटो नही तो दूसरा द्वारा लूट जाओगे"। इस लूट में सत्ता का बहुराष्ट्रीय निगमा का विश्व सुदरी प्रतियागिताआ का इलेक्ट्रानिक मीडिया का तथा इसी प्रकार के माध्यमा का अपना विशेष हाथ है। यह लूट-तत्र भारतीय पूजीपति वर्ग नेता, नौकरशाही आदि म इस कदर बढ़ गया है कि एसा लगता है कि इस वग ने जनता के धन पर आधारित कारोबार

का एक ऐसा अस्त्र उनके हाथ लगा जिसे उन्होने "समाजवाद" के नाम पर पूँजी को अपने हित मे एकत्र किया और इस तरह सम्पत्ति को बढ़ाना और उसका 'उपभोग' करना ही मानो राष्ट्रीय विकास और खुशहाली का पर्याय बन गया। इसी के साथ विदेशी जीवन-पद्धति को स्वीकार कर उपभोक्तावादी सस्कृति को इस तरह ग्रहण किया गया कि इसका सकारात्मक की अपेक्षा नकारात्मक प्रभाव जनता तथा राष्ट्र पर पड़ा। इसमे विदेशी पूँजी उन्हीं की शर्तों पर लग रही है जिसका साकेतिक रूप हमे समकालीन कविता मे भिन्न रूपाकारो के द्वारा प्राप्त होता है। युवा कवि विनोद दास की कविताओ मे इस मुक्त बाजार के अनेक रूप प्राप्त होते है जैसे विदेशी पूँजी से बने तापगृह किनके लिए है?

विदेशी पूँजी से जहाँ बन रहा है ताप गृह
उसकी मँहगी बिजली से
तपते जेठ के दिना मे किसके घर ठडे होगे
और कटकटाती धूप मे
किसके घर होगे गरम (वर्णमाला से बाहर,पृ॰६२)

कवि ने पाच सितारा होटल कविता मे मानो परोक्ष रूप से देशो म चल रहे इस लूट तत्र को माना मूर्तिमान कर दिया है जो झुग्गी झोपड़ी की कब्र पर खड़े किए गए है जहाँ लोलुपता का 'नृत्य' होता है कुछ पंक्तियाँ ले -

"कोई नही पूछता/जो यहाँ झुग्गी झोपड़ी मे रहते थे। वे कहाँ गए, जो लुटाया जाता है यहाँ/कहाँ से आया है लूटकर/निर्वसन होती जिस स्त्री का/लोलुपता मे/देखा जा रहा है नाच/किस घर की है/सब देखत है यहाँ/एक दूसरे को/सिर्फ लूट के सामान की तरह"। (वर्णमाला के बाहर,पृ॰१७)

बाजार तत्र और उपभोक्तावाद का यह नृत्य समकालीन कविता म अनेक रूपो मे आ रहा है, एक माध्यम है दूरदर्शन का छोटा परदा "जिसने पहुँचा दिया है घर में बाजार" (विनोद दास), तो दूसरी ओर ओम भारती की कविता "टी॰ वी॰ पर जूतो के दर्शन से कृतकृत्य हो" मे जूता एक पुण्य या वस्तु है जिसका उत्पादन हो रहा है, सृजन नहीं, यह सृजन का अभाव पूरी कविता मे अन्तर्व्याप्त है जो बाजार सस्कृति का एक यथार्थ है।

इनके गुदगुदे गुह्य सस्पर्श से
फूट पड़ रहा कैसा तो करिश्माई
कम्पयूटर-कौशल

आधुनिक यंत्रो का यह निर्दोष प्रावीण्य
सृजन नहीं, उत्पादन
जीवन से विलग यह कला आत्ममुग्ध
(पहल ५२, पृ०१२०)

इस नयी बाजार व्यवस्था या नई अर्थ-व्यवस्था के तहत सृजन के बाजारीकरण के साथ भाषा (शब्द) का जो रूप इलेक्ट्रॉनिक माध्मों के द्वारा आ रहा है वह जानबूझकर मानव की सांस्कृतिक संवेदना को निरस्त कर, उसे रोमांचित एव उत्तेजित कर, एक ऐसी तात्कालिक "कोध" पैदा करता है जो उसके सोच को पृष्ठभूमि में डाल कर, शब्द की इस अविरल कोध का यह 'अनुभव' दर्शक को एक निष्क्रिय आकर्षक विभ्रम मे ले जाकर उसे असहाय छोड़ देता है। दूरदर्शन के अनेक सीरियल एवं मेगासीरियल ऐसी ही भाषा का "उत्पादन" कर रहे है, जो हिन्दी-अंग्रेजी की मिलावट वाली भाषा है। विनोद दास की एक कविता 'संवाद' बच्चे के माध्यम से इसी त्रासद स्थिति को सांकेतिक रूप से व्यक्त करती है।

"मेरे बेटे के पास अजीब भाषा है"

जब वह बोलता है/मुहावरे बोलता है/शब्द नहीं उसमें .. .होती है न तो गरमाहट/और न ठंडापन/अभिप्राय भी नहीं/मेरा बेटा/एक कुली की तरह/दूसरे की भाषा के बॉक्स को ढो रहा है। (विनोद दास)

पूरी कविता की सरचना इस तथ्य को समक्ष रखती है कि नकल की भाषा में संवाद नहीं हो सकता है, न नए विचार आ सकते है और ऐसी स्थिति में शब्द मात्र खाली कनस्तार की तरह बजते है। समकालीन कविता शब्द की इस खोयी हुई 'अस्मिता' के प्रति सजग है, तभी तो आज की कविता इस भाषिक अवमूल्यन के प्रति सजग और सृजन के स्तर पर "युद्धरत" है।

मुक्त बाजार की धारणा जहाँ पूँजी के वैश्विीकरण को रूप दे रही है वहीं वह पिछड़े देशों को कर्ज, अस्त्र-शस्त्र आदि देकर इन मुल्कों की *अर्थव्यवस्था को क्रमश: मुखापेक्षी बनाती जा रही है जिसका संकेत ऊपर* हो चुका है। इस संदर्भ में अरु मालवीय की एक कविता "हो ची मिन्ह की दाढ़ी कटा दें तो" का जिक्र करना चाहूंगा जहाँ यह कहा गया है कि यदि ची मिन्ह अपनी दाढ़ी कटा दे तो "अमेरिका देगा उन्हे भारी पूंजी/एशिया और अफ्रीका के/गरीब मुल्कों मे उद्योग लगाने के लिए।" यह तो हुआ विदेशी

पूँजी का विस्तार, पर कवि यही नही रूकता है, वरन् वह ची मिन्ह की दाढ़ी मे क्राति के बीज देखता है तथा उसमे वियतनाम के ऐसे जगल जहाँ।

"जिसमे भटक कर टूट गए थे
साम्राज्यवादी सिपाहियो के मनसूबे
जिन जगलो से खोज लाए थे
वियतनामी गुरिल्ले
गरीब मुल्को के लिए निषिद्ध फल
आत्म सम्मान का

(कहन, सितबर १९८६)

असल मे, यह 'आत्म सम्मान' ही हमे इस हमले से बचा सकता है। और यह आत्म सम्मान उन देशो को लाना होगा नही तो 'भविष्य' का क्या रूप होगा, इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। मझे इसी सदर्भ मे सुधाशु कुमार मालवीय की एक महत्त्वपूर्ण कविता "पूँजीवाद जनतत्र का जनगीत" की याद आ रही है जिसमे इस भयकर चहुतरफा "मार" को व्यंजित किया गया है।

तुम हमे धीरे धीरे मारो
थोड़ा थोड़ा करके/ इतना कि मै सुरक्षित रहूँ

*　　　　*　　　　*

तुम हमे गाँव मे मारो, शहर मे मारो
खेत और खलिहान मे मारो
धारदार हथियार से मारो
बस जरा थम के मारो

कविता का अत बेहतर व्यवस्था की भावी आशा मे होता है, पर शर्त है "मै" (देश और व्यक्ति की अस्मिता और आत्मसम्मान) की सुरक्षा जो यहाँ पर 'जन' का प्रतीक है -

तुम्हारी सत्ता गिरे, यह दुनिया बदल जाए
अच्छा है
जो है, उससे बेहतर मिले अच्छा है

समाज का एक नए युग में सक्रमण हो,
अच्छा है
लेकिन धीरे-धीरे और शांतिपूर्ण ढंग से
सिर्फ इतना कि मै सुरक्षित रहूं। (पहल ५२ पृ॰१२०)

यदि गहराई से देखा जाए तो यह कविता मात्र व्यक्तिगत, एक -देशीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय है। जहाँ जहाँ भोगवादी पूजीवाद तथा वे सभी व्यवस्थाएँ जो किसी न किसी रूप से इस 'प्रक्रिया' मे सहायक है उन सबके प्रति यह कविता एक "चुनौती" है तथा 'जन' को ऐतिहासिक 'अर्थवत्ता' देने मे है।

इस पूरे विवेचन से यह स्पष्ट है कि विश्व बाजार व्यवस्था ने, मोहक भूमण्डलीकरण के नाम से साहित्य, कला और दर्शन को 'बाजार' की वस्तु बना दिया है, लेकिन इसके बावजूद इन्हीं क्षेत्रों मे इसका 'विरोध' भी हो रहा है। इस महासंकट से बचने का रास्ता मुझे यह नजर आता है कि हम अपनी अस्मिता को पहचाने तथा साहित्य, कला, दर्शन, प्रगतिशील संगठन तथा राजनैतिक दल (?) एकजुट होकर इस व्यवस्था का विरोध करे जो क्रमशः हमें शोषण एवं कगालीपन की ओर ले जा रही है। यह भी जरूरी है कि सत्ता वर्ग अपने देशद्रोही तथा भ्रष्ट चरित्र को पहचाने और उसे दूर करें (?) यह कब होगा, यह तो भविष्य ही या इतिहास ही बताएगा, लेकिन ऐतिहासिक द्वन्द्व-प्रक्रिया इस नए पूँजीवाद को भी विखंडित करेगी जिस तरह सामंतवादी पूँजीवाद विखंडित हुआ है क्योंकि यह एक सत्य है कि जब कोई व्यवस्था अति की ओर बढ़ती है, तो उसमें विसंगतियां उत्पन्न होती हैं जो उसे क्रमशः भूलुंठित कर देती है।

□

[13]

समकालीन युवा कविता

समकालीन कविता के व्यापक परिप्रेक्ष्य मे एक बात जो साफ नजर आ रही है वह है युवा कविया की एक लम्बी पंक्ति जिसके बगैर शायद आज की कविता का समग्र मूल्याकन सभव नही हो सकेगा। हम आलोचकों का ध्यान सामान्यत प्रतिष्ठित एव स्थापित कवियो की रचनाशीलता की ओर पहले जाता है और उन्ही के आधार पर हम मूल्याकन और विवेचन की ओर गतिशील होते है। मेरा यह मानना है कि युवा रचनाशीलता के बगैर समकालीन कविता की अस्मिता को ठीक तरह से 'लोकेट' नही किया जा सकता है, क्योंकि आज का युवा कवि सवेदना और यथार्थ के जिस तकलीफदेह और सघर्षशील रूपो को लगातार व्यक्त कर रहा है, वह समकालीन कविता के सोच-सवेदन को किसी न किसी रूप मे प्रभावित कर रहा है। इस युवा रचनाशीलता मे "अति कल्पना" के आयामो से कम से कम टकराने की स्थिति है। यह सही है कि सृजन के लिए 'कल्पना' जरूरी है, लेकिन जब कल्पना यथार्थ और सवेदन की कठोर भूमि से नजर चुराने लगती है, तो वह पगु और अर्थहीन होने लगती है। इस दृष्टि से आज का युवा कवि कल्पना के वायवीय रूपो का इस्तेमाल नही कर रहा है, वरन् उसे सवेदना और यथार्थ की कठोर भूमि पर गतिशील कर रहा है जिसमे विचार की हल्की-गहरी रेखाए यदा कदा प्राप्त होती है। इस प्रयास मे कुछ कवि अपेक्षाकृत अधिक सफल हो रहे है और कुछ कम। यह भी सही है कि आज कविता बहुत लिखी जा रही है और उस हुजूम मे बहुत कुछ "ट्रैस" भी है, बहुत कुछ एकरूपता को लिए हुए है। लेकिन इसके बावजूद यह भी एक सत्य है कि अनेक युवा कवि अपनी पहचान बनाने मे न्यूनाधिक

रूप से सफल भी हुए है। इन कवियो की सवेदना एक सघर्षमूलक बचैनी और मुह बाए 'अधेरे' के खिलाफ सघर्षरत है एक ऐसा 'अधेरा' जो पूरे परिवेश को अपनी गिरफ्त म ले रहा है। इसमे राजनीति समाज परिवार की तकलीफदेह और रागात्मक स्थितियो का सीधा साक्षात्कार है। आज की कविता मे यह 'अधेरा' एक आद्यरूप या 'आरकिटाइप' की तरह प्रयुक्त हो रहा है जो राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय क्षत्रो म अपनी भिन्न आयामी उपस्थिति दर्ज कर रहा है।

समकालीन युवा कवियो की भिन्न रचनाशीलता को ध्यान म रखकर एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर सकेत जरूरी है। इधर की कविता म एक मुख्य प्रवृत्ति जो अपना विकास कर रही है वह है सृजनशीलता का 'सहज' सवेदनीय रूप जिसम 'कथ्य' को सहज एव आम रूपाकारो क द्वारा व्यक्त किया जाता ह। दूसरे शब्दो मे यह 'सहजता' भाषा के स्तर पर भी लक्षित होती है जिसम लोकधर्मी रूपाकारो और आशयो का रचनात्मक सदर्भ सामान्यत प्राप्त होता है। यही कारण है कि सामान्य रूप से आज का युवा अपने सोच-सवेदन को अकृत्रिम सहज सवदनीय रूपो मे रखता है और व्यर्थ की जटिलताओ से दूर रहता है। इस दृष्टि से शैलेन्द्र चौहान, गोविंद माथुर, बोधिसत्व, अश्विनी पाराशर, अनिल श्रीवास्तव, कृष्ण कल्पित, नीलाभ, अनिल गगल, हमत शेष विनोद कुमार श्रीवास्तव तथा सजीव मिश्र आदि कवियो की एक लम्बी पक्ति है जो सहज सवेदना के कवि है। यही कारण है कि शैलेन्द्र चौहान जैसे कवियो म "जीने की वजह/एक होती है/सहजता" (जीने की वजह) तो दूसरी ओर अनिल चौरसिया का यह कथन कि "सही कविता/छाँट लेती है/आदमीपन/आदमी मे से" ऐसे कथन आदमीपन और सहजता के रिश्ते को सकेतित करते है। युवा कवियो की मानसिकता ऐसी ही भिन्न आयामी 'सहजता' की ओर उन्मुख है जो यथार्थ-सवेदना के तकलीफदेह और सघर्षमूलक स्थितियो से सीधे टकरा रहे है।

काव्य-सृजन को लेकर युवा कवि की अपनी मान्यताए है जो परपरा और आज के द्वन्द्व को साकार करती है। आज का युवा कवि कविता को सीमित दायरो से ऊपर उठाने का पक्षधर है और मात्र शुद्धतावादी काव्यशास्त्रीय प्रतिमानो को नकारता है।यह एक सत्य है कि आज की रचनाशीलता को मात्र काव्यशास्त्रीय आधारो से पूरी तरह विवेचित-मूल्यांकित नही किया जा सकता है। यह स्थिति नरेन्द्र निर्मल की

एक कविता व्यक्त करता है दरअसल उन्हें/कविता की जगह/ एक नर्म शरीर चाहिए/भरा हुआ गुदाज/जब कविता तकलीफदेह और सघर्ष के साथ होती है/वे पुराने औजारों की प्रासंगिकता पर/बात करते है/वाद विवाद में नाद करते है/जब तक वे/अपने समय की कविता तक पहुचते है/कविता उनमें बहुत आगे जा चुकी होती है/बहुत आगे('अपने समय से आगे कविता निर्मल)

इसी कविता में लय सगीत नाद शब्द शक्तिया आदि को शुद्धतावादी करार दिया गया है जो सत्य का एकागी रूप है। परम्परा का महत्व उसकी गतिशीलता में है और परम्परा पूरी तरह से त्याज्य भी नहीं होती है। मुक्तछद हो या अन्य छद उसका प्राण है लय और नाद तत्व। मेरा यह मानना है कि बिना छद को समझे हम मुक्तछद का भी सार्थक प्रयोग नहीं कर सकते है। सामान्यत हमारा युवा कवि छद ज्ञान मे अनभिज्ञ होने के कारण मुक्तछद की गरिमा को भी दाव पर लगा रहा है। गद्यनुमा कविता जो इधर विकसित हो रही है उसका कारण बहुत कुछ छद के सही अर्थ को न समझने के कारण है। फिर भी कुछ कवि ऐसे है जो छद के प्रति सचेत है जैसे हेमत शेष अनिल गगल विनोद कुमार बोधिसत्व तथा कृष्ण कल्पित आदि और इनकी कविताओ से गुजरते हुए मुझे छद के लय तत्व का न्यूनाधिक समाहार प्राप्त होता है। हेमत की निम्न पंक्तिया इसका एक अच्छा उदाहरण है क्षण भर में कविताएँ/अतरिक्ष तक जा पहुचती है/ कर जाती है पल भर मे/पाताल के पानी का आचमन।('नींद में मोहनजोदड़ो पृ०७)

इसी सदर्भ मे एक बात और। आज की युवा कविता की भाषिक सरचना और उसका तेवर लोकधर्मी आशयो और रूपाकारो से अधिक सम्बन्धित है। यहाँ पर भाषा मात्र उपकरण या माध्यम नहीं है वरन् उसका सबध सीधे यथार्थ से है और यही कारण है कि भाषा और यथार्थ का रिश्ता सापेक्ष है दोनो का अतराल यहा लगभग गायब है। यह भाषा ठहराव की भाषा नही है वरन् गति की भाषा है। युवा कवियो की सवेदना मूलत सहज लोकधर्मी भाषा की ओर अधिक है और इसी कारण वे यथार्थ के बाह्य और आतरिक (राग तत्व) दोनो पक्षो मे भाषा के सहज लोकधर्मी रूप को ही अर्थ दे रहे है। समाज राजनीति तथा परिवार से सबधित कविताएँ सहज रूपाकारो को लेकर चलती है तो दूसरी ओर प्रकृति प्रेम तथा काल बोध की कविताएँ लोकधर्मी रूपाकारो को ही व्यापक अर्थ सदर्भो को व्यक्त करती है। हत्यारे सफेद घोड़ा अश्वमेध का घोड़ा शेर कैक्टस

तथा अधेरा आदि अनेक ऐसे रूपाकार हे जा आम जिंदगी से उठाए गए है और उन्हें व्यापक अर्थ-बोध प्रदान किया गया है। यही बात पारिवारिक बिम्बों (भाई,बहन, माँ, बच्चा आदि) के बारे मे भी सत्य है क्योंकि आज का युवा कवि पारिवारिक संबंधों को जो प्रतीकत्व और अर्थ प्रदान कर रहा है, वह अपने में एक महत्वपूर्ण घटना है। अनिल गगल, विनोद कुमार श्रीवास्तव, गोविंद माथुर, बोधिसत्य आदि अनेक ऐसे कवि हैं जो पारिवारिक बिम्बों को रागतत्व से जोड़कर सघर्ष और विक्षोभ की हल्की-पैनी रेखाएं उभारने में समर्थ हैं। इस सदर्भ में अनेक कविताएँ है, लेकिन मैं यहाँ पर एक दो कविताओं का जिक्र अवश्य करना चाहूंगा जो मेरे कथन को प्रमाणित कर सके। एक कविता है "बहने" जिसमें समस्त पारिवारिक विसंगतियों के बीच 'बहन' के प्रति एक ऐसा रागात्मक लगाव प्रकट होता है जो 'बहन' के भिन्न अर्थ सदर्भों को साकेतित करता है:-**जब सारी हिम्मत/सोख लेती है/पिता की थकी हुई बातें/दूर और दूर भागती हैं/मां की नाउम्मीद आँखे/भटकने के तमाम/टोटकों के बावजूद/घर लौटा लाती है/साँझ से धुँधलके में/टिमटिमाती हुई बहनें!** (विनोद कुमार श्रीवास्तव: पहल ४१)

एक अन्य बिम्ब है 'बच्चे' का। यह बिम्ब युवा कवियो को अत्यंत प्रिय है जो 'अस्मिता' की पहचान का प्रतीक तो है ही, इसी के साथ वह भिन्न अर्थ-संदर्भो का सांकेतिक वाहक है। यहाँ पर बच्चे की 'मासूमियत' है, उसके क्रिया व्यापार है, उसका अल्हड़पन है और इन सबके साथ उसका अर्थ-रूपांतरण भी है। गोविंद माथुर बच्चे के माध्यम से विद्रोह और शोषण को सांकेतिक अभिव्यक्ति देते हैः-"**धीरे धीरे/किताबों में/गुम हो गया वह बच्चा/उदास काली आंखों में/एक और रंग था/विद्रोह का रंग/टूट जाने और बिखर जाने का रंग/बच्चे खुश होते हैं/ बिल्ली को देखकर/बच्चे नहीं जानते/उनका दूध पी जाती है बिल्ली/**" (दीवारों के पार कितनी धूप पृ०१६)

यही स्थिति माँ, पिता, औरत आदि को लेकर भी है। घर के बिम्ब, प्रेम का रूप, मां-बच्चे बहन का अर्थ-रूपांतरण, सौदर्य का परिवर्तित रूप, स्त्री का मामूलीपन से सयुक्त सौदर्य-ये सभी रूपाकार आज की युवा कविता में राग, सघर्ष और विक्षोभ के 'घोल' को प्रस्तुत' करते हैं। दूसरे शब्दो में युवा कवि अत्यत सहज मामूलीपन की खूबसूरती (हेमत शेष) को ही व्यक्त करता है जो सौदर्य के नए प्रतिमान की अपेक्षा रखता है जहाँ वीभत्स व कुरूप भी 'सुंदर' हो जाता है जब वह रचनात्मक सदर्भ प्राप्त

करता है। कृष्ण कल्पित की ये पंक्तिया इसका एक सटीक उदाहरण है -**चट्टान की तरह सख्त खुरदुरे हाथो पर/पसीने की चमकदार बूँदो का/उगना देखों,/यह सहज सौंदर्य है।/** (बढ़ई का बेटा पृ०४९)

यहा पर यह बात ध्यान रखने की है कि उपर्युक्त सभी सदर्भ एकांतिक नही है और न व्यक्तिवादी या मात्र भाववादी वरन् यहाँ पर सवेदना को यथार्थ के स्तर पर गहराने की कोशिश है। इन कविताओ से गुजरते हुए मुझे लगातार यह महसूस होता रहा है कि ऊपर से रुक्ष कटु और कठोर लगने वाली आज की युवा कविता अदर से नर्म और राग तत्व से अछूती नही है। युवा कवियों का यह पक्ष क्षेत्रीय न होकर अतर्क्षेत्रीय है और इसी से उनका महत्व है। मै तो यहाँ तक कहूगा कि पूरी समकालीन कविता मे प्रकृति एव पारिवारिक बिम्बो के भिन्न आयामी अर्थ सदर्भ प्राप्त होते है जो हमे बलदेव वशी, रामविलास शर्मा, विनय, रणजीत आदि कवियो मे भी प्राप्त होते है। इन युवा कवियो ने इस प्रवृत्ति को विकसित ही किया है जो समकालीन कविता की एक मुख्य धारा है।

इसी के साथ युवा कविता राजनैतिक-सामाजिक आर्थिक स्थितियो के प्रति सवेदनशील है और "मुह बाए अधेरे" के खिलाफ सघर्षरत है। यह सघर्ष भावात्मक नही है वरन् तकलीफदेह त्रासद स्थितियो के प्रति एक ऐसी सजगता है जो परिवर्तन के लिए बेचैन है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया को बाधित करने वाला को कवि पूरी तरह से पहचानता है और उन्हे भीड से अलग करता है। वह जानता है कि **"बुरे काल का प्रेत हमारा पीछा कर रहा है"** (हेमत शेष), **"बहेलिए शिकारी/फैलाए है चारो ओर दुर्दान्त दस्यु बन"**(शैलेन्द्र चौहान) तथा **"इतिहास मे स्वर्ण अक्षरो मे लिखी गयी है। हत्यारो की गौरवगाथा** (गोविद माथुर) आदि अनेक ऐसे कथन है जो समग्र रूप से यह स्पष्ट करते है कि आज का कवि व्यवस्था और हत्यारो के सबध को जानता है। उसे यह भी भय है कि कही लोग इस "अधेरे" के तो अभ्यस्त नही होते जा रहे है(गोविद माथुर) जो आज की स्थिति का सही आकलन है। वह इसी 'अधेरे' के खिलाफ सघर्षरत है और रोशनी की एक किरण का खोजी है। वह 'सूरज को खेती उग आने का सपना" देखता है"(अनिल विभाकर)। इसी के साथ आज का युवा कवि युद्ध, आतक और बर्बरता के प्रति भी सचेत है और वह परोक्ष रूप से इसे अतर्राष्ट्रीय सदर्भ म भी देखता है। यही कारण ह कि आज के कुछ युवा कवि युद्ध और तानाशाही के सबध को एक विडम्बना के रूप मे देख रहे

है जिसे वे देश प्रेम और धर्म के नाम पर जनता के कमजोर कंधो पर ढोते है। इस पूरी दशा को कृष्ण कल्पित की निम्न पंक्तिया बखूबी संकेतित करती है`-युद्ध दो डरे हुए तानाशाहो का/आखिर हथियार होता है/जिसे वे देश प्रेम के नाम पर/जनता के/कमजोर कंधो पर ढोते हैं। (बढ़ई का बेटा, पृ० ५४)

यहाँ पर एक तथ्य की ओर संकेत करना चाहूँगा कि आज के कुछ युवा कवि अफ्रीका और लैटिन अमरीका के मुक्ति संघर्ष से प्रभावित है, व वहाँ के युवा कवियो के संघर्ष और उत्सर्ग से अपनी रचनात्मकता को 'अर्थ' दे रहे है। अनिल चौरसिया की कविता 'बेंजामिन मोलाइस' एक ऐसी ही कविता है। दक्षिण अफ्रीका के इस युवा कवि को गोरी सरकार न यातना भी दी और उसे फासी पर भी लटका दिया। इस प्रकार की कविताएँ यह तथ्य प्रकट करती है कि संघर्षरत कवि किसी न किसी स्तर पर उन संघर्ष शील शक्तियों के साथ है जो अन्याय, शोषण और आतंक का प्रतिकार कर रही है। इसी संदर्भ मे 'पहल' का महत्वपूर्ण अंक (१४) अफ्रीकी साहित्य पर केंद्रित है जो वहाँ के संघर्षशील साहित्य की भूमिका को प्रस्तुत करता है।

युवा कविता का एक पक्ष वह भी है जो चिंतन और वैचारिकता के आयामो को रचनात्मक संदर्भ दे रहा है। ऐसी कविताएं बहुत तो नहीं है, फिर भी इतनी अवश्य है जो संदर्भित करने योग्य हैं। मेरा अर्थ यह कदापि नहीं है कि अभी तक मैने जो संदर्भ उठाए है उनमे वैचारिकता नहीं है, वहाँ भी वैचारिकता का प्रच्छन्न रूप अवश्य है, लेकिन अब मे जिन कविताओ का संकेत करूँगा, उनमे वैचारिकता का भिन्न आयामी रूप अधिक प्रगाढ़ और गहरा है। मैं यहाँ पर केवल दो सदर्भ ही लेना चाहूँगा-एक कालबोध और दूसरा विजन-बोध जो युवा कवियों की रचनात्मकता को किसी न किसी रूप में "अर्थ" दे रहा है।

युवा कविता में काल का संघर्षगत रूप प्राप्त होता है जो 'गति' सापेक्ष है। यहाँ पर काल अमूर्त न होकर मूर्त है और उसका रूप चक्राकार भी है और रेखीय भी। काल का यह निरचयात्मक (डिटरमिनिज्म) और रेखीय-चक्राकार रूप युवा कविता के केन्द्र में है। यही नही वह शक्ति रूप भी है जिसके नियम अटल है और वह 'मृत्यु' का भी वाचक शब्द है। नरेन्द्र निर्मल का कहना है:-"काल-क्रम, गति नियम अटल है सब/लेकिन मोहभंग, मोह भंग/जब आता है काल तुरंग/स्वर्ग नहीं, नर्क नहीं, मोक्ष नहीं/है तो अब अंधियारी रातें / और काल चक्र। /(अपने समय

से आगे पृ०५६)

यहा पर काल को अँधियारी रातो स जोड़ा गया है तो दूसरी आर स्वर्ग मोक्ष की अवधारणाओ के प्रति सदेह किया गया है। हेमत शेष के लिए हर घटना के लिए निश्चित प्रक्रिया/और तयशुदा काल" है जो घटना और काल के सापेक्ष सबधो को रेखांकित करता है क्योंकि काल और इतिहास (इतिहास काल के अदर घटित होने वाला मानव इतिहास है) की अनुभूति इस घटनाक्रम के द्वारा ही होती है। यही कारण है कि इतिहास और काल का स्थितप्रज्ञ गवाह' नही हुआ जा सकता है क्योंकि काल गति मे है और दृष्टा को उसी के अनुसार गतियुक्त होना होगा। हेमत का प्रश्न है **सिर्फ मै ही क्यो होता हू/शोक ग्रस्त और व्यथित/क्यो न हो पाता काल जैसा अगम्य अनादि/नही बन पाता क्यो शानदार सभ्यताओ की/दारुण पराजय का स्थितप्रज्ञ गवाह।/** (नींद मे मोहनजोदड़ो पृ०४५)

यही कारण है कि रचनाकार इतिहास व काल का गतिशील गवाह होता है। मधुसूदन पण्ड्या काल क मात्र एक क्षण को अधिकार मे कर लेना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि मानते है **वक्त तो, ए दोस्त/बहुत बड़ी चीज है/एक क्षण को भी/यदि बद कर सको/अपनी फौलादी मुट्ठी मे/तब मै/उसे बड़ी उपलब्धि समझूँगा/** (पैबद लगे चेहरे सपादन पृ०२९)

दिक और काल सापेक्ष है और व्यक्ति दिककाल मे बधा हुआ है। दिककाल अनत है और इस रूप मे यह अनत भी व्यक्ति की सापेक्षता मे सीमित या अत का रूप होता है। दिक काल का यह अनत और असीम (अत) रूप व्यक्ति के अनुभव मे सीमित हो जाता है। इस पूरी स्थिति को सजीव मिश्र अत्यत संक्षिप्त रूप मे रचनात्मक सदर्भ देते है **सीमित है हम/दिक् काल मे बधे है/दिक् काल/अपने मे अनत है/जो अनत है/वे ही/हमारे अत है/**(कुछ शब्द जैसे मेज पृ०४३)

उपर्युक्त उदाहरण दिककाल के सापेक्ष रूप को व्यक्ति की सापेक्षता मे सकेतित करते है अथवा व्यक्ति क्षण या काल को अपने अनुभव बिम्बो के द्वारा व्यक्त करता है। विज्ञान भी दिककाल को सापेक्ष और सीमित मानता है तो दूसरी ओर उसे छोरहीन भी मानता है जो परोक्ष रूप से अनत का वाचक ही है। व्यक्ति की यह नियति है कि वह वृत्त की परिधि मे लगातार घूमता रहे। अरविद आझा ने गणित के रूपाकारो को लेकर इस तथ्य को रचनात्मक सदर्भ दिया है। त्रिज्या (वृत्त के मध्य बिदु या केन्द्र बिदु से परिधि

तक की दूरी) के स्थिर और गतिशील रूप के द्वारा जिस परिणाम की ओर संकेत किया गया है, वह है व्यक्ति का एक परिधि में परिक्रमा करना - **यह मेरी यात्रा नहीं/यह तुम्हारी यात्रा नहीं/यह एक वृत्त है/ मध्यबिंदु से निश्चित दूरी-त्रिज्या/ त्रिज्या का एक छोर स्थिर है/और दूसरा गतिमान/परिणाम/एक परिधि में घूमना!**/(यात्रा नहीं-गणित-उद्धृत युवा कवि-नए हस्ताक्षर म०बलदेव वंशी)

असल में, इस कविता का सौंदर्य उसी समय प्रकट होगा जब गणित रूपाकारों को सही प्रतीकात्मक संदर्भ प्रदान हो। ऐसी कविताएं कम ही है। हां, अश्विनी पाराशर की एक कविता जीवशास्त्रीय रूपाकारों (टैडपोल, जातक, शल्य क्रिया आदि) के द्वारा सृजन प्रक्रिया के त्रासद रूप को इस प्रकार व्यक्त करती है -**दिमाग क्या पूरा ऑपरेशन थियेटर/कभी कई टैंडपोल भी एक बच्चा नहीं बन पाते/कई बार एक बड़ा जातक/मेरी कलम की धार पर टंग कर/टेडपोल रह जाता है/कुछ बीजाण्ड फाइल में दबे पड़े है/शब्दों की यह शल्यक्रिया जारी है!**/(चौखट का दूसरा हिस्सा, पृ०८)

इस कविता को पूरी तरह से उसी समय समझा जा सकता है जब हम टैडपोल (मेंढक का पुच्छयुक्त आरंभिक बच्चा जो जातक में परिवर्तित होता है।) और जातक के पारिभाषिक अर्थ को समझते हों और इन शब्दों या रूपाकारों को कवि ने दिमागी शल्यक्रिया से जोड़कर सृजन प्रक्रिया को सांकेतिक रूप से व्यक्त किया है।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ कि युवा कविता में ऐसे उदाहरण कम है और इसका कारण, मेरी दृष्टि से भिन्न ज्ञान-क्षेत्रों के विचार साहित्य के मंथन का अभाव है। रचनाकार जब भिन्न आयामी अध्ययन-मनन करता है, तो वह उसकी चेतना को किसी न किसी सतर पर आंदोलित करता है। इससे 'संवेदना' का रूप व्यापक और अधिक अर्थगर्भित हो सकेगा जो सृजन को गतिशील कर सकेगा। युवा कविता (पूरी समकालीन कविता) के लिए यह ज़रूरी है क्योंकि इसके न होने पर रचनाकार नए संदर्भों को उठा नहीं सकेगा और हो सकता है वह 'पुनरावृत्ति' का शिकार हो जाए जो अनेक युवा कवियों में अक्सर नजर आता है। युवा कवियों में जो सहजता और संवेदना का रूप मिलता है, वह यह मांग करता है कि इस 'सहज'-संवेदना को व्यापक बनाया जाए और उसे चिंतन और संवेदना के अर्थगर्भित एवं मर्मस्पर्शी आयामों की ओर गतिशील किया जाए। ❑

सौंदर्य-बोध का वैज्ञानिक सन्दर्भ और कविता

सामान्य रूप से यह माना जाता है कि विज्ञान की प्रक्रिया साक्ष्या और प्रयोगो पर आधारित एक यांत्रिक प्रक्रिया है जिसमे सौन्दर्य बोध का प्रश्न ही नही है। यह धारणा आज का विज्ञान-दर्शन पूरी तरह से सत्य नहीं मानता है। यह एक सामान्य सत्य है कि प्रत्येक ज्ञानानुशासन मे सृजनात्मकता का न्यूनाधिक रूप प्राप्त होता है और जहॉ पर भी सृजन तत्त्व होगा,वहॉ सौदर्यबोध का कोई न कोई रूप अवश्य प्राप्त होगा। जब प्रत्येक ज्ञानानुशासन मे सृजन और सौदर्य का सापेक्ष सम्बन्ध है तब उनक मध्य 'सवाद' की दशाएँ भी अपेक्षित है। इन सवाद की दशाओ मे 'सौदर्य-दृष्टि' वह तत्त्व है जो अक्सर दो विलोम कहे जाने वाले अनुशासनो के मध्य सम्बन्ध-सेतु का काम कर सकता है और विज्ञान बोध और साहित्य सृजन ऐसे ही दो अनुशासन माने जाते है जिनके मध्य 'सवाद' की स्थितियाँ है जिनको रेखांकित करना इस आलेख का विषय है।

विज्ञान-दर्शन मे 'विश्लेषण' की भावना का सम्बन्ध सौन्दर्य की भावभूमि को सकेतित करता है। विज्ञान दर्शन मे विश्लेषण वह पूर्ण (होल) तत्त्व है जो अशो या घटको मे विभाजित हो सके और अपने सापेक्ष सम्बन्ध के द्वारा 'सम्पूर्ण' का व्यजक हो सके। यहॉ सम्पूर्ण और अश (क्षण घटना व्यक्ति भी) का सापेक्ष सम्बन्ध है, जो 'सरचना' की धारणा है जिसका प्रभाव साहित्य-सृजन पर भी पड़ा है। इस सम्बध को दखना ही

सौदर्य-दृष्टि की अपेक्षा रखता है। प्रसिद्ध विज्ञान दार्शनिक इडिंगटन का मत है कि 'ससार के सारे रूप-आकारो का अस्तित्त्व भिन्न घटको के आपसी सम्बन्धो पर आधारित है' (फिलॉसफी ऑफ फिजिकल साइस, पृष्ट १२०) इससे यह स्पष्ट होता है कि सरचना (कृति) म जितना कसाव एव गठन होगा, वह वस्तु उतनी ही सौदर्यवान होगी, अत 'विश्लेषण' मात्र विभाजन नही है वह सश्लेष भी है। यही स्थिति 'द्वन्द्वात्मकता' की भी है जो मात्र 'प्रतिवाद' एटीथीसिस ही नही है उसम सश्लेषण या सवाद भी है। यहाँ पर 'सृजन' की दृष्टि स एक बात यह है कि घटको का योग मात्र 'पूर्ण' नही है लेकिन 'सम्पूर्ण' उससे कही अधिक है। यही कारण है कि सृजन हो या विचार वह पूरी तरह से 'सम्पूर्ण' या यथार्थ का पकड़ नही पाता है लेकिन फिर भी वह 'उस तक' पहुँचने का लगातार प्रयत्न करता है क्योंकि इस प्रयत्न मे भी एक सृजनात्मक 'सौदर्य' है। यही ज्ञान का गतिशील रूप है जो सौदर्य सापेक्ष है। इस दृष्टि से पल, घटना, व्यक्ति आदि का महत्त्व इस बात मे निहित है कि इनके द्वारा यथार्थ का व्यापक अर्थवान सन्दर्भ कहाँ तक उजागर हुआ है? अणु म ब्रह्माड, पिण्ड मे ब्रह्माड तथा क्षण मे अनतता का बोध एक ऐसी सौदर्य-दृष्टि की अपेक्षा रखता है जो सापेक्ष-दर्शन के द्वारा ही सभव है। इस सौदर्य बोध मे रहस्य भावना का पुट भी होता है जो विराटता की अनुभूति स सम्बन्धित है। अज्ञेय मे असीम अणु अपनी रहस्यमयता को 'विराटता' (शक्ति) की सापेक्षता मे 'लोकेट' करता है और फिर 'उससे' एक हो जाता है:-

> एक असीम अणु
> उस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करता है
> अपने भीतर समा लेना चाहता है
> अपनी रहस्यमयता का पर्दा खोलकर
> उससे मिल जाना चाहता है,
> यही मेरा 'रहस्यवाद' है। (इत्यलम्)

यह विराटता हमे ऐतिहासिक बोध मे भी प्राप्त होती है जहाँ जीवाश्म एक दीर्घ ऐतिहासिक काल को सकेतित करते है-मुक्तिबोध की ये पंक्तियाँ देखे -

> पृथ्वी के हृदय की गरमी के द्वारा तब,
> मिट्टी के ढेर य चट्टान बन जाएँगी
> तो उन चट्टानो की

आतरिक परतो की सतहो पर
चित्र उभर आएँगे, हमारे चेहरे के
तन बदन के, शरीर के, (चॉद का मुँह टड़ा है)

यह विराटता की अनुभूति मात्र ब्रह्माडीय स्तर पर ही नही वरन् जागतिक एव मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी होती है। यह एक तरह से 'माइक्रोकाज्म' (लघु) और 'मैक्रोकाज्म' (विराट) का द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध है जो लघु के विविध रूपो के द्वारा सकेतिक होता है। विज्ञान बोध द्वारा प्राप्त यह सत्य हम सृजन को समझने मे एक नया आयाम देता है और साथ ही सौदर्य-बोध को एक नया परिप्रेक्ष्य। यही स्थिति हमे 'हीरो' (नायक-व्यक्ति) की धारणा म प्राप्त होती है जो मात्र व्यक्ति न रहकर जब एक समूह या वर्ग का प्रतीक बन जाता है, तब वह 'विराट' हो जाता है जैसे 'हारी' देवदास मार्क्स गाँधी आदि। यह प्रक्रिया हमे सृजन और विचार दानो क्षेत्रो मे प्राप्त होती है।

विज्ञान का सौदर्य बोध 'विवेकाश्रित' होता है जो विश्व एव प्रकृति का नियमबद्धता मे निहित है। ये नियम गत्यात्मक होते है और अपने सापेक्ष सतुलन के द्वारा प्रकृति एव विश्व की सरचनाओ का व्यक्त करते है। यही कारण है कि आइस्टीन इन सरचनाओ (घटनाओ) के पीछे एक समरसता के दर्शन करता है जो मेरी दृष्टि से, सौदर्य बोध को 'अर्थ' देता है। घटनाओ का यह ससार वैज्ञानिक को सप्रत्ययो और सिद्धातो के ससार मे ले जाता है, और इनके अन्वेषण मे वह 'आनन्द' ही प्राप्त नही करता है वरन् एक 'विवेकाश्रित सौदर्य' का अनुभव करता है। यह विवेकाश्रित सौदर्य साहित्य के लिए एक आवश्यक तत्त्व है जहाँ रचनाकार अपन विवेक एव सवेदन के द्वारा सौदर्य के 'अतिरंजित' रूपो से बच सकता है और साथ ही, कल्पना को सयमित भी कर सकता है। सौदर्य बोध मे कल्पना का अपना विशिष्ट स्थान है क्योकि रचनाकार कल्पना के द्वारा ही 'अनुभव-बिम्बो' को सृजनात्मक अथवत्ता दता है। यह 'अर्थवना' सौदर्य की सृष्टि करती है जा भिन्न ज्ञान क्षेत्रो मे किसी न किसी रूप म प्राप्त हाती है, लेकिन साहित्य-सृजन मे इसका रूप अधिक भास्वर एव क्रियात्मक होता है। विज्ञान के प्रत्यय एव विचार इस विवेकाश्रित सौदर्य बोध को नए क्षितिजो तथा नए रचनात्मक आयामा को ओर ले जा सकते है जिम प्रकार दर्शन, धर्म, इतिहास तथा राजनीति के प्रत्यय एव विचार। समकालीन

काव्य-सृजन म इसका सकेत यदाकदा मिलता है पर इतना सत्य है कि हमारे रचनाकार विज्ञान-बोध के इस रचनात्मक परिदृश्य क प्रति अभी उतने सजग नही है जो उनकी सौदर्य-दृष्टि को 'विद्युत्-चुम्बकीय तरगो' से आदोलित कर सके। फिर भी, ऐसी दृष्टि का सर्वथा अभाव नही है, वैज्ञानिक रूपाकारो, आशयो तथा विचारो के द्वारा आज का कवि यथार्थ के दश को या उसके किसी पक्ष को 'गहराने' का कार्य करता है। एक उदाहरण ल जहाँ वैज्ञानिक रूपाकारों द्वारा उस विक्षोभ की अभिव्यक्ति है जो सत्ताधीशों के शरीरागो को क्षत-विक्षत कर दे-

मेरी रगो मे दौड़ रही है लहू की जगह
द्रवीभूत टी० एन० टी०,
नहीं, कही नहीं है मेरा रिमोट कन्ट्रोल
मेरी खोपड़ी मे ही है उसकी नियत्रण- बेट्री
और मेरे कटिबन्ध मे लगा हुआ है
इसका सचालन-स्विच
जब कभी ये बटन दबेगा
सिद्धान्तहीन स्वार्थी सत्ताधीशो के शरीराग
क्षत-विक्षत होकर बिखर जाएगे। (रणजीत, मध्यान्तर-३)

अधिकतर कविया मे यही प्रवृत्ति है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक आशयो और विचारो को लेकर मेरे देखने मे कम ही कविताएँ है। कुछ 'यदाकदा है जैसे श्री नरेश मेहता की ये पंक्तियाँ जहाँ विस्तरणशील ब्रह्माड (दिक्विस्तार) का विचार पौराणिक-सवेदना मे 'घुलकर' आया है-

कौन है वह ?
जो सवत्सरो के इतिहासो को
पैराणिक बुनावट मे बुनकर
नए आकाशो के निर्माण मे
फैलता जा रहा है
फैलता ही जा रहा है। (नरेश महता)

यहाँ 'ही' का प्रयोग निरतर फैलत हुए ब्रह्माडीय दिक् का रूप है जो लगातार नीहारिकाआ के पीछे भागन म घटित हो रहा है। यही प्रवृति हमे विनय, बलदेववशी, जगदीश कुमार, विजय गुप्त, तथा विश्वभर नाथ उपाध्याय म भी अक्सर प्राप्त हाती है जा यह तथ्य प्रकट करती है कि आज

का कवि न्यूनाधिक रूप से विज्ञान-बोध क द्वारा अपने सृजन एव सौदर्य बोध को परोक्ष रूप मे गति और 'अर्थ' दे रहा है। प्रसगवश यहाँ मै डबल्यू इस्टवुड द्वारा सपादित "ए बुक ऑफ साइस वर्स" (मैकमिलन) का सकेत करना चाहूँगा, जिसमे शैली, मिल्टन, जॉन डोन, इलियट आदि कवियो की उन कविताओ का सकलन है जो वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई है। इस प्रवृति का विकास अभी यहाँ अपेक्षित है जिसका आरम्भ हो चुका है। (छायावाद से)

वैज्ञानिक दृष्टि से सौदर्य बोध 'विवेक' पर आश्रित होने के कारण परोक्षत ज्ञान-सापेक्ष है जिसे मुक्तिबोध ने सृजन के क्षेत्र मे 'ज्ञानात्मक-सवेदन' की सज्ञा दी है, इस सवेदना को रचनाकार अनुभव बिम्बो के द्वारा अभिव्यक्ति करता है। इस दृष्टि से सौदर्य-बोध मात्र वस्तुगत प्रक्रिया नही है, उसका सम्बन्ध दृष्टा या व्यक्ति-सापेक्ष है। आइस्टीन का सापेक्षवादी-दर्शन इस तथ्य को सम्मुख रखता है कि दिक्काल का अस्तित्व (या उनका बोध) दृष्टा सापेक्ष है। इसका अर्थ यह है कि दिक्काल उसी समय अर्थवत्ता प्राप्त करता है जब उसे दृष्टा द्वारा प्रत्यक्ष किया या 'अर्थ' दिया जाता है। सृजन के स्तर पर भी वस्तुगत यथार्थ और रचनाकार का सापेक्ष द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध है। यही द्वन्द्वात्मकता सृजन को, विचार को तथा चिन्तन को गति एव अर्थ देती है। यह द्वन्द्व प्रक्रिया मात्र प्रकृति मे ही नही, वरन् इतिहास की प्रक्रिया मे भी व्याप्त है, यही नहीं, वह मानवीय अतर्मन मे भी क्रियाशील है। यहाँ पर भी वह सापेक्ष है, निरपेक्ष नही, इससे यह भी सकेतित होता है कि सृजन और द्वन्द्व प्रक्रिया का सापेक्ष सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध के विस्तार और उसकी गहनता की सापेक्षता मे सौदर्य बोध का विस्तार होता है और उसमे गहनता भी आती है।

इस दृष्टि से, वैज्ञानिक सौदर्य-बोध के द्वारा हम साहित्य-सृजन की प्रक्रिया को समझ ही नहीं सकते है, वरन् दोनो के अत सवाद को एक गहरे स्तर पर अनुभव कर सकते है। सृजन और सौदर्य के महत्त्व को ध्यान मे रखकर प्रसिद्ध भौतिकीविद् फाइनमैन ने अपने निबन्ध 'विज्ञान के मूल्य' (VAUES OF SCIENCE) मे 'विज्ञान के गीत' गाने का आवाहन किया है। उसका कहना है कि "जब हम किसी रहस्य या कौध से बारबार साक्षात्कार करते है। तब हम किसी समस्या को, किसी सत्य को गहरे अनुभव करते है। जैसे-जैसे हम ज्ञान की गहनता मे प्रवेश करते है,

वैसे वैसे ही आश्चर्यजनक रहस्य प्रकट होते है। कवि या कलाकार इन आश्चर्यो का क्या नही गाते? विज्ञान के ये 'मूल्य' कवियो और गायको द्वारा अनगाए हो रह गए। इस पूरे कथन मे एक वैज्ञानिक की वह व्यथा है जो विज्ञान के गीत गान के अभाव मे है तो दूसरी ओर उस सौदर्य की माग मे है जो अपने मे नवीन और 'अर्थवान्' है। यह तभी सभव है जब हम अपने सृजनात्मक सौदर्य बोध को आद्यबिम्बात्मक जकड़न से मुक्त करे क्योकि आज सौदर्य मात्र भावात्मक नही रह गया है वह मात्र आनन्द का ही रूप नही है वरन् उसका सम्बन्ध त्रासद एव विडम्बित स्थितियो से भी है। यही नही उसका सम्बन्ध ज्ञानात्मक सवेदन से है जिसमे विचारो का रचनात्मक सौदर्य प्राप्त होता है। इस दृष्टि से जो असुन्दर है विडम्बित और त्रासद है वह भी हमारे सौदर्य बोध का विषय है यदि वह सृजनात्मक अर्थवत्ता को प्राप्त कर सके और साथ ही उसमे सरचनात्मक सौष्ठव का वह रूप प्राप्त हो जिसमे अशो का सह सम्बन्ध सरचना के अर्थगाभीर्य' को प्रकट कर सके। यदि गहराई से देखा जाय तो यह अर्थ' का विविध आयामी सस्कार जो सवेदना के धरातल पर रचनात्मक अर्थ प्राप्त करता है वह हमारे मनस् मे सौदर्य बोध की 'विद्युत-चुम्बकीय तरग उत्पन्न करता है जो मूलत एक वक्र या जटिल प्रक्रिया है।

❑

समकालीन कविता में विज्ञान-बोध का स्वरूप

काव्य की अनुभव प्रक्रिया गत्यात्मक और द्वन्द्वात्मक होती है जो यथार्थ और सत्य सापेक्ष है। आज के वैज्ञानिक युग मे यह अनुभव प्रक्रिया किसी न किसी रूप म वैज्ञानिक चिन्तन से टकरा रही है।यह दूसरी बात है कि वह कही धरातलीय है तो कही अपेक्षाकृत गहरी और व्यापक। यह रचनाकार की अर्न्तदृष्टि पर आधारित है कि वह ज्ञान और अनुभव को कहाँ तक सवेदनात्मक एव रचनात्मक सन्दर्भ द सका है? इसे यदि मै दूसरे शब्दा म कह ता वह विचार सवेदन के कितने आयामा को आत्मसात् कर उन्हे सृजनात्मक ऊर्जा प्रदान कर सका है? यहा पर मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि जिस प्रकार दर्शन धर्म समाजशास्त्र आदि अनुशासनो क आशया रूपाकारा को अनुभव बिम्बा के द्वारा रचनात्मक सन्दर्भ दिया जाता रहा है क्या उसी तरह वैज्ञानिक प्रस्थापनाआ और विचारा को रचनात्मक सन्दर्भ नही दिया जा सकता है? शर्त है तो केवल यह कि काव्य की रचनात्मकता म इन विचारा और प्रस्थापनाआ का सवेदनात्मक रूपान्तरण इस प्रकार का हो कि वह काव्य और साहित्य की अपनी 'वस्तु' बन जाए क्योंकि यह मेरा मानना है कि काव्य के लिए कोई भी अनुभव और ज्ञान अजनबी या हाशिए की वस्तु नही है।

काव्य के सन्दर्भ मे विज्ञान दृष्टि या विज्ञान बोध का अर्थ यह कदापि नही है कि वैज्ञानिक सिद्धान्ता और प्रस्थापनाआ को उसी प्रकार प्रस्तुत करना जैसी कि व है वरन् इसके विपरीत वैज्ञानिक विचारा का जो मानवीय चतना की द्वन्द्वात्मकता म प्रभाव पड़ता है उस बिम्बा और

रूपाकारों के द्वारा इस प्रकार व्यक्त करना कि वे मानवीय अस्मिता मानव और प्रकृति मानव और ब्रह्माण्ड तथा मानवीय संघर्षो और सम्बन्धों को 'अर्थ' दे सके। 'अर्थ' देने की यह सतत प्रक्रिया रचनाकार की गतिशीलता का परिचायक है। इसे ही मै काव्य की रचना-दृष्टि कहता हूँ।

यहॉ पर मै विज्ञान के दो रूपो का संकेत करना चाहूँगा जिनका सम्बन्ध मानव क्रिया और अस्मिता से है। जब भी हम 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग करते है, हमारे सामने उसका तकनीकी पक्ष उभर कर सामने आता है। बट्रेण्ड रसेल ने विज्ञान के इस पक्ष को 'शक्तिमूल्य' कहा है, जो एक ओर मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो दूसरी ओर व्यक्ति और राजतन्त्र को निरकुशता की ओर ले जाता है। विज्ञान का दूसरा पक्ष उसका वैचारिक पक्ष है, जिसे रसल 'प्रेम मूल्य' कहता है। वह कहता है कि विज्ञान-बोध का यह मनोभाव 'प्रेम' का मनोभाव है जो किसी 'वस्तु' का ज्ञान इसलिए प्राप्त करना चाहता है कि उसका वस्तु के प्रति एक तटस्थ प्रमाभाव है'[1]। इस प्रेम-ज्ञान के द्वारा हम प्रिय का अनुभव प्राप्त करते हे और जगत्, ब्रह्माण्ड और मानवीय विकास के रहस्यो से क्रमश अवगत होते है। इस प्रकार हमारी वैचारिकता गतिशील और हमारी सवेदना व्यापक और गहरी होती है, जो रचनात्मकता की एक महत्त्वपूर्ण माँग है। रचनात्मकता के सन्दर्भ में विज्ञान-बोध हमे नए विषयो और नई दृष्टियो की ओर ले जाता है, जिसका गहरा सम्बन्ध मानवीय अस्मिता से है, जैसा कि विजेन्द्र की ये पंक्तियाँ परोक्षत संकेत करती है-

> तुमने मुझसे कहा
> कविता का विषय बदलो
> कविता आदमी को खोजती है
> यह पहचान
> आज बहुत जरूरी है।
>
> (वर्तमान साहित्य, अक १२, वर्ष २)

इसके विपरीत विज्ञान के तकनीकी पक्ष का भयकर विकास हुआ है, उससे मानवीय एव ब्राह्माण्डीय अस्तित्व का सकट ही सामने आ रहा है और समकालीन कविता इस सकट के प्रति सजग है। असल मे, विज्ञान का तकनीकी पक्ष इतना हावी हो गया है कि विज्ञान का प्रेम-वैचारिक पक्ष

१- वैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि, बरट्रेण्ड रसेल, पृ० १५ (अनूदित)

पृष्ठभूमि मे चला गया है जा हमारी प्रगति का एक नकारात्मक पक्ष है। आज की कविता मे यह नकारात्मक पक्ष बार-बार व्यक्त हो रहा है। नरेन्द्र पुण्डरीक इसी 'सकट' के प्रति सजग है -

लगभग तय हो चुका है
एक न एक दिन जरूर
किसी कम्प्यूटर की गलती से
वैज्ञानिक की भूल से
तकनीकी गड़बड़ी से
एक भयकर धमाके के साथ
लाशो मे बदल जाएगे लोग।

और अन्त मे, कविता यहाँ आकर समाप्त होती है, जो भावी आशका का एक तार्किक रूप है-

यह पृथ्वी
एकाएक पहुँच जाएगी
पाँच हजार साल पीछे
वहाँ
जहाँ से शुरू की थी अपनी यात्रा।
(समकालीन सृजन, प्रथम अक, मार्च ८८)

समकालीन कविता के सन्दर्भ में वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि उसके वैचारिक पक्ष मे भी प्राप्त होती है, जो मेरे विचार से-विज्ञान-चिन्तन का महत्त्वपूर्ण घटक है। यदि गहराई से देखा जाये तो इसी पक्ष पर तकनीकी पक्ष का बहुमुखी विकास हुआ है। वैज्ञानिक पद्धति मे प्रेक्षण, प्रयोग और सत्यापन (वेरीफिकेशन) का अपना विशिष्ट स्थान है, क्योंकि इसी के द्वारा वैज्ञानिक-'सत्य' के निकट पहुँचता है। यह पद्धति क्रमश सामान्य से विशिष्ट की ओर अग्रसर होती है, जिसका फल है विश्लेषण और विशेषीकरण। उसके अपने खतरे भी है, क्योंकि अत्यधिक विशेषीकरण अक्सर 'सच्चाईयो के टुकड़ीकरण' पर अधिक बल देने लगता है, जिससे सत्य का जैविक रूप पृष्ठभूमि मे चला जाता है। डॉ॰ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय इस खतरे के प्रति सजग है, जब वे कहते है-

'आज विश्लेषण और विशेषीकरण
इस सीमा तक पहुँच चुका है कि

हरेक प्रयोगशाला मे
सच्चाईया का टुकड़ीकरण हो रहा है। (कबन्ध, पृ०८८)

आज का वैज्ञानिक-दर्शन इस खतरे के प्रति सजग है। इसी से अनेक विज्ञान दार्शनिक विश्लेषण और कार्य करण (यान्त्रिक) की अवधारणाओ को व्यापक सन्दर्भ दे रहे है। विज्ञान दर्शन म 'विश्लेषण' का एक व्यापक अर्थ है। किसी भी वस्तु का अनक 'अशा' मे विभाजित करना विश्लेषण-प्रक्रिया का एक अग है लेकिन विश्लेषण यही पूरा नही होता है, वह अशो के सापेक्ष सम्बन्ध म अन्तर्निहित है, जो पूर्ण की व्यञ्जना कर सके। इसका अर्थ यह हुआ कि 'अश' और 'पूर्ण' का सापेक्ष सम्बन्ध है, जैसा कि इडिगटन ने स्पष्ट किया है-'ससार के समस्त रूप प्रकार जो प्रत्यक्ष है, उनका अस्तित्व विभक्त अवयवा के आपसी सम्बन्धा मे निहित है'।[१] यहाँ विज्ञान का सरचनावाद है, जो समाजशास्त्र, नृविज्ञान (एन्थ्रापोलोजी) और साहित्य-समीक्षा म देखा जा सकता है। समाज-विज्ञानो और साहित्य मे इस सरचनावाद को यान्त्रिक रूप म ग्रहण किया गया, जिसमे 'अवयवों' (अशो) पर इतना बल दिया गया कि अवयवी (हाल) का अस्तित्व सकट म पड़ गया, यही स्थिति मानव-सन्दर्भ में भी प्राप्त होती है, जब कवि कहता है-

"शल्य-क्रिया मे व्यक्तित्व के
अणु अणु अलग कर
टटोलता है कि आदमी कहाँ है
अवयव मे या अवयवी म।
(शीतलहर वि० ना० उपाध्याय, पृ०१९)

इस विश्लेषण का एक सकारात्मक पक्ष है-क्षण, परमाणु, घटना, जीवाप्म, कोप, जीवाणु आदि सूक्ष्म इकाइयो का महत्त्व, जो भूत जगत् के अभिन्न अग है, जिन पर सृष्टि की सारी सरचना अवलम्बित है। सृजन के क्षेत्र म क्षण, परमाणु, घटना, काप का महत्त्व इस बात मे है कि रचनाकार उनके द्वारा विराट् और व्यापक सन्दर्भो को व्यञ्जित करता है। इस आणविक युग मे एक सेकेण्ड का सौवाँ हिस्सा मूलत 'अनन्तता' (इनफिन्टी) का द्योतक है, जो यह स्पष्ट करता है कि काल और क्षण का एक गहरा सम्बन्ध है, दार्शनिक शब्दावली मे कहे तो क्षण और अनन्त का सापेक्ष सम्बन्ध है, जैसा कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड मे। विज्ञान ने परमाणु की जो सरचना प्रदर्शित

१-फिलासाफी आफ फिजिकल साइस, आर्थर इडिंगटन पृ० १२२

की है वह उसके रहस्य को तो उद्घाटित करती ही है इसके साथ ही उसके 'विराट्' रूप को भी व्यक्त करती है जो सौर मण्डल की सरचना के समान है अन्तर केवल यह है कि परमाणु के इलेक्ट्रान अपनी कक्षा से दूसरी कक्षा मे छलाग मार सकते है, जबकि ग्रह ऐसा करने मे असमर्थ है। इस छलाग की स्थितिमे इलेक्ट्रान ऊर्जा के गुच्छ (क्वान्टम) उत्सर्जित करते है। यह तथ्य यह प्रकट करता है कि परमाणु मे ऊर्जा का भण्डार है। उसी ऊर्जा को बलदेव वशी परोक्षत सकेत करते है **'दहकते' और 'जहान'** शब्दो के द्वारा और वह भी प्रकृति-सौंदर्य वर्णत के तहत-

अणु-अणु मे दहकता-हिलता
बहते पानी के नीचे हिलता
यह कौन-सा जहान है?
(कही कोई आवाज नही, पृ०१०५)

यहाँ पर एक तथ्य की ओर सकेत आवश्यक है कि आज का कवि अणु और परमाणु को समान अर्थ मे (परमाणु के अर्थ मे) प्रयुक्त करता है, *जब कि वस्तुस्थिति यह है कि परमाणु और अणु मे अन्तर है। इस सन्दर्भ* मे डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय की सुन्दर कविता 'मै और मै' का जिक्र इसलिए करना चाहूँगा कि यह कविता परमाणुआ, कोशो (सेल्स) के महत्त्व को इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि रासलीला का आद्यरूप मुखर हो जाता है और दोनो के मध्य एक 'सवाद' होने लगता है-

परमाणुओ की रासलीला
नाभिक के पास नर्तनशील
विद्युत्-कणे की गोपियाँ।

तो दूसरी ओर कोश, कोशिकाओ और ऊतका (टिशू) का यह रूप-

मानव अस्तित्व के मूल मे है मथुरा
कोशिकाओ मे कृष्ण लीलारत है अहर्निश
ऊतको मे उधम मचा रहा है नटखट नन्दनन्दन
तब यह मनुज नरक क्यो रचता है?

द्वन्द्व दु ख, छिटक-छिटक कर दूर गिरते चले जाते है। फिर, कवि का यह कथन विज्ञान के सत्य को मानव सापेक्ष प्रस्तुत करता है-

यह वैकुण्ठी पूर्णिमा का महारास नही
यह तो अणु परमाणुआ की प्राकृतिक प्रवृत्ति

विचारो तो यह विज्ञान है।
मैं इस अविरल भारतीय रस-निष्पत्ति का
कब तक प्रतिरोध करूँ?

(मधुमती, जनवरी ९१, पृ० ७५)

यह लम्बी कविता 'मैं' के दो रूपों-अन्तर और वाह्य- के द्वन्द्व को यथार्थ-सघर्ष के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करती है और आज के 'सार्वभौमिक चीरहरण' को व्यापक अर्थ देती है। यह कविता वैज्ञानिक रूपाकारो और मिथकीय रूपाकारो के द्वन्द्व को रेखांकित करती है। यह द्वन्द्व ही इस कविता का सौन्दर्य है। डॉ० उपाध्याय की रचना-दृष्टि म विज्ञान-बोध का अपना विशिष्ट स्थान है और वे परमाणुओ की परिवर्तनशील 'भौतिकी' के प्रति सजग है, जो हाइजेनवर्ग के अनिश्चितता-सिद्धान्त की ओर सकेत करती है कि भौतिक सत्ताओ का सम्पूर्ण और अन्तिम रूप से वस्तुपरक अर्थनिर्णय नहीं किया जा सकता है[1]। वास्तव मे भौतिक सत्ताएं अव्यवस्थित है और कारणता के सिद्धान्त को पूरी तरह से नहीं मानती है। इस दृष्टि मे डॉ०उपाध्याय की यह पंक्ति महत्त्वपूर्ण है, जब वे एक कविता में कहते है-'भौतिकी वदल रही है परमाणुओ के प्रसिद्ध सयोजन को' (शीतलहर, पृ०५) तो परोक्षतः के क्वान्टम भौतिकी के उपर्युक्त प्रत्यय को ही रचनात्मक सन्दर्भ दे रहे है।

आज का वैज्ञानिक चिन्तन कार्य-कारण के यांत्रिक रूप को उस अर्थ मे सत्य नही मान रहा है, जो न्यूटन तथा गैलीलियो के समय मे था। क्वान्टम सिद्धान्त कारणता को निरपेक्ष महत्त्व नहीं देता है और मानवीय एव विश्व धरातल पर प्रत्येक घटना, सत्ता और क्रिया को कार्य-कारण की शृंखला से नहीं समझा जा सकता है। विनय के काव्य 'महाश्वेता' मे कार्य-करण की सीमा को रचनात्मक सन्दर्भ दिया गया है, जहाँ महाश्वेता का द्वन्द्व इस सत्य से जूझता है-

हर घटना सम्बद्ध हो किसी कारण से
और हम कारण को जान पाए-
अकारण भी हो सकता है कहीं कुछ

★ ★ ★

१-विज्ञान का दर्शन, डॉ० अजित कुमार सिन्हा, पृ० ८२

हम नही जान पाते है
ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण घटनाएँ
और न बिठा पाते है कार्य-कारण सम्बन्ध
सीमित सोच से।

(महाश्वेता, पृ०२६-२७)

यह सही है कि कार्य-कारण की सापेक्ष स्थिति है, लेकिन 'सीमित सोच' के द्वारा हम कार्य-कारण के यान्त्रिक रूप को ही समझ सकते है, उसके अयान्त्रिक रूप को नही।यही कारण है कि आज का विज्ञान-दर्शन कार्य-कारण के यान्त्रिक दृष्टिकोण के स्थान पर ज्ञान-मीमासात्मक उपपत्ति (इपिस्टिमालोजिकल हाइपोथीसिस) की ओर बढ़ रहा है, जो कारणता को अनेक स्थितियो मे प्रासंगिक नही मानता है। यह अनिश्चितता ब्रह्माण्ड और मानवीय स्थिति मे है, जिसे विज्ञान-दर्शन प्रतिपादित कर रहा है।

विज्ञान-दर्शन के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्माण्ड का प्रारूप मात्र यान्त्रिक नही है, वरन् ज्ञानमीमासात्मक स्थितियो पर आधारित है। सृष्टि-रहस्य का मूल है 'विकासवाद', जिसने शायद पहली बार मानव को, इस पृथ्वी को, ब्रह्माण्ड की सापेक्षता मे 'लोकेट' किया, वह भी प्रेक्षण तथा प्रयोग के द्वारा। विकासवाद और सापेक्षवाद दो ऐसी वैज्ञानिक स्थापनाएँ है, जिन्होने मानव और ब्रह्माण्ड के रिश्ते को और ब्रह्माण्ड की सरचना को नया अर्थ और सन्दर्भ दिया है। यह सन्दर्भ हमे आज की कविता मे यदा-कदा प्राप्त होता है, जो साकेतिक भी है और अपेक्षाकृत प्रत्यक्ष भी। यही कारण है कि विनय एक ओर ससार को 'विराट्' कहते है, तो दूसरी ओर 'आदमी' को, क्योंकि 'उसे अपने होने को करना था प्रमाणित' (पुनर्वास का दण्ड)। अस्तित्व को अर्थ देने की यह प्रक्रिया समस्त ज्ञानो का लक्ष्य है, अन्तर है कवल पद्धति और दृष्टि का। इसका रूप हमे विज्ञान मे भी प्राप्त होता है, क्योंकि मनुष्य की यह लगातार कोशिश है कि-

और मनुष्य
प्रकृति से सघर्ष
या अनुसन्धान की तरगो पर बढ़ती
एक कोशिश एक स्वप्न (पुनर्वास का दण्ड)

भौतिकी और नक्षत्रविद्या ने ब्रह्माण्ड का जो प्रारूप प्रस्तुत किया है, वह सृष्टि की विराटता को ही व्यक्त करता है और उसके उद्‌भव को

'पृष्ठभूमि पदार्थ' या कॉस्मिक एग या आदि-अण्ड से मानता है, जो वृहद तप्त हाइड्रोजन गैस का गोलाकार पिण्ड है, जिससे ग्रहो का जन्म हुआ है[1]। इस आदि-अण्ड को भारतीय दर्शन मे हिरण्यगर्भ कहा गया है, जिसमे इतिहास-पुरुष और कालपुरुष का प्रादुर्भाव हुआ, जो क्रमशः मानवीय सृष्टि और ब्रह्माण्ड-रचना का गत्यात्मक रूप है[2]। यह आदि-अण्ड सृष्टि का मूल तत्त्व है जो अपने को विभाजित कर ग्रहो आदि की रचना करता है-इसे वैज्ञानिको ने कॉस्मिक एग की सज्ञा दी है, जिसे विनय साकेतिक रूप से 'सर्पाकार कुडल' की सज्ञा देते है, जो अपने मे विभक्त हो रहा है-

एक सर्पाकार कुण्डल
धीरे से खुल रहा था हवाओ मे
और एक आरम्भ
द्वन्द्व को शक्ल देता हुआ
विभाजित हो रहा था
अपने ही खण्ड मे
(एक पुरुष और, पृ॰१३)

यहाँ सृष्टि का आरम्भ द्वन्द्वात्मक है, जो एक न खत्म होने वाली प्रक्रिया है; क्योंकि पृष्ठभूमि पदार्थ कभी समाप्त नहीं होता है। ब्रह्माण्ड की विराटता दिक्काल के चतुर्विमीय सांतत्य मे देखी जा सकती है, जो विस्तरणशील ब्रह्माण्ड (इक्सपेंडिंग यूनीवर्स) की धारणा का रूप है। ब्रह्माण्ड का यह निरन्तर विस्तार और उसका संकुचन एक दोलनशील विश्व का प्रारूप प्रस्तुत करता है। यह समस्त घटनाक्रम दिक् की विराटता में ही घटित होता है, जो विस्तरणशील गति-क्रम का सूचक है। इस सारी सृष्टि-प्रक्रिया को जगदीश कुमार पूरी वैज्ञानिक जानकारी के साथ रचनात्मक सन्दर्भ देते है, जो एक ब्रह्माण्डीय सौदर्य को व्यक्त करती है-

'मैं एक विस्तरणशील गति से
आकाश नापता रहा
जबकि कानो में मेरे
लगातार टकरा रही थी
चतुर्विस्तारात्मक आकाशीय अखण्डता की ध्वनियाँ।
(ऋच गुणा ऋण)

१-नेचर आफ यूनिवर्स; फ्रेड हॉयल, पृ॰ ६६।
२- काल-यात्रा, वासुदेव पोद्दार, पृ॰ २८

इस विराट 'दिक' (अन्तरिक्ष) मे ग्रह नक्षत्र न्यूट्रॉन तारे (पल्सर) नीहारिकाएँ क्वासर भिन्न प्रकार की तरग धूमकेतु कृष्ण विवर (ब्लैक होल) आदि का अस्तित्व माना गया है जो ब्रह्माण्ड के 'घटक' कहे जा सकते है तथा जो ब्रह्माण्डीय सरचना को सकलित करते है। आज के कुछ ही कविया न इन घटको को अपनी रचनात्मकता का माध्यम बनाया है। और उनके द्वारा मानवीय सम्बन्ध और सघर्ष की त्रासद स्थितियो का सकेत किया है। यहाँ पर इन घटको की प्रकृति का साकेतिक रूप भी प्राप्त होता है जो यह तथ्य प्रकट करता है कि बगैर 'वस्तु' को जाने और समझे उसका सही एव सार्थक प्रयोग सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने अपनी एक कविता म ब्लैक हाल को 'काले खन्दक' की सज्ञा दी है जिसम इतनी अधिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति हाती है कि वह अपने इर्द गिर्द के नक्षत्रो और वस्तुआ को निगल जाता है। कवि को ऐसी स्थिति मे सकट-बोध होता है और दूसरी ओर, शून्य (दिक) इतनी भारी और अवाङ्मय-

115927

'मेरे अन्तरिक्ष मे
काले काले खन्दक है
जो मेरी आशा के दीपक
नक्षत्रो को भकोस रहे है
मै उनकी अन्ध अतड़ियो मे
क्रमश पिसता पच रहा हूँ
अस्तित्व की चटख को सुन तो रहा हूँ
पर कहूँ कैसे ?
शून्य इतना भारी होगा,
इतना आवङ्मय
ऐसा न सोचा था'।

असल मे, विज्ञान का चिन्तन हमे क्रमश विराटता को अनुभूति देता है और हमारी 'दृष्टि' की सीमा की ओर सकेत करता है। जब तक यह 'अदेखी' सृष्टि रहेगी तब तक हम विराट् के स्पदन को कैसे महसूस नहीं करेगे? यह प्रश्न है डॉ॰ विनय का-

'जब तक मेरी दृष्टि की
सीमा मे आने वाले गोचर ब्रह्माण्ड से परे
एक अदेखी सृष्टि रहती है

तब तक यह कैसे हो
हम अपने म किसी
विराट का स्पन्दन महसूसना बन्द कर दं'।
(कई अन्तराल)

इसी 'विराट' ब्रह्माण्ड का एक अग है यह पृथ्वी और मानव जा अजैव स जैव (आरगैनिक) विकास की जटिल प्रक्रिया का फल है जिसम मानव नामधारी प्राणी मस्तिष्क सग्चना प्रजनन विधि आंगिक जटिलता आदि की दृष्टि से अन्य मानवतर प्राणिया से अधिक विकसित है। विकासवाद की यह स्थापना है कि जैसे जैसे विकास की गति आग वढ़ती है उसी अनुपात स जटिलताभा का क्रम विकसित होता है और मानव इस क्रम विकास का जटिलतम जैविक प्राणी है जा सगठन (आगनाइजशन) का उच्चतम रूप है'[1]। डॉ॰ देवराज ने इस जटिल मानव की कहानी का जिक्र करत हुए उसे तुहिन पिण्ड (आइस वर्ग) के द्वारा समझाया है

'धरती क मानव की जटिल कहानी
तुहिन पिण्ड का कुछ अश सतह पर। शेप अतल म
गहन-गूढ़ है दुस्तर '
(उपालम्भ पत्रिका तथा अन्य कविताएँ)

यहाँ पर मानव क 'रहस्य' का सकेत है, जिस विज्ञान उद्घाटित कर रहा है। डार्विन तथा जीव-विज्ञान दाशनिक हक्सले, हाल्डन आदि ने मानव को इस विशिष्टता का क्रम विकास क तहत रखांकित किया है और उसे हामोसैपियन्स और होमाइरक्ट्स (वानर) के आग की स्थिति माना है। डाविन न आदमी को बन्दर की औलाद स्वीकारा जिस पर एक व्यग्यात्मक प्रतिक्रिया कुमारेन्द्र पारसनाथ सिह की है-

'कितना अजीब है
कि आदमी बन्दर नहीं है
जाने क्या हो गया था डार्विन को भी

* * *

कि उसे अपना वालिद बन्दर ही नजर आया।
यह सोच कर तसल्ली कर गया है
कि जानवरा से वेहतर है

---

१ द यूनिटी एण्ड डाइवसिटी आफ लाइफ ज॰वी॰एस॰ हाल्डेन, पृ॰ ३८

दो पैरो के बल खड़ा है
नदी या पहाड़ लाघ सकता है।
(समकालीन सृजन अक १ पृ॰४४-४५)

यहाँ पर विकासवादी दृष्टि का सहारा लेकन मानवीय अर्थवत्ता के प्रश्न को उठाया गया है और साथ ही विकासवाद क प्रति एक व्यग्यात्मक प्रतिक्रिया है। कम रचनात्मक होने पर भी इस प्रतिक्रिया का अपना महत्त्व है।

इस जीवशास्त्रीय विकास क्रम मे जहाँ दो अगले पैरो की दो हाथो के रूप मे स्वतन्त्रता मानव की विशिष्टता है वहा मस्तिष्क का विशिष्ट विकास भी है जो भाषा (आखर) के क्रमिक प्रयोग करने मे समाहित है। इस तथ्य को विश्वनाथप्रसाद तिवारी 'माँ' के प्रति एक कविता म सुन्दार साकेतिक रूप प्रदान करते है

'उसने चार पैरो क एक नन्ह जानवर को
खड़ा किया है रीढ़ पर
आजाद किए है उसके हाथ
निविड़ अन्धकार ने दिया उसे
आखर अनन्त'। (आखर अनन्त पृ॰२९)

मानव विकास क्रम म होमोइरेक्टस (दो हाथ व रीढ़) से होमासैपियन्स और होमोपैसियन्स से होमासिम्बालिक्स (प्रतीक निर्माता या शब्द प्रयोगकर्ता) तक की यात्रा आज के मानव इतिहास की यात्रा है जिसे उपर्युक्त कविताएँ साकेतिक रूप से व्यक्त करती है। इन तथ्यो के प्रकाश म इन कविताओ का सौन्दर्य बढ़ जाता है। आज का सौन्दर्यबाध वैचारिक सवेदना पर आश्रित है, मात्र भावात्मक नही है।

समकालीन कविता क 'रूपाकारा' पर यदि विचार करे, तो हम पाते है कि ज्ञान के भिन्न क्षेत्रो से ये 'रूपाकार' (जो मूलत पारिभाषित शब्द है) कविता की सृजनात्मकता मे आए है जो रचनात्मक ऊर्जा के कारण 'साहित्य' के अपने रूपाकार हो गये है। इन रूपाकारो का जो विशिष्ट अर्थ उस ज्ञान-क्षेत्र मे है उसकी 'रक्षा' करते हुए रचनाकार उन्हे आज की जीवन स्थितियो से जोड़कर व्यापक अर्थविस्तार करता है। इसी अर्थ मे साहित्य का सौन्दर्य है। यही बात विज्ञान के बारे मे भी सत्य है, क्योंकि विज्ञान की भिन्न शाखाआ से (यथा भौतिकी गणित नक्षत्र विद्या प्राणिशास्त्र, पुरातत्त्व तथा वनस्पति विज्ञान आदि।) ऐसे 'रूपाकारा' को लिया गया है, जो

रचनात्मकता का नया आयाम और संवेदन देते है। ऐसे कुछ रूपाकार है, ब्लैक होल विकासक्रम दिक (अन्तरिक्ष) चतुर्विमात्मक ब्रह्माण्ड गति शल्यक्रिया ऊतक कोशिकाएँ बोनलिया(कीट) प्रक्षपास्त्र, रखा, वृत्त, कार्बनिक यौन विद्युतीकरण जीवाष्म, समीकरण अमीबा, टैडपोल आदि। आज की कविता म य शब्द न रहकर एक तरह स प्रतीक बन गये है और इन्ह प्रतीकत्व द रह है आज क कविगण। ब्लैक होल विकासक्रम, दिक्, गति जैस रूपाकारा का सकत ऊपर कर चुका हूँ। मै मात्र दा उदाहरण और देना चाहूगा-एक प्राणिशास्त्र स और एक गणित से। अश्विनी पाराशर ने सृजन-प्रक्रिया का शब्द की शल्यक्रिया कहा है और इस प्रक्रिया म मस्तिष्क एक 'ऑपरशन थियटर' है और उसम उपज 'टैडपाल' (मढ़क का आरम्भिक रूप, जिसम एक लम्बी पूँछ हाती है) और 'जातक' (मेढ़क का प्रौढ़ रूप) कभी क्रमश बच्चा नही बन पात है और कभी एक बड़ा जातक मात्र टैडपोल रह जाता है-

> 'दिमाग क्या पूरा ऑपरशन थियटर है
> कभी कई टैडपाल भी बच्चा नही बन पाते
> कई बार एक बड़ा जातक
> मेरी कलम की धार पर टग कर
> टैडपाल रह जाता है।'
>
> (चौखट का दूसरा हिस्सा, पृ० ८)

अब भी कवि की फाइल मे विकसित-अविकसित टैडपोल, बीजाण्ड पड़े है, जो निरन्तर सृजन-प्रक्रिया से गुजर रहे है और इस प्रकार शब्दो की यह शल्यक्रिया जारी है। यहाँ पर बीजाण्ड, टैडपोल और जातक का जीवशास्त्रीय रूप सुरक्षित है, जा सृजन-प्रक्रिया मे रूपाकार की तरह प्रयुक्त हुए है। इस प्रकार विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने 'बोनलिया' नामक एक कीट, जा मादा की यानि मे जन्मता, बढ़ता और अन्त मे वही अपने बीज छाड़ता, मर जाता है-के द्वारा आज की त्रासद आधुनिकता पर व्यग्य किया है *(शीतलहर पृ० ५६-५७)। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राणिशास्त्र* के ये जीव रचना-प्रक्रिया मे नये अर्थों की सृष्टि करते है। जब हम गणित की ओर आत है, ता मानवीय अनुभव क अनेक स्तरो पर गणित के सिद्धान्त नाकाम हो जाते है, जैसे गणित म एक+एक= दो होता है, पर मानवीय अनुभव म १+१= एक ही रहता है, जैस बूँद, समुद्र, गोपी आदि। दयाकृष्ण विजय की एक कविता इसी तथ्य को प्रस्तुत करती है-

'तब एक और एक दो नही
एक ही क्यो होता है
क्यो हो जाता है मिथ्या
गणित का सर्वमान्य सिद्धान्त'।
'होते ही समुद्र म विलीन
बूँद कब रहती है बूँद
वह तो समुद्र ही थी
समुद्र ही है
और समुद्र ही रहगी'।

(इन्द्रधनुप का आठवाँ रग पृ०१९)

यहाँ गणितीय रूपाकार के द्वारा अद्वैतभाव की व्यजना की गई है। एक दूसरे स्तर से बलदेव वशी हर भाव को एक 'वृत्त' की सज्ञा देते है, जा बिन्दुआ और रेखाओ के सघात से वृत्त मे बदल रही है, जो एक प्रकार से 'दर्द' को आकर दे रही है-

'यदि रेखागणित से देखे
तो हर भाव एक वृत्त है
क्रूरता की बिन्दुओ को काटती
जोड़ती हुई रेखा
वृत्त मे बदल रही है
अच्छा है दर्द आकार ले रहा है'।

(उपनगर मे वापसी, पृ०३१)

उपर्युक्त विवेचन से यह नितान्त स्पष्ट है कि आज का कवि अपनी रचना-दृष्टि को विज्ञान बोध के द्वारा व्यापक 'अर्थ' प्रदान करने की प्रक्रिया मे है, यह दूसरी बात है कि कोई इसे धरातलीय रूप म ले रहा है तो कोई गहन व्यापक अर्थ-सदर्भ मे। मैन छायावाद, स्वच्छन्दतावाद और नई कविता के कुछ कवियो (यथा प्रसाद पन्त अज्ञेय नरेश मेहता आदि) की रचनात्मकता मे यदा कदा विज्ञानबोध के रचनात्मक सन्दर्भ का रेखांकित किया है, जो भिन्न पत्र-पत्रिकाओ और मेरी पुस्तको मे सग्रहीत है। इनके आधार पर मै यह कह सकता हूँ कि वैज्ञानिक दृष्टि का एक क्रमिक विकासात्मक रूप हमे आधुनिक हिन्दी कविता की अनुभव-प्रक्रिया मे प्राप्त होता है, जिसके व्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता है, और यह लेख मुझे इस ओर प्रेरित करता है। ☐

[16]

समकालीन कविता में काल-बोध के आयाम

काल एक ऐसा प्रत्यय है जा सृजन के क्षेत्र में अनेक अनुभव-बिम्बों के द्वारा व्यक्त होता है और दूसरी ओर, काल एक ऐसी पूर्वधारणा है जो ब्रह्माड, प्रकृति और जगत को समझने मे सहायक होती है। रचनाकार काल का रूपातरण विचार-सवेदन तथा अनुभव-रूपाकारों के द्वारा करता है और इस दृष्टि म, वह अपने को 'एसर्ट' भी करता है और साथ ही, उससे अभिभूत भी होता है। इस दृष्टि से रचनाकार दो स्तरों पर काल से टकराता है-एक, काल के प्रत्ययात्मक रूप से और दूसरे, सृजन के स्तर पर अनुभव बिम्बों और रूपाकारो के द्वारा उसे 'रचनात्मक' अर्थवत्ता प्रदान करने में। यहा यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि बिना प्रत्यात्मक रूप के रचनाकार काल-दिक् को उसके जागतिक एवं ब्रह्मांडीय (तात्त्विक) रूपों मे शायद उचित सृजनात्मक अर्थवत्ता नहीं दे सकेगा। एक अन्य बात यह भी है कि दिक्-काल सापेक्ष है, और छोरहीन है। अतः काल के रचनात्मक और अवधारणात्मक रूपों मे 'दिक्' का सापेक्ष अन्तर्भाव रहता है। प्राचीन दर्शन और धर्म में काल को निरपेक्ष, अनंत माना गया, लेकिन विज्ञान मे काल-दिक् को सापेक्ष और रेखीय (लीनियर) माना गया। काल के इस आनुभविक रूप मे -स्मृति' का विशेष स्थान है क्योंकि स्मृति काल के परिदृश्य को पकड़ती है और वर्तमान के प्रतीति-बिंदु पर उसे रूपांतरित करती है। भाषा के क्षेत्र में भी दिक् और काल का संकेतन क्रिया (घटना), संज्ञा, सर्वनाम और वाक्य संयोजन में होता है [१]। इस प्रकार काल प्रत्यय सार्वभौमिक और सापेक्षिक है।

१ देखे मेरा लेख भाषा-चिंतन में दिक्-काल संकेतन (आलोचना ८१)

जहाँ तक सृजन और विचार का सम्बन्ध है काल के दो स्तर है-एक जागतिक और दूसरे पराजागतिक या अनत (सभावना भी)। ये दोनो स्तर एक दूसरे मे प्रवेश करते है। यह अन्तर्भेदन (इटरएक्शन) वह वर्तमान बिदु है जहाँ से रचनाकार अतीत और भविष्य को (अनत) एक सूत्र मे बाधता है। यह जागतिक या वर्तमान का प्रतीति बिदु (जिसे 'अनत अब' भी कहते है) वह आधारशिला है जहाँ से रचनाकार और विचारक अतीत और भावी को, अनत या सम्भावना को पकड़ने का प्रयत्न करता है। विज्ञान-दर्शन मे काल, गति और दृष्टा-सापेक्ष है और यह सृजन के स्तर पर भी सत्य है क्योंकि रचनाकार (व्यक्ति दृष्टा) काल की गति को अनुभव बिम्बो के द्वारा ही 'अर्थ' प्रदान करता है।

इस पृष्ठभूमि के सदर्भ मे समकालीन कविता को लिया जा सकता है। इस काल खण्ड की कविता के अनेक आयाम है जो काल-सर्जना को भिन्न रूपो मे व्यक्त करते है। इस समय की कविता का तेवर, नयी कविता से भिन्न है। यह आज की कविता की मुख्य धारा है जो नयी कविता की अत्यधिक चितनशीलता के स्थान पर यथार्थ के तीखे एव व्यग्यात्मक रूप को विचार-सवेदन के धरातल पर 'अर्थ' प्रदान कर रही है जिसमे राजनीति और समाज (आर्थिक भी) से सीधे टकराने की स्थितियाँ है। १९७५ के बाद कविता मे एक चेतनात्मक ठडेपन का एहसास है जिसमे 'सहजता' का आग्रह भी बढ़ता जा रहा है। कविता की यह मुख्य धारा अकविता, विद्रोही कविता, सघर्षशील कविता विचार कविता और ठोस कविता से होती हुई अपनी 'अस्मिता' को रेखांकित करती है। यह यथार्थ-बोध समाजशास्त्र, राजनीति,इतिहास और भौतिकवादी दर्शनो से अधिक प्रभावित होने के कारण दिक्-काल की प्रतीति मे वैचारिकता और यथार्थ के तीखे-विडम्बित रूप को व्यक्त करती है। असल मे, परिवर्तित काल बोध के कारण इधर की कविता मे भी बदलाव आया है जो एक ऐतिहासिक अनिवार्यता भी है। इस मुख्य धारा के अलावा अन्य धाराए भी है जो नयी कविता से सम्बन्धित है और स्वतत्र भी। इनमे तीखेपन का अभाव है और सवेदानात्मक सम्बन्धो की अनुभूति। यहाँ पर प्रकृति, प्रेम, अनत बोध ब्रह्माडीय रहस्यमयता की अनेक दशाए प्राप्त होती है जो काल के रहस्यमय रूप को, सघर्षशील जीवन के द्वन्द्व को, मानव सम्बन्धों के स्वतत्र एव सम्बधगत रूपो को, भिन्न अनुभव रूपाकारो के द्वारा व्यक्त करती है। इस वर्ग मे सघर्ष की मनोदशाए है, पर उतनी पैनी, तीखी, और आक्रामक नहीं जो हमे मुख्य

धारा म दिखाई दती है। अत हम कह सकते है कि नवम् और दशम् दशक की कविता म द्वन्द्व और सघर्ष का रूप समान है उसकी अन्विति और 'परिदृश्य' म अवश्य अन्तर है। इस पर परिदृश्य के कारण काल की प्रतीति वायावी नही हो पायी है वरन् वह यथार्थ और सवदना की ठास भूमि पर आधारित है। यहाँ पर कवि एक 'स्टड' लेता है जो सघपशील चतना का पक्षधर है। इस बिदु पर आज की कविता दशीय न हाकर अन्तर्देशीय या अन्तर्राष्ट्रीय है। यह तभी सम्भव हाता है जब रचनाकार काल के व्यापक सदर्भ का, उसक ऐतिहासिक परिदृश्य को आत्मसात् कर सके। इस दृष्टि से आज की कविता का विवेचन अपेक्षित है।

सबसे पहले काल के उस रूप का लना चाहूगा जा प्रतीति क स्तर पर उसकी 'स्वतत्र' अर्थवत्ता को सकतिक करती है तथा काल की अवधारणा से सम्बन्धित है। विज्ञान मे दिक् काल को 'राशि' क रूप मे ग्रहण किया गया है जिसक द्वारा हम घटनाओ और अतराला (दिक्) का मापन करते है।[१] राजीव सक्सना की यह पंक्ति 'काल एक सुविधा का माप है, हमारी गति का' जो काल के उपर्युक्त रूप को व्यक्त करती है और साथ ही, इस तथ्य को भी प्रकट करती है कि काल की प्रतीति 'दृष्टा' और 'गति' सापेक्ष है। व्यापक सदर्भ म, इस काल की गति को सृजन के स्तर पर अनेक 'रूपाकारों' के द्वारा व्यक्त किया जाता रहा है यथा नदी, धारा, प्रपात आदि जो गत्यात्मकता को सकेतित करते है। काल की यह गति चक्राकार भी (पुराण-धर्म) है और रखीय (विज्ञान)। बलदेव वशी ने काल की इस चक्राकार गति को अनेक रूपाकारा क द्वारा व्यक्त किया है। बलदेव न 'बीज' और धारा प्रवाह के आपसी रिश्ते के द्वारा काल के चक्रीय रूप को इस प्रकार सकेतित किया गया है–

समय के तेज प्रवाह मे
बरगद कही डूब गया है
मटियाले सैलाब मे
वह धरती म अपने बीज छिटका कर
मिट्टी की नींद सो गया है
दोबारा उगने के लिए चुपचाप
धारा म प्रवाहित हो गया है।
(कहीं कोई आवाज नही)

---

१ आइस्टाइन और ब्रह्माड, लिकन बारनेट (अनूदित), पृ० १७

यहाँ पर काल का चक्रीय रूप और उसकी गति को रूपाकारो के द्वारा व्यक्त किया गया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि काल एक शक्ति है, नियति रूप है जो पुराणो और महाकाव्यो (महाभारत और रामायण) मे वर्णित है।[1] काल के इस शक्ति एव गति रूप मे रचनाकार और विचारक टकराता है और इस प्रकार वह अपन समय के काल से सघर्ष करता है। काल का यह प्रक्रम (प्रोसेस) इतिहास क्रम भी है क्योंकि इतिहास (मानव का) काल के दीर्घ आयाम मे घटित होता है, इसी से, देवेन्द्र कुमार 'वक्त' के प्रक्रम मे कुछ कर गुजरने के पक्ष मे है

> वक्त से जो भी कर गुजरने से घबराता है
> इतिहास के घुड़दौड़ मे/वह केवल पीछे ही नही छूट जाता/
> बल्कि जूते मे कील सा/हमेशा हमेशा के लिए जड़ दिया जाता है।
> (बहस जरूरी है)

आज का व्यक्ति जिस माहौल मे सास ले रहा है उसमे शोषण और सघर्ष की स्थितियाँ उसे लगातार चुनौती दे रही है और उसके दो ही विकल्प है, या तो जूझिए अथवा पलायन कर जाइए। डॉ॰ विश्वभरनाथ उपाध्याय की निम्न पंक्तियाँ इस दशा को एक व्यग्यात्मक स्थिति मे प्रस्तुत करती है। उपाध्याय जी की कविता मे जो जुझारूपन, वैचारिकता और नए मुहावरे का समायोजन मिलता है, वह आज की कविता मे अपनी अलग पहचान बनाता है–

> जब तक समय है,
> सकट है
> वक्त के पार जाइए
> गुले-गुलजार हो जाइए।
> (घड़ी कविता से)

काल से टकराने और सघर्ष कराने की ऊर्जा मानव की नियति है और इसी से चाणक्य ने अपने ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' मे कहा है कि 'काल, देश और पौरुष मे 'पौरुष' सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि 'पौरुष' के द्वारा ही हम दिक्-काल पर अधिकार कर सकते है।'[2] इसे 'पौरुष-काल' भी कहा जा

---

१ स्टेडी ऑफ स्पेस एण्ड टाइम इन इडियन थॉट, के॰के॰ मण्डल, पृ॰ २१
२ स्टेडी ऑफ स्पेस एण्ड टाइम इन इडियन थॉट, के॰के॰ मण्डल, पृ॰ २५

सकता है जो सघर्षमूलक है। स्वतत्रता स पूर्व की कविता म 'पोरुष-काल' का अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि पराधीन जाति के लिए 'पौरुष' काल की अपनी अहम् भूमिका हाती है। ' आज की कविता म 'पौरुप काल' का रूप भ्रष्ट व्यवस्था शोपण और भूख के पति विराध म है। अत मानव 'रेत' (समय) पर जो भी 'लकीर' खीचता है उसके मिट जाने के भय म वह 'हादसे' स टकराना तो स्थगित नही कर सकता है। विनय इसी 'हादसे' को 'पौरुप-काल' की सापेक्षता मे इस प्रकार व्यक्त करते है-

रेत पर लकीरे खीच कर
इस डर स कि वे मिट जाएँगी
स्थगित नही किया जा सकता
किसी भी हादसे से टकराना
(कई अतराल)

उपर्युक्त काल की अवधारणा का एक रूप वह है जो व्यक्तिगत अनुभव बिम्बा के द्वारा काल क व्यापक सदर्भ को उजागर करता है जिसमे व्यक्ति और इतिहास (जा काल म घटित एक प्रक्रम है) की अस्मिता का एक गहरा सम्बन्ध प्राप्त होता है। इधर की कविता म यदा कदा काल की प्रतीति व्यक्ति और इतिहास की उपस्थिति क समानातर है। एसी स्थिति म व्यक्ति अपने का काल और इतिहास पर 'एसर्ट' करता है और इसी मे, देवन्द्र कुमार का 'साचना' ही दशकाल क लिए चुनौती बन गया है (बहस जरूरी है) तो दूसरी आर हेमत 'शाप' के लिए समय 'क्रूर उदाम/बेरहम मजाक की तरह खतरनाक' है (नींद म माहनजादड़ा) जो समय का महसूसने के भिन्न रूप है। हमत की कविता 'नींद म माहनजोदड़ो' काल और इतिहास का स्मृति बिम्बा क द्वारा पकड़ती है जिसम व्यक्ति की अस्मिता और इतिहास का द्वन्द्व है क्योकि व्यक्ति इतिहास और काल का मात्र स्थितप्रज्ञ 'गवाह' नहीं है

सिर्फ मै ही क्या होता हू
शाकग्रस्त और व्यथित

---

१ 'दस्तावेज' और 'समकालीन सृजन' पत्रिकाआ म मेरे लेख इस सन्दर्भ का प्रस्तुत करत है। लख का नाम है 'नवजागरणकालीन काव्य म दिक् काल सजना' (दस्तावज ४८) और 'प्रसाद काव्य और राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन' (समकालीन सृजन प्रसाद अक ३)

क्यो नही हो पाता काल जैसा
अगम्य अनादि
नही बन पाता क्यो शानदार सभ्यताओ की
दारुण पराजय का स्थितप्रज्ञ गवाह।
(नींद म मोहन जोदड़ो)

व्यक्ति और काल का यह द्वन्द्वात्मक रूप एक नितात सघर्षमूलक जुझारू रूप मे विश्वम्भरनाथ उपाध्याय की एक सुन्दर कविता 'हरिश्चन्द्र की मृत्यु' म प्राप्त होता है जहाँ कवि 'महाकाल' को एक 'दोलक' के रूप मे परिकल्पित करता है जो मानवेतर विज्ञान से लिया गया एक प्रतीक है। इस दोलक म व्यक्ति बधा हुआ है और दूसरी ओर प्रकृति के पहिए पर एक विराट पटटी चल रही है व्यक्ति की यह नियति है कि वह पटटी से बधे होने के कारण लगातार उसके साथ घूम रहा है पर अकेले नही किसी मित्र को फसा कर

बस बहो महाकाल के बोध नद पर बहते रहो
यह तो एक दूसरे मे गुँफित क्षणो का झूला है।
★ ★ ★
एक विराट पटटी चल रही है प्रकृति के पहिए पर
उस पर तुम बधे हो बधु अत घूमो घूमते रहो
और लता की तरह किसी मजबूत मित्र को
फसा कर घूमो घूमते रहो ।।

इस कविता मे आगे चलकर काल का शक्ति रूप मुखर होता है जो सृष्टि और मृत्यु के समीकरण को सतुलित रखता है और इसी से कवि 'कविता' के द्वारा उसे 'कीलित' भी करना चाहता है और उससे लोहा भी लेना चाहता है

बता तू, कविता का क्या कर लेगा
जो 'तुझे' कीलित करती है
★ ★ ★
तू बच नही सकता मरदूद
मै तेरे शिकार को शब्दो मे लेख दूगा
काल/ मै तुझे देख लूगा ।।
('हरिश्चन्द्र की मृत्यु' कविता से)

काल बोध के अन्तर्गत त्रिकाल या भूत, वर्तमान और भविष्य का अनुक्रम एक निरन्तरता-क्रम मे होता है। भाषा के स्तर पर भी त्रिकाल का सकेत क्रियापदो (था, है होगा) के द्वारा होता है और भाषा की सारी सरचना भूत-वर्तमान भविष्य को ही सकेतित करती है। भर्तृहरि ने त्रिकाल को काल का 'गुण' भी कहा है और काल की शक्तियाँ भी।[1] सृजन और विचार के लिए वर्तमान का प्रतीति बिंदु अत्यत आवश्यक है क्योंकि रचनाकार और विचारक इसी बिंदु से भूत और सभावना (भविष्य) को पकड़ने का प्रयत्न करता है अथवा उसे पुनर्घटित (भूत) और अनुमानित करता है (भविष्य)। इस पुनर्घटित की स्थिति मे स्मृति का विशेष स्थान है जो मनोवैज्ञानिक काल को चरितार्थ करती है। इस मनोवैज्ञानिक काल की 'गति' सदा 'सम' नही होती है, अनुभव मे काल कभी भारी होता है, कभी दूभर और गतिमान। स्मृति काल के परिदृश्य को पकड़ती है। स्मृति मात्र सग्रह नही करती,वरन् वह 'चयन' और पुनर्मूल्याकन के द्वारा भविष्य के परिदृश्य को भी बदलती है।[2] इस प्रकार स्मृति काल के विशिष्ट खण्ड का ग्रहण कर उसे वर्तमान और भविष्य के सन्दर्भो मे 'अर्थ' प्रदान करती है। सृजन-प्रक्रिया मे काल का घटनात्मक स्मृति-बोध तथा त्रिकाल का न्यूनाधिक समावेश रहता है। ये स्मृतिया, जो अचेतन मे एकत्र रहती है, किसी विशेष प्रतीति-बिन्दु पर चेतना के स्तर को आदोलित करती है और अभिव्यक्ति को (रूपाकार द्वारा) प्राप्त होती है। किशोर काबरा का काव्य 'नरो वा कुजरो वा' मे स्मृति-बिम्बो और काल-प्रवाह का एक ऐसा ही सापेक्ष सम्बन्ध है जो द्रोणाचार्य के जीवन मे घटित घटनाओ को वर्तमान प्रतीति बिंदु पर पुनर्घटित करता है। यहाँ पर उनकी स्थिर स्मृतिया गतिशील हो जाती है-

"कही कुछ दूर कुहरे मे
उलट कर रह गयी थी पुतलियाँ उनकी
सभी कुछ थम गया था, एक क्षण, दो क्षण, कई क्षण!"

यही नही, सत्य और 'युगमूल्य' भी 'क्षणो की चलनिया' से छनकर ही भावी पीढ़ियो के लिए प्रासगिक बनते है। द्रोणाचार्य की स्मृति मे घटित 'समय के दरबार' मे स्वय काल की यह उक्ति ले-

---

१ भर्तृहरि की वाक्यपदीय, अनु॰ डॉ॰ आर॰सी॰ द्विवेदी (पृ॰ ३७२)
२ सवत्सर, अज्ञेय, पृ॰ ४०-४२

फिर क्षणो की चलनिया से छानता है सत्य का

युग के सनातन मूल्य को

और उसका आकलन करके

नए जग की अनागत पीढ़ियो को सौपता है।

(नरो वा कुजरो वा)

समकालीन कविता मे वर्तमान का यह प्रतीति बिदु (क्षण) गति और स्थिरता के 'द्वन्द्व' को साकार करता है। यह प्रतीति विडम्बनाओ और विस्फोटक स्थितियो से जन्म लेती है जिसमे व्यक्ति की नियति शायद 'चिन्दी चिन्दी' हो जाने मे है। विनय ने क्षणो को सघर्ष से जोड़कर व्यक्ति की असहाय स्थिति का सकेतित किया है

कुछ क्षण शिला की तरह बैठ गए है

मेरे कधो पर

शायद कोई विस्फोट हो और मै

चिन्दी चिन्दी होकर बिखर जाऊँ।

(कई अतराल)

एक दूसरे कोण से नद चतुर्वेदी वर्तमान की एक ऐसी त्रासद स्थिति का सकेत करते है जिससे जिदगी और भविष्य को निकाला जाए-

अब समय आ गया है कि जहा भी हो

और जैसे भी हो

दातो के बीच जबड़ो मे, अतड़िया म

अपनी जिदगी और भविष्य को

निकाला जाए।

(यह समय मामूली नही)

भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ मे ये पक्तिया आज भी सत्य है। इस सारी दशा मे देवेन्द्र कुमार को यह लगना अस्वाभाविक नही है-'कि भविष्य एक ऊँची कुर्सी पर बैठा हुआ/मेरी कीमत लगा रहा है' (बहस जरूरी है)।

त्रिकाल का एक अन्य रूप है उसका क्रमागत रूप जा धारा के समान है। इसमे विचार पक्ष का सस्पर्श अधिक है।यहाँ पर काल का अग्रगामी रूप

या रेखीय रूप प्राप्त होता है। बलदव वशी के प्रसिद्ध काव्य 'आत्मदान' (अहल्या प्रसग) म त्रिकाल को एक धारा क रूप म सकेतित करते हुए उसकी सापेक्षता म वही शेष रहता है जो पुण्यमय है, सृष्टि का भावाफूल है

> अतीत वर्तमान भविष्य
> त्रिकाल एक धारा है
> और जो होता है श्रेष्ठ
> वह त्रिकाल-सापेक्ष
> नितात पुण्यमय, सृष्टि का भावफूल।
>
> (आत्मदान)

यहाँ काल की एक सकारात्मक अर्थवत्ता है जा मानव विकास और अस्तित्व मे गहरी जुड़ी हुई है। इस त्रिकाल धारा म अतीत और भविष्य का महत्त्व वर्तमान सापेक्ष है और यह दखना जरूरी है कि अतीत (मिथक) को आज की सापेक्षता मे ग्रहण करना हागा न कि रूढ़गत आस्थाआ के रूप म। शैलेश जैदी का यही मानना है -

> किन्तु आज, स्वप्ना की नीव कुछ टेढ़ी पड़ गयी है।
> मिथका को,
> रूढ़गत आस्थाओ स जाड़कर देखना
> अपने को धाखा देना है।
>
> *(सूरज एक सतीत्र)*

आज की कविता म दिक्-काल का वह जैविक रूप भी प्राप्त होता है जहाँ काल-दिक् सृष्टि सापेक्ष है। और इस स्थिति मे ब्रह्माड का रहस्यमय रूप (रहस्यवाद नहीं) सामन आता है। ब्रह्माड के प्रति यह रहस्य-भावना, आइस्टींन के अनुसार व्यक्ति का अनादि जिज्ञासा है जो धार्मिक मनाभाव के निकट है।[1] दिक्-काल की यह चतुर्विमीय अखण्डता (फोर डाइमनशिनल कांटिनुअम्) एक विराट सरचना है, इसके 'मौन' को तोड़ने का माध्यम हमारे पास क्या है? विश्वनाथ प्रसाद तिवारी इसका उत्तर सृजनात्मक स्तर पर देते है -

> वह (शब्द) एक विराट मौन को तोड़ता है
> क्या जरिया है हमार पास,

---

१ डॉ॰ आइस्टाइन और ब्रह्माड, लिंकन बारनेट, पृ॰ ११२ (अनूदित)

उस दिक् काल से जूझने का
जिसके बीच हम फेंक दिए गए है।
(बेहतर दुनिया के लिए)

यहाँ पर 'शब्द' वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति दिक्-काल से जूझता है और उसे 'रूपाकारों' द्वारा व्यंजित करता है। यही नही, रमेशचन्द्र शाह के लिए दिक्-काल की यह 'विराट' सरचना अपने 'गर्भ' मे आदमी को इसलिए धारण किए हुए है कि वह उसमे एक 'कब्र' बन जाए। (हरिश्चन्द्र आओ) क्या यह कथन परोक्ष रूप से उस वैज्ञानिक भविष्य-कथन को सकेतित नही करता है जब सहस्त्रो वर्षों बाद धरती आदि ग्रह सूर्य मे अन्तर्भूत हो जाएँगे? कवि की उपर्युक्त उक्ति विराट की सापेक्षता मे व्यक्ति के यातनामूलक सघर्ष और अस्तित्व को 'अर्थ' प्रदान करती है जो सामाजिक स्तर पर भी एक सत्य है।

ब्रह्माड की एक विराट रहस्मय अनुभूति नितात एक दूसरे स्तर पर प्राप्त होती है जो व्यक्ति की द्वन्द्वात्मक चेतना का एक ऐसा रूप है जो क्रमश दृश्य जगत की सापेक्षता मे अदृश्य या अनत की ओर जाने की एक स्वाभाविक अग्रगामी (चेतना की) स्थिति है। खगोल विज्ञान और भौतिकी के आविष्कार और उससे उद्भूत 'विज्ञान दर्शन' यह सोचने को विवश करता है कि व्यक्ति किसी न किसी स्तर पर विराट के स्पन्दन को अनुभव करता है यह उसकी 'चेतना' की सरचना मे ही अन्तर्भूत है। कुछ कुछ यही स्थिति विनय की है -

लेकिन जब तक मेरी दृष्टि की
सीमा मे आने वाले गोचर ब्रह्माड से परे
एक अदेखी सृष्टि रहती है
तब तक यह कैसे हो कि
हम अपने मे किसी
विराट का स्पन्दन महसूसना बद कर दे।
(कई अतराल)

यह विराट स्पन्दन एक ऐसा सत्य है जिसे विचारक, वैज्ञानिक और रचनाकार किसी न किसी स्तर पर अनुभूत करते है। यह ब्रह्माण्ड और हमारा सौरमण्डल दिक्-काल की चतुर्विमीय अखण्डता मे अस्तित्ववान है

और रचनाकार भाषिक रूपाकारों और विचार-संवेदन के आयामों द्वारा दिक्-काल को ही निर्बाधित करता है। समकालीन कविता (१९८०-९६) काल के विविध सर्जनात्मक रूपों को प्रस्तुत करती है जो उसके चक्रीय रेखीय रूपों को, उसके शक्ति और पौरुष सन्दर्भों को उसके एतिहासिक-संघर्षशील अर्थ को, त्रिकाल धारा के सन्दर्भ को तथा उसके रहस्यमय ब्रह्माडीय परिदृश्य को संकेतित करती है। यह सारा विवेचन इस बात को स्पष्ट करता है कि आज का कवि किसी न किसी रूप मे दिक्-काल की धारणा से टकरा रहा है और उसके विविध रूपों को रचनात्मक अर्थवत्ता दे रहा है। वह काल-सर्जना को यथार्थ और भौतिक धरातलों पर रूपायित कर रहा है और साथ ही काल के ब्रह्माडीय और अनंत रूप के प्रति सजग है जो विज्ञान और दर्शन द्वारा उद्घाटित ब्रह्माड रहस्य और संरचना को अर्थ दे रहा है।

❑

कविता और 'हमारे समय' का द्वन्द्व

"कविता और हमारे समय का द्वन्द्व" शीर्षक मे 'समय' शब्द काल के वर्तमान खण्ड से सम्बंधित है जो अपने मे निरपेक्ष प्रत्यय नही है क्योंकि वर्तमान का प्रतीति बिन्दु एक ओर अतीत से सम्बंधित है, तो दूसरी ओर सभावना या भविष्य से। अत "हमारा समय" के प्रयोग मे काल की त्रिकालिक निरतरता को एक सूत्र मे देखना जरूरी है क्योंकि ऐतिहासिक प्रक्रिया मे काल की गति रेखीय भी होती है और चक्राकार भी। मानव अपने 'समय' को अनुभव बिम्बो और रूपाकारो के द्वारा 'अर्थ' देता है और इस 'अर्थ' देने की प्रक्रिया मे वह अतीत या स्मृति के परिदृश्य को एक तरह से अपने समय की सापेक्षता म "लोकेट" करता है, तो दूसरी ओर, वर्तमान के प्रतीति बिन्दु पर खड़े होकर वह सभावना या भविष्य को सकेतित या प्रक्षेपित करता है। अत वर्तमान का प्रतीति बिन्दु रचनाकार और विचारक दोनो के लिए एक महत्वपूर्ण बिन्दु है जहाँ से वह काल के परिदृश्य को अपने अनुभव बिम्बो के द्वारा निर्धारित करना चाहता है। मै व्यक्तिगत रूप मे 'हमारे समय' को इसी अर्थ मे लेता हू। वह मात्र वर्तमान का फोटोग्राफिक चित्रण नही है और न घटनाओ प्रक्रियाओ का 'यथार्थमूलक' एव 'सवेदननाहीन' निस्सग चित्रण। इसका यह भी अर्थ नही कि घटनाओ का सृजन मे कोई महत्व नही है उनका महत्व काल को 'अर्थ' देने मे है, जिसमे अतीत या स्मृति का स्पन्दन भी है और भविष्यत् या सभावना का सकेतन। यह सभावना का सकेतन 'स्वप्न की सृष्टि करता है, व्यापक अर्थ

मे कहे तो वह आदर्श लाक या यूटोपिया की रचना करता है। मानव चेतना की प्रवृत्ति जहाँ एक ओर परचगामी (अतीत) होती है, वहीं वह अग्रगामी (सभावना) भी होती है। इसी परचगामिता और अग्रगामिता क द्वन्द्व एव सश्लेष से हमारा 'समय' आदोलित रहता है। यह 'समय' का वर्तमान बिन्दु स्थिर नही है, वह सदैव गतिशील रहता है, इसी मे घटनाए क्रियात्मक होती है। भाषा की सरचना म 'क्रिया' घटना का ही रूप है। अत 'समय' को हम जब भाषा मे बाधते है,तब एक तरह से हम क्रिया, सज्ञा, सर्वनाम आदि के द्वारा काल या समय का ही निबधन करते है। यही कारण है कि जब कोई रचनाकार अपने समय को रचनात्मक अर्थवत्ता दना चाहता है, तो वह भाषा के स्तर पर 'समय' का बाधता है। इस बाधने की प्रक्रिया म वह अतीत के बिम्बो, आद्यरूपा एव मिथको को अपने समय के साथ सवेदन के प्रकाश मे रूपातरित करता है, ता दूसरी आर, अपन समय पर मजबूती से पैर जमाकर वह सभावना का भदन करता है। शाषण से मुक्ति, स्वतत्रता की धारणा, समानता की आकाक्षा तथा ब्रह्माड की गहनता का अनुसधान-ये सभी तत्व एक तरह से 'सभावना' को ही अर्थ देते है। यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या कभी इन सभावनाओ को पूरी तरह से प्राप्त किया जा सकता है? शायद नही क्योंकि आप 'सभावना' के जितने निकट पहुचेंगे, वह सभावना (या आदर्श लोक) आपसे सापेक्ष स्थिति मे 'दूर' होती जाएगी। समय और मानवीय चेतना की प्रवृत्ति म ही यह अतर्निहित है कि वे हम संभावनाओ के लोक मे ले जाए। असल मे, यह चेतना की द्वन्द्वात्मक नियति ही है जो हमे मानव इतिहास की गत्यात्मकता मे दिखाई देती है। यदि हम आज की कविता के परिदृश्य को देखे तो हम सामान्य रूप से पाते है कि आज का कवि सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, तथा पारिवारिक सम्बन्धो के तकलीफदेह एव विडम्बनापूर्ण स्थितियो और अभिप्राया से सघर्षरत है। यह 'सघर्ष' क्यो है? इसके मूल मे परिवर्तन की आकाक्षा है, और यह आकाक्षा परोक्ष रूप से बेहतर भविष्य की कामना है। मेरे विचार मे यह पूरी जद्दोजहद बेमानी नही है इसके पीछे विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की यह उक्ति क्या काम नही कर रही है

आप जो भी पढ़ रहे है
या सुन रहे है मेरी कविताए इस वक्त,
आप जो भी सीच रहे है धानो क खेत
या कस रहे है ढील पुर्जे

आप जो भी जग साए दख रह है
वेहतर दुनिया क सपन
मवको नमस्कार।

(बेहतर दुनिया के लिए)

इस सघष का प्रक्रिया म बहुत कुछ 'ट्रैस' भी है असृजनात्मक भी हे लकिन इसका यह अर्थ नहा कि इनक आधार पर हम पूरी 'प्रक्रिया' का वमानी कह दे। इसम वहुत कुछ अथवान है जा सप्रेषण की माग करता है। यह सप्रषण उस प्रकार का साधारणीकरण नहीं हा सकता जा मध्यकाल की कविता का था यह सप्रषण वहुस्तरीय है तथा समूह या समुदाय म अलग अलग तरीके स सप्रपित हाता है। यही कारण है कि आज की कविता उस अथ मे सामान्य भावबाध की कविता नहीं है जा मध्यकाल की थी। आज का पाठक कविता को अपने विचार सवेदन क अनुकूल ग्रहण करता है वह स्वय कविता का स्वतत्र व्याख्याकार हाता है। यही कारण है कि आज की कविता अनक सामान्य समूहा क अन्तद्वन्द्व को भी अर्थ देती है। मध्यकाल के कन्द्र म 'दैवी आद्यरूप' था आज उसके स्थान पर 'मानव का विम्ब' कन्द्र म है। 'मानव' का केन्द्र म आना इतिहास की एक क्रांतिकारी घटना है जिसने हमारे साच को हमारी अवधारणाआ को तथा हमारी अस्मिता का एक नया सस्कार दिया। यह मानवीय स्वतत्रता का महत्वपूण जयघाप था जिसका परोक्ष फल यह हुआ कि सृजन की व्याख्या म भिन्न अथ सदर्भो का समावश हुआ वह एक 'सामान्य' और पारम्परिक अर्थ बोध की वस्तु नहीं रह गयी। अत तुलसी सूर या मीरा का साधारणीकरण जिस स्तर का था वह आज की कविता का नहीं हा सकता। मरे विचार से इसके पीछे एक अन्य कारण भी है वह है आज क कवि की सवेदना मे भिन्न ज्ञानानुशासना का ऐसा पराक्ष प्रभाव जा उसके अनुभव एव विचार क्षेत्र का व्यापक ही नहीं बनाता है वरन् उसकी रचनात्मक ऊर्जा को नए सदर्भों की ओर ले जाता है। इससे हुआ यह कि सप्रषण एव ग्रहण का स्तर एक सा नहीं रह गया जिसम क्रमश कविता के पारम्परिक 'आद्यरूप' को खंडित कर उसे मात्र भाव या सवेग का वाहक नहीं रहने दिया वरन् उसे विचार सवेदन के भिन्न आयामा स सम्बन्धित कर दिया। समकालीन कविता के सदर्भ म विचार सवेदन मूलत दा प्रकार की सरचनाआ म प्राप्त हो रहा है, एक सक्षिप्त मघन सरचनावाली रचनाएँ जैसे गजल गीत दाहा हायकू आदि तथा दूसरे दीर्घ अपक्षाकृत तरल सरचनावाली रचनाएँ जा

मूलत मुक्त छद के विविध रूपो मे देखी जा सकती है। अत आज की कविता के बारे मे यह कहना कि वह 'जनता' से दूर होती जा रही है, पूरी तरह से सच नही है। यह 'जनता' शब्द क्या है, क्या यह मात्र ग्रामीण या जनपदीय क्षेत्र का वाचक है या नगर और महानगर क्षेत्र का भी। असल मे जनता या आम आदमी शब्द को हमने सीमित कर दिया है, वह गाव, नगर और महानगर मे रहने वाले उस 'आदमी' का वाचक है जो इनके मध्य एक द्वन्द्व की स्थिति मे रह रहा है। यही कारण है कि आज की कविता जहाँ एक ओर नए आद्यरूपो प्रतीको और बिम्बो को ग्रहण करती है, वहीं वह लोकधर्मी आम रूपाकारो को भी रचनात्मक अर्थवत्ता देती है। इस 'जनता' मे शोषित वर्ग भी है मध्य वर्ग भी है, नारी शोषण भी है, यहाँ तक कि उच्च मध्य वर्ग भी है जिनकी आकाक्षाओ, इच्छाओ और सघर्ष को आज की कविता(साहित्य भी) भिन्न रूपो मे व्यक्त कर रही है। यही नहीं, आज की कविता उपभोक्तावाद, अपसस्कृति, हिसा, आतक, सम्प्रदायवाद, धर्मान्धाता तथा मूल्यहीन राजनीति पर व्यग्य, प्रहार, एव विक्षोभ से प्रतिक्रिया कर रही है जिसके मूल मे 'परिवर्तन' की आकाक्षा है, लेकिन पूरा परिवेश इस परिवर्तन की गति मे बाधा दे रहा है। हमारा समय इस स्थिति से जूझ रहा है और इस जूझने मे कविता और साहित्य परोक्ष रूप से या न्यूनाधिक रूप से हमारी चेतना को आदोलित कर रहे है, यह आंदोलन 'बेहतर भविष्य' के लिए है जो अधिकतर कथन के स्तर पर है। 'कर्म' के स्तर पर बहुत कम। वह बहुत कम ही शायद हमे आशा देता है कि हम बेहतर भविष्य का 'स्वप्न' देखे और विसगतियो से रचनात्मक स्तर पर सघर्ष करे।

आज का जीवन जटिलताओ और विसगतियो से इस कदर भरा हुआ है कि कवि या रचनाकार इनके मध्य 'सहज' नही रह पाता है, यही कारण है कि आज की कविताए ऊपर से कभी कभी बड़ी सहज सवेदनीय लगती है, लेकिन उस सहजता के नीचे विचारो, स्थितियो तथा घटनाओ का द्वन्द्व 'अडरकरेन्ट्स' की तरह प्रवाहित रहता है। ये 'अडरकरेन्ट्स' कभी कभी इतने तीखे एव विक्षोभ व्यग्य जनित होते है कि हमारे समय के बिम्ब को 'पारदर्शक' बना देते हैं। अक्सर आज के कवियों में 'सहज अंडरकरन्टीय द्वन्द्व' दिखाई देता है जो आस्वादन की एक विशेष स्थिति की माग करता है, वह उस अर्थ मे सामान्य बोध की दशा नहीं है, जो हमे भक्तिकाल मे प्राप्त होती है। पाकिस्तानी युवा कवि अफजाल अहमद की बयानी मे जिसे कविता की बयानी (पोएट्री आफ स्टेटमेन्ट्स) भी कह सकते है, उसकी

सहज बयानी म अन्डरकरेन्टस का यही रूप प्राप्त होता है जहाँ व्यक्ति विभाजित तो हो रहा है पर पूरी तरह से वह मौत स ही तकसीम होता है। कितनी गहरी व्यग्यात्मक स्थिति है जो सवेदना एव सोच को एक नया आयाम देती है - कविता है

मुझे फाका म तकसीम किया गया
मै कुछ न कुछ बच गया
मुझे तौहीन से तकसीम किया गया
मै कुछ न कुछ बच गया।
मुझे नाइन्साफी से तकसीम किया गया
मै कुछ न कुछ बच गया
मुझे मौत से तकसीम किया गया
मै पूरा पूरा तकसीम हो गया।

(अफजाल अहमद)

समकालीन कविता के व्यापक परिप्रेक्ष्य मे "मौत" से यह पूरा 'तकसीम' हो जाना व्यक्ति और परिवेशगत घटनाओ के द्वन्द्व का एक ऐसा बिम्ब है जो विविध रूपो मे रचनात्मक सदर्भ प्राप्त कर रहा है। इस सारे घटनाक्रम का कवि मात्र दृष्टा नहीं है वरन् वह किसी न किसी स्तर पर उसका भोक्ता भी है। यदि गहराई से देखा जाए तो यह दृष्टा एव 'भोक्ता' पूरी तरह से अलग नही किए जा सकते है, यह अवश्य हो सकता है कि किसी मे 'दृष्टा' का तत्व अधिक हो किसी मे भोक्ता का। इस घटनात्मक परिदृश्य मे एक रचनाकार लगातार द्वन्द्व एव सश्लेष करता है, लेकिन इस द्वन्द्व और सश्लेष मे वह हताश नही होता है, वरन् वह अपने को प्रदत्त घटनाक्रमो से 'बड़ा' मानता है। यह 'बडा' होने की प्रतीति रचनाकार को अतिक्रात करती है उसे बल और साहस देती है प्रदत्त यथार्थ के समानातर एक अपना समानातर यथार्थ रचने की। इसे चाहे तो व्यापक अर्थ मे 'फैन्तासी' भी कह सकते है जो यथार्थ की कठोर भूमि पर सापेक्ष सबंधित होती है। युवा कवि अनिल श्रीवास्तव (और भी कवि है) की निम्न पंक्तिया इस फन्तासी के सृजन को परोक्षत सकेतिक करती है-

प्रभामण्डलो से अनाक्रात
छोटे छोटे सुखा दुखो से खटता पिटता
मै सभी घटनाक्रमो से बड़ा हूँ

'हमारा समय' रचनाकार से यह माग करता है कि वह अपने को 'बड़ा' बनाए। यह ठीक है कि आज का कवि एक साधारण आदमी की तरह परिवार-समाज के दायित्वो को निभाते हुए कवि कर्म करता है (अपवाद भी है, पर कम), इस अर्थ मे वह कवि या रचनाकार होते हुए भी अन्य सबधो (माता, पिता, बहन आदि) का वाहक भी है उसका कवि कर्म इन सबधो से 'ऊर्जा' ग्रहण कर, एक तरह से अपने का 'बड़ा' बनाता है। इस प्रक्रिया मे वह थोड़ा ईमानदार और थोड़ा काईयॉ भी हो सकता है क्योंकि आज के मनुष्य की ऐसी ही विडम्बनापूर्ण स्थिति है। इसे कवि के सदर्भ मे देखना जरूरी है क्योंकि वह कोई निरपेक्ष प्राणी नही है, लेकिन वह ऐसा भी प्राणी नही है कि वह केवल इन्ही की अर्थवत्ता म चुक जाए। वह भाई, बहन, मॉ, पत्नी, बच्चा आदि रूपाकारो और प्रतीको को मात्र सबध के रूप मे न लेकर उनके द्वारा व्यापक मानवीय एव ब्रह्माडीय सरोकारो को 'रचनात्मक अर्थवत्ता' देता है, और यह प्रवृत्ति 'हमार समय' की एक ध्यान देने योग्य घटना है जो आज की कविता मे बहुतायात स देखी जा सकती है। यदि गहराई से देखा जाए तो ये पारिवारिक बिम्ब एक तरह के 'आद्यबिम्ब' है जो बार बार कवि के मनस (साइकी) को आदोलित करते है, ठीक उसी तरह जैसे मिथकीय आद्यरूप। यही कारण है कि आज की कविता मे ये दोनो प्रकार के रूपाकार (पारिवारिक एव मिथकीय) अपने समय के यथार्थ एव सोच को किसी न किसी रूप मे 'अर्थ' देते है। ये आद्यरूप या रूपाकार किसी न किसी स्तर पर हमारी जातीय अस्मिता के अग है और साथ ही, हमारी चेतना म स्मृति के व्यापक फलक को व्यजित करते है क्योंकि सृजन की प्रक्रिया मे 'स्मृति' का एक महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यही नहीं, स्मृति काल के परिदृश्य को सकेतित करती है, वह इतिहास और मिथक के विशाल भडार से उन पात्रों, घटनाओ और प्रसगो को निर्वाचित करती है जो उसके 'समय' के द्वन्द्व एव सोच को वाणी दे सके तथा 'सभावना' की ओर सकेत कर सके। यहॉ पर मै इस तथ्य को रखना चाहता हू कि आज का हमारा समय चाहे जितनी विचारधाराओ, धारणाआ तथा मतो-वादो से आदोलित क्यो न हो, वह किसी न किसी रूप मे इस जातीय-स्मृति से अलग नही हो सकता है, यही नही इस स्मृति के द्वारा वह विचार तथा सप्रत्ययों का रचनात्मक सदर्भ भी देता है और इन्हे 'अपने समय' की सापेक्षता मे अर्थ देता है। यह प्रवृत्ति आज के नए तथा पुराने दोनो तरह के कवियो मे न्यूनाधिक रूप स देखी जा सकती है जिसके विस्तार मे जाना

यहाँ सभव नहीं है क्योंकि यह विषय एक अन्य निबध की अपेक्षा रखता है। (इस विषय पर मैंने अपनी पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में यदा कदा लिखा है) इसका सकेत यहाँ इसलिए जरूरी था कि यह प्रवृत्ति परोक्ष रूप म हमारे समय के द्वन्द्व एव सोच का ही नहीं, वरन् हमारी रचनात्मकता को गति देती है।

जैसा कि मैं कह आया हू कि रचनाकार चाहे किसी भी वाद विचारधारा एव सिद्धाता स क्यों न प्रतिबद्ध हो वह किसी न किसी स्तर पर अपनी जातीय स्मृति स ऊर्जा ग्रहण करता है। इसका यह अथ नहीं है कि जातीय स्मृति एव सोच म विचारधारा और 'वादों' का कोई स्थान नहीं है। यदि गहराइ स देखा जाए तो मिथकों और आद्यरूपों के निर्वाचन और ट्रीटमेंट म युगानुकूल वैचारिक द्वन्द्व का समावेश रहता ही है क्योंकि उसके बगैर मिथक और आद्यरूप अपनी प्रासंगिकता सुरक्षित नहीं कर सकते। यहाँ पर एक तथ्य की ओर ध्यान जाता है कि विचारधारा को शायद पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि यथार्थ और सत्य के किसी न किसी पक्ष को य विचारधाराए 'अर्थ' देती है। अत आज अक्सर यह बात बड़े फख्र से कही जाती है कि रचनाकार किसी विचार स बधा नहीं है, यहाँ तक तो सब ठीक है लेकिन विचारधारा को नकारना सही नहीं है प्रत्येक विचारधारा स गुजरना जरूरी है उनके प्रगतिशील एव प्रासंगिक तत्वों का ग्रहण करना इसलिए जरूरी है कि उनके द्वारा क्रमश एक 'रचना दृष्टि' और 'मूल्य-दृष्टि' का विकास होता है। प्रतिबद्धता का अथ प्रतिबद्धता में तब्दील हो जाना प्रकारातर स बोध के स्तर को सीमित कर देना है और जब बोध का स्तर सीमित होगा, तो रचना का स्तर भी सीमित होगा। यह बोध का स्तर विचार निरपेक्ष नहीं है लेकिन यह कहना अधिक सार्थक होगा कि विचारों की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया म जोखिम भरी सवेदनाए और मनोवेग होते है जो क्रियात्मक होते है। यह क्रियात्मकता 'सृजन' को गति भी देती है और साथ ही, भिन्न अथ-सदर्भों को परिदृश्य खोलती है। विचार सवेदन को यह 'घाल' किसी भी घटना चरित्र परिवेश तथा चाक्षुस दृश्य म कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि य सभी घटक (पात्र घटनादि) विचार-सवेदन स स्फूर्ति प्राप्त कर अपनी जैविकता म अथ प्राप्त करते है। अत एक रचनाकार विविध सवेगो सवेदनाओ और वैचारिक अनुगूंजों की रासायनिक अभ्यातर प्रक्रिया स अपने सकल्प को आकार देता है जो उसकी 'रचना' है। सकल्प और सृजन का यह रिश्ता सापेक्ष है और विचार-सवेदन इस साधना में प्रेरक तत्व है।

यहा मे थाड़ा विचारधारा की भूमिका पर कहना चाहूँगा। काइ भी विचारधारा जब कवि या रचनाकार की सवदना का इमानदार नहीं रहने देती तो इसका क्या प्रभाव रचना और रचना दृष्टि पर पड़ता है। यह बात मात्र राजनीति क क्षेत्र म नही वरन् अन्य क्षेत्रा और अनुशासना क बारे म भी सत्य है। असल मे कवि की रचना दृष्टि म इनकी 'समझ' जरूरी है जा 'विवेकाश्रित चितन' के द्वारा ही सभव है। विचारधारा शब्द मात्र राजनैतिक क्षेत्र से जुड़ा शब्द नही है वरन् वह एक व्यापक मानवीय ज्ञान का वृहद् प्रत्यय है। प्रत्यक ज्ञानानुशासन की विचारधाराए सिद्धात और प्रत्यय निरपेक्ष न होकर उनम एक 'सवाद' की स्थिति भी हाती है। जब हम विचारधारा या सिद्धात का इस व्यापक परिप्रेक्ष्य म ले लेते है तो उसकी 'जकड़न' से हम मुक्त हाकर 'विचार' के गत्यात्मक रूप की आर बढ़ते है। यह 'विचार' का गत्यात्मक रूप विचारधाराआ के 'मथन' तथा उनक विवेक सम्मत 'लाकरान' म निहित है। सृजन के उत्तर पर विचार का यह गत्यात्मक रूप सृजन को गति ही नहा दता है वरन् सृजन को 'गरमाहट' दता है ऊष्मा प्रदान करता है और जब इमे हम मात्र 'हाथा पर महदी' सा रचाकार बैठ जाएँ, तो विचार की गतिशीलता म बाधा आती है। जनात्मन न इस पूरी स्थिति को इस प्रकार बिम्बात्मक रूप म प्रस्तुत किया है जो साकेतिक रूप स 'विचार' की भूमिका को सृजन क सदर्भ म पेश करती है

'हम विचार है/किताब म पड़े पड़
हम दीमक चाट जाती है
इसलिए हमने हर उस हाथ म उतर जाना चाहा
जिसकी छुअन से जरा भी हम
लगा कि यहाँ गरमाहट हा सकती है
हालांकि हम अदेशा था
पता नहीं कब कौन
रचाकर बैठ जाए हमे अपने हाथो म
महदी सा।

(जनात्मन)

विचार क इस गतिशील रूप का ध्यान म रखकर हम विचारा क विविध आयामा म साक्षात्कार ता करत ही है लकिन इसके साथ ही सृजन क स्तर पर हम उनकी रचनात्मक अर्थवत्ता का भी अनुभव करत है। यहाँ पर मै वैज्ञानिक विचारा क प्रभाव का इसलिए लना चाहता हू कि हम जिस

युग मे रह रहे है वह विज्ञान युग है और विज्ञान की प्रविधि तथा वैज्ञानिक विचारो ने मानव जीवन जगत और ब्रह्माड के प्रति हमारे बोध को व्यापक ही नही बनाया वरन् विवेकाश्रित व्याख्या के द्वारा हमारी परम्परा और विश्वासो को तर्कसम्मत आधार दिया है। हम जिसे वैज्ञानिक दृष्टि कहते है वह अभी हममे अशत ही विकसित हो रही है क्योंकि इस 'दृष्टि' को ग्रहण करने मे एक 'नए' सस्कार की जरूरत है जो विवेक के सही विकास पर आधारित है। यहाँ पर विज्ञान की अवधारणा का प्रश्न उठता है क्योंकि सामान्यत हम विज्ञान के तकनीकी पक्ष को ही विज्ञान मानते है, लेकिन विज्ञान का यह मात्र एक पक्ष है, वह 'सम्पूर्ण विज्ञान' नही है। इसमे कही अधिक महत्वपूर्ण विज्ञान का दूसरा पक्ष है जिसे बर्ट्रेन्ड रसेल विज्ञान का 'वैचारिक पक्ष' कहता है। यह एक तरह से विज्ञान का 'प्रेम मूल्य' है जो अन्वेषक और वस्तु के बीच एक रागात्मक सबध है। विज्ञान का तकनीकी पक्ष एक तरह से उसका 'शक्ति मूल्य' है जिसके द्वारा व्यक्ति, सत्ता और सस्था उसे अपने अधिकार मे या अपने हित मे या शक्ति अर्जन मे प्रयुक्त करती है। यदि सत्ता और व्यवस्था इसके द्वारा कल्याण का कार्य करती है तो परोक्षत वह भी इसके द्वारा शक्ति अर्जन का कार्य करती है। आज की कविता अधिकतर विज्ञान के इसी नकारात्मक पक्ष पर केंद्रित है और कवि की सवेदना उसके दुष्प्रभाव पर अधिक ठहरी हुई है जो मानव और पृथ्वी के अस्तित्व के प्रति एक सकट बोध से उत्पन्न मनोभाव है। प्रदूषण, भयावह यांत्रिक विकास, नए रोगो का बहुविध रूप तथा ऊर्जा के अनियंत्रित प्रयोग आदि हमे क्रमश सकट बोध की ओर ही ले जाते है जो एक 'दैत्य' के रूप मे हमारे सामने है। कवि इस सकट बोध को यदा कदा रचनात्मक सदर्भ देता है और यह पक्ष आज की कविता मे 'अर्थ' प्राप्त कर रहा है। इसका अजाम क्या होगा, यह तो भविष्य ही बताएगा, लेकिन यह एक सत्य है कि कवि और रचनाकार सदा से मानवीय अस्मिता की रक्षा के लिए किसी न किसी रूप मे सघर्षरत रहा है और आज भी वह यही कार्य सृजन के द्वारा कर रहा है।

अब विज्ञान के दूसरे महत्वपूर्ण पक्ष उसके वैचारिक या चिंतन पक्ष को ले, तो एक बात स्पष्ट लक्षित होती है कि यह पक्ष आज के काव्य बोध और अभिव्यक्ति मे अपेक्षाकृत कम है। रचनाकार जिस रूप मे इतिहास, दर्शन, समाजशास्त्र तथा राजनीति की ओर आकृष्ट होता है, उतना विज्ञान की ओर नही। इसका कारण 'विज्ञान-दर्शन' के प्रति रचनाकार का उदासीन

होना है। इसका शायद एक अन्य कारण यह बद्धमूल धारणा है कि विज्ञान और कविता एक दूसरे के विपरीत या विरोधी है लेकिन क्या विरोध का अर्थ यह है कि उनमे कोई सवाद' की दशाए नही है। प्रत्येक ज्ञान के क्षेत्र के मध्य यह सवाद होता है जो ज्ञान के अत अनुशासनीय रूप को समक्ष रखता है। एक वैज्ञानिक जब प्रयोग और प्रेक्षण के द्वारा किसी सत्य का साक्षात्कार करता है तो उसे एक तरह का 'बौद्धिक आनद प्राप्त होता है जो कलात्मक आनद से कम नही है। विज्ञान के सिद्धातो के पीछे कल्पना का रूप सयमित होता है जबकि कला और साहित्य मे कल्पना अधिक स्वतत्र होती है लेकिन कल्पना और सृजन दोनो मे है उनके रूप और अन्विति मे अतर होता है। जिस तरह एक कवि दार्शनिक सामाजिक और एतिहासिक प्रत्ययो और विचारो को रचनात्मक अर्थवत्ता दे सकता है तो वैज्ञानिक विचारो एव प्रत्ययो को क्या नही? इससे स्पष्ट है कि रचना दृष्टि मे वैज्ञानिक विचारो का योगदान हो सकता है और होता है। विज्ञान के दर्शन के अनेक आशय एव रूपाकार (यथा परमाणु सापेक्षवाद ऊर्जा विस्तरणशील ब्रह्माड गुरुत्वाकर्षण दिक काल सापेक्षता विकासवादी प्रत्यय जीवशास्त्रीय एव पुरातात्त्विक आशय आदि) कवि के मनस्' को कभी कभी आदोलित करते है और यह स्थिति हम यदा कदा आज की काव्य सर्जना मे दिखाई देती है। शर्त यह है कि ये आशय और रूपाकार कहाँ तक कवि की सवेदना को गहरा सके है अथवा कहा तक वे रचनात्मक अर्थवत्ता प्राप्त कर सके है? इसका यह अर्थ नही है कि वैज्ञानिक प्रत्ययो और सिद्धातो को काव्य मे उसी रूप मे लाया जाए वरन इन सिद्धातो और आशयो के अध्ययन मे एक व्यापक रचना-दृष्टि का विकास किया जाए।यह बात मात्र विज्ञान के लिए ही नही वरन अन्य ज्ञान क्षेत्रो के लिए भी सत्य है। यहाँ पर मै दो कविताओ का जिक्र करना चाहूगा जो वैज्ञानिक आशय एव प्रतीको को यथार्थ के सघर्षशील रूप से जोड़ती ही नहीं है वरन् एक जीव विज्ञानी के अनुसधान और सघर्ष को एक व्यापक मानवीय परिदृश्य प्रदान करता है। विजय गुप्त की लम्बी कविता हेलो डाक्टर' एक ऐसी ही कविता है जो मानव अनाटमी के सृष्टा आद्रयास वजालियस के देह विज्ञान के आविष्कार एव सघर्ष से सम्बंधित है जो चर्च के पादरियो से बिना डरे शवो की चीर फाड़ कर 'एनाटोमी (देह विज्ञान) की श्री वृद्धि करते रहे। लम्बी अवधि तक अनुसधान एव मनन के बाद उन्होने 'शरीर विज्ञान' विषय पर सात खण्डो मे अपनी पुस्तक प्रकाशित की जो देह विज्ञान की एक महत्वपूर्ण

पुस्तक है। जब चर्च के पादरियो को पता चला, तो उन्होने आद्रेयास को मृत्यु की सजा सुनायी लेकिन राजा के व्यक्तिगत चिकित्सक होने के कारण वे बच तो गए लेकिन उन्हे जबरन तीर्थयात्रा पर भेज दिया गया जहाँ समुद्री तूफान मे उजाड़ द्वीप पर उनकी एकाकी मृत्यु हो गयी। इस पूरे घटनाक्रम को कवि ने सवेदना और विचार के स्तर पर रचनात्मक रूप दिया है। इस कविता की सरचना मे आज के डॉक्टरो की स्वार्थपरता भी है, हृदय और धमनियो की गतिशीलता का व्याकरण है, वैज्ञानिक का बुद्ध के समान करुणार्द्र बिम्ब है तथा डाक्टर की अनिवार्यता का सवेदनात्मक चित्र है-ये सभी तत्त्व इस कविता की सरचना म एक जैविक रूप ग्रहण करते है। उदाहरण के तौर पर महाधमनी और धमनियो के वितरण का काव्यात्मक रूप ले-

"खोलता वह हृदय कक्ष/ झाँकता महाधमनी मे/ प्यार से करता अलग/एक एक नस/ कोई सीधे बढ़ गयी है/ मस्तिष्क के गोलार्द्ध मे/ कोई हृदय के पृष्ठ से/बाहुओ मे खो गयी है/रक्त के यात्रा-पथो का सकलन/अस्थियो और अस्थि जोड़ो मे बसी/ मास-पेशियो मे रची/गतिशीलता का पुनर्मूल्याकन/" (विजय गुप्त)

कविता की सरचना मे जहाँ एक ओर वैज्ञानिक आशय और चिकित्सक का मौन सघर्ष है जो 'चुप सी मौत मर गया' तो दूसरी ओर, वह दह विज्ञानी 'अपोलो पुत्र' है जिसके हाथ मे सजीवनी है, आत्महता होते हुए भी गहरी आस्था का बिम्ब है जो मानव जीवन और सस्कृति के लिए उतना ही जरूरी है जितना-

'कि तुम उतने ही जरूरी हो
कि जितनी हड्डियो मे
फासफोरस'
रक्त मे लोहा/नदी मे जल/हृदय मे आक्सीजन/

ये पक्तियाँ पूरी कविता को रूपातरित कर देती है एक व्यापक सदर्भ मे कि विचारक और रचनाकार सदा ही मानवीय सभ्यता मे अनिवार्य घटक रहे है। मेरे विचार से यह कविता सही अर्थ मे 'विज्ञान-कविता' है। दूसरी ओर, नरेश मेहता के 'उत्सवा' सग्रह मे वैज्ञानिक सप्रत्यय 'विस्तारशील दिक्' के आयाम को पौराणिक बुनावट मे प्रस्तुत करते हुए लगातार फैलते हुए ब्रह्माड का जो चित्र अकित किया गया है, वह विज्ञान सम्मत अवधारणा

है। यह उदाहरण विज्ञान बोध का चितनपरक रूप है जो महाकाल की सापेक्षता मे नए आकाशो (दिक्) के सृजन म निरतर फैल रहा है -

कौन है वह
जो महाकाल की अलगनी पर
ग्रह नक्षत्रो की राशिया की
और अको की आकृतिया प्रदान कर रहा है
सवत्सरा के इतिहासा को
पौराणिक बुनावट मे बुनकर
नए आकाशो के निर्माण मे
फैलता जा रहा है
फैलता ही जा रहा है। (नरश महता)

ये दोनो उदाहरण विज्ञान बाध के दो स्तरा को समक्ष रखते है एक वैज्ञानिक के सघर्ष और अनुसधान को व्यापक परिदृश्य प्रदान करता है तो दूसरा उदाहरण वैज्ञानिक सप्रत्यय को ब्रह्माडीय आधार दता है जिसमे कुतूहल और रहस्य भावना का 'पुट' भी है। विज्ञान बोध के और भी स्तर हो सकते है जो किसी न किसी रूप म कवि की सृजन ऊर्जा को गति एव अर्थ देते है।

इस प्रकार आज की कविता यथार्थ और सत्य के भिन्न रूपा को विचार सवेदन के धरातल पर अर्थ दे रही है जो कविता की स्वायत्त सत्ता को बरकरार रखते हुए भी उसकी 'सापक्षता' को भी सकेतित करती है। यही कविता और साहित्य की 'सापेक्ष स्वायत्तता' है। यह कविता या साहित्य के लिए ही नहीं वरन् सभी ज्ञान क्षेत्रा के लिए न्यूनाधिक रूप से सत्य है। हमारे समय की सर्जना का यह अत अनुशासनीय रूप यथार्थ और सत्य को अधिक व्यापक रूप मे ग्रहण करने की माग करता है। यह आलेख इसी माग की ओर सकेत करता है।

□

आधुनिक कविता और चित्रकला के घटक: कुछ अन्तर्सूत्र

चित्रकला में चित्र की संरचना में भिन्न घटकों के सह अस्तित्व तथा उनके सह-सम्बन्ध उस 'सम्पूर्ण' (whole) को आकार देते हैं जिसे हम संरचना कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अंशों या घटकों का महत्त्व इसी में है कि वे अपनी संयोजना द्वारा 'सम्पूर्ण' की व्यंजना करें। असल में 'संरचना' शब्द विज्ञान का है और यह शब्द अपनी विशिष्ट अर्थ-भंगिमाओं के साथ ज्ञान के भिन्न क्षेत्रों (यथा नृतत्त्व, समाजशास्त्र, दर्शन, भाषाशास्त्र, कला और साहित्य आदि) में अपनी जगह बना चुका है। यदि गहराई में देखा जाए तो जगत की सारी घटनाएँ तथा प्रक्रियाएँ इन्हीं घटकों के सम्बन्धों पर आधारित हैं जैसाकि विज्ञान दार्शनिक आर्थर इडिंगटन का मत है- "जगत के सभी रूप-भेद जो प्रेक्षणीय हैं, उनका अस्तित्व भिन्न अंशों के आपसी सम्बन्धों पर आधारित है।"[१] इसका अर्थ यह हुआ कि घटक, अंश, बिंदु, घटना, व्यक्ति आदि-इनका महत्त्व जहाँ संरचना के सौंदर्य में है, वहीं इन घटकों (जिसे माइक्रोकास्म भी कहते हैं) का एक अपना वजूद है जो अपनी 'अर्थ-व्यापकता' में अपने से वृहत्तर आयाम की ओर संकेत करता है। यह वृहत्तर-आयाम संरचना का ही व्यापक रूप है क्योंकि जब कोई भी घटक या अनेक घटक किसी व्यापक आयाम या परिदृश्य को संकेतित करते हैं, तो वे किसी न किसी प्रकार की 'संरचना' को ही व्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से मैं चित्रकला के कुछ घटकों बिन्दु, वृत्त, रेखा, आकृति, तूलिका, कैन्वास

तथा रग के भिन्न अर्थ सदर्भो को आधुनिक कविता के परिप्रेक्ष्य मे देखना चाहूँगा। बिन्दु के सयोग से 'रेखा' निर्मित होती है जैसे कि ध्वनि शब्दो से वाक्य। दूसरी बात यह कि बिन्दु रेखा रग आदि मात्र चित्रकला म ही नहीं वरन् गणित ज्यामिति दर्शन धर्म आदि म भी भिन्न अर्थो म प्रयुक्त होते है। अत यह विवेचन मात्र चित्रकला तक सीमित न होकर अन्य ज्ञान क्षेत्रो की ओर प्रसगवश गतिशील होगा। इससे सभवत इन 'घटको' का एक व्यापक परिदृश्य आधुनिक कविता की सापेक्षता में उद्घाटित हो सकेगा।

आधुनिक कविता मे 'बिन्दु' एक 'सूक्ष्म इकाई' या तत्त्व के रूप म आता है जो समस्त आकारो म परिव्याप्त है। यह एक रहस्यमय व्याख्या की अपेक्षा रखती है क्योंकि बिन्दु अनेक तरह की 'गहराइयों' और सरचनाआ को अर्थ देता है। यह सब बिन्दुआ के सघात से ही सभव होता है तभी आनद देव जैसा कवि कहता है

> यह बिन्दु
> अनत गहराइयों का परिचायक
> इंगित करता, दर्शाता
> रहस्यमयी व्याख्या।२

दूसरे ओर एक अन्य कवि प्रयाग नारायण त्रिपाठी 'मैं' को बिन्दु रूप म कल्पित कर उसे केन्द्राभास की तरह स्वीकार करते है जो हर रूप और आकार का मूल है। यहा 'मैं' एक अणु के समान भी है और बिन्दु के समान भी

> बिन्दु हू मै
> मात्र केन्द्राभास वह जो
> हर रूप हर आकार का
> विस्तार।३

यहाँ पर एक तथ्य यह प्रकट होता है कि यह सूक्ष्मतम लघु आकार चाहे वह बिन्दु हो परमाणु काश हो या व्यक्ति- सभी सृष्टि के मूल तत्त्व है जो अपने म 'लघुतम' है य किसी न किसी स्तर पर अपनो सघात एव सयोजन स भिन्न भिन्न सरचनाएँ उत्पन्न करते है। यही कारण है कि ये लघु-आकार कहने को तो लघु है पर उनमे वह ऊर्जा है जो अपने भिन्न सघातों के द्वारा विभिन्न सरचनाआ को जन्म देते है। यह सघात गति कम्पन

तथा उल्लास के द्वारा नयी रचनाएँ करता है, इस तथ्य को प्रसाद ने 'अणु' की सरचना मे देखा है जो एक वैज्ञानिक सत्य है-

अणुओं को है विश्राम कहाँ
है कृतिमय वेग भरा कितना
अविराम नाचता कम्पन है
उल्लास सजीव हुआ कितना।४

मुक्तिबोध ने भी परमाणु की सरचना को सकेतित करते हुए 'मै' को महाभूत के रूप म स्वीकार किया है जो अणुओं का पूजीभूत रूप है-

परमाणु केन्द्रो के आसपास
अपन गोल पथ पर
घूमते है अगारे
घूमते है इलैक्ट्रॉन
निज रश्मि पथ पर
अणुओ का पूजी भूत
एक महाभूत मै।5

मुक्तिबोध ने परमाणु से महाभूत 'मै' को एक सूत्र मे बॉध कर दोना के सापेक्ष सम्बन्ध को सकेतित किया है। यह लघु और विराट् का सापेक्ष सम्बन्ध है, यही पिण्ड मे ब्रह्माण्ड का रूप है जिसका सहारा लेते हुए महाकवि निराला ने अणु या कण को 'तुम' कह कर उसे अखिल विश्व म अनुभव किया है, यही नही वे 'कण' को अखिल विश्व के रूप मे देखकर उसके अनगिनत भेदो या रूपान्तरणो को अर्थ देते है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि 'अणु' के भिन्न सयोग ही अनेक रूपा को जन्म देते है। निराला की रहस्यमयी उक्ति मे जैसे यही वैज्ञानिक सत्य छिपा हुआ है-

तुम हो अखिल विश्व म
या यह अखिल विश्व है तुम मे
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूँ
तुममे भेद अनेक।6

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि किसी भी सरचना को प्रकट करने में लघु एव सूक्ष्म आकार का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यही सत्य शून्य या गोलाकृति (वृत्त, गोलक आदि) की धारणा मे भी है। शून्य या गोलाकृति का

महत्त्व धर्म, विज्ञान तथा गणित आदि मे भी मान्य है। चित्रकला मे ये गोलाकृतियाँ 'बिम्ब' के रूप मे आती है। तात्पर्य यह है कि गोलाकृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है क्योकि मानवीय सृजन मे इस 'बिम्ब' का प्रयोग इस बात का सबूत है कि यह गोलाकृति सत्य और यथार्थ के किसी न किसी पक्ष को उद्घाटित करती है।

गोलाकृति या वृत्त या शून्य (जीरो)-ये तीनो प्रतीक जहाँ तक आकृति का सम्बन्ध है वे गोल है। यही 'गोलाकृति' सृष्टि के आरभ मे किसी न किसी रूप मे मान्य रही है। मिथकीय अवधारणा म गोलक को ही 'अण्ड' और 'पिण्ड' कहा गया है। प्लेटो के दर्शन मे यह गोलक (राउन्ड) ही सृष्टि के आरभ मे था और विज्ञान दर्शन मे भी आरभ म 'ब्रह्माण्डीय अण्डकोश' (कॉस्मिक ऍग) की कल्पना की गई है। अत इस विश्व का उद्भव एक 'वृत्त' से ही हुआ है जो 'अण्डकोश' के समान है। यह गोलक अनन्त तथा अनादि है जिसे भारतीय दर्शन मे ब्रह्म या शून्य की सज्ञा दी गई। वैज्ञानिक धारणा मे यह वृत्त य अण्डकोश शून्य या खाली नही है वरन् उसमे पदार्थ या द्रव्य का ज्वलन्त रूप है जबकि मिथकीय धारणा मे यह शून्य या खाली है। इन दोनो धारणाओ मे समानता यह है कि वे किसी न किसी रूप में 'गोलक' को सृष्टि के मूल मे मानते है।7 अज्ञेय के सोच-सवेदन मे यह 'गोलाकृति' की भूमिका इस रूप मे रही है कि वे इस 'वृत्त' को 'कुछ नहीं' से उत्पन्न मानते है, पर वे भी 'वृत्त' को किसी न किसी रूप मे स्वीकार करते है और पुन उसके विलय को 'शून्य' मे देखते है। यह सृजन व विलय एक निरन्तर क्रम है-

न कुछ मे से वृत्त यह निकला कि जो
फिर शून्य मे विलय होगा
किन्तु वह जिस शून्य को बाँधे हुए है
उसमे एक रूपातीत ठडी ज्योति है।8

अत सब कुछ शून्य ही है जो रूपातीत ठडी ज्योति है। यहाँ अज्ञेय रहस्यभाव की सृष्टि करते है क्योंकि सृष्टि स्वय मे एक रहस्य है। जब तक मानव के पास कल्पना है सोच है दृष्टि है वह किसी न किसी स्तर पर इस 'रहस्य भाव' स टकराएगा अवश्य।

यह गोलक विश्वोत्पत्ति कैसे करता है? इसे तर्कसम्मत आधर देने के लिए 'विलोमा' की कल्पना की गई और यह माना गया कि ये विराधी तत्त्व

अपने द्वन्द्व क द्वारा भिन्न रूपाकारा तथा सृष्टियों का अर्थ दते है। विज्ञान दर्शन मे भी विलामा के द्वन्द्व का सृष्टि के लिए आवश्यक माना गया है। छाया प्रकाश धरती आकाश नर नारी पिड ब्रह्माड प्रम घृणा आदि विलाम ही समार म व्याप्त है। चीन के मिथका म इस गालक का जो विलोमा से युक्त है टी उची' की सज्ञा दी गई है।9 इस सत्य का डा० विनय सपाकार कुडल क द्वारा व्यक्त करत है जो पराक्षत वक्र गालाकृति का सूचक है जो स्वय को विभक्त कर रहा है

> एक मर्पाकार कुडल
> धीरे से खुल रहा है हवाआ म
> और एक आरभ
> द्वन्द्व को शक्ल देता हुआ
> विभाजित हो रहा था
> अपने ही खण्ड मे।10

निराला ने अपने काव्य 'तुलसीदास' मे तुलसी का 'भारती' स सपृक्त होकर जो मानसिक आत्मिक आराहण क्रम प्रस्तुत किया है इस ऊर्ध्व स्थिति म कवि को समस्त अम्बर घूमते हुए धुएँ के समुद्र सा लगता है जो धूसर है। ये 'धूल कण' वैज्ञानिक दृष्टि से वे कण है जिनके सघात से रचनाए जन्म लेती है। 'यह घूमता हुआ धूसर समुद्र' एक तरह से गोलाकृति है जिसे हम विज्ञान की भाषा म ब्रह्माण्डीय अडकोश कहते है। इस धूसर समुद्र मे चद्र तथा तारे गतिशाल है और इस छोरहीन ब्रह्माड का क्या ऊर्ध्व अधर या क्षररेखा है उसका ओर छोर तथा उसकी रेखीय सीमा क्या है यह नहीं कहा जा सकता। निराला ने इस 'बिम्ब' के द्वारा 'बिग बैग' सिद्धान्त (विश्व अडकोश से ब्रह्माड की रचना) को एक रचनात्मक सदर्भ दिया हे जो अपने मे एक 'ब्रह्माडीय चित्र है

> 'दृष्टि से भारती से बध कर
> कवि उठता हुआ चला ऊपर
> केवल अम्बर केवल अम्बर फिर देखा
> धूमायमान यह घूर्ण्य प्रसर
> धूसर समुद्र शशि ताराहर
> *सूझता नही क्या ऊर्ध्व अधर क्षर रेखा।'11*

यदि गहराई मे देखा जाए ना यहाँ तुलसी के हृदय का ब्रह्माड जा

छोरहीन है, किसी रेखा से आबद्ध नही है वह दूसरे स्तर पर बाहरी ब्रह्माड है, और ये दोनो ब्रह्माड यहाँ एकाकार हो गए है। दो गोलाकृतियाँ एक दूसरे मे समा गई है। यह एक 'विराट्-चित्र' है।

यह एक सत्य है कि विश्व छोरहीन है, उसे मानव रेखाबद्ध या सीमाबद्ध करना चाहता है। इस दृष्टि स, मानव-जीवन म रेखाआ का अपना विशिष्ट स्थान है। ये रेखाएँ, बिन्दुआ का सापेक्ष सघात है, वे हमारे 'अनुभवो, प्रतीतियो तथा विचारो को आकार देते है। इन रेखाओ के व्याकरण से ज्यामिति का समार 'अर्थ' प्राप्त करता है जो अपने मे 'स्वयंसिद्ध-आकार' है क्योंकि इन्ह प्रामाणित किया जा चुका है। इस दृष्टि से आज की कविता मे इन रेखाआ के गणित को कवियो न किस रूप म लिया है, इसका विवेचन 'कविता के रेखागणीत' को सामने रखगा।

आधुनिक कविता के व्यापक परिप्रेक्ष्य म रेखाओ का सम्बन्ध किसी न किसी रूप से अस्तित्व और सृजन स है। इस दृष्टि से कविता की सवेदना मे रेखाओ का महत्व अस्तित्व और सृजन को 'अर्थ' देना है। आनन्द देव जो एक कलाकार और कवि है (जैसे महादेवी वर्मा, जगदीश गुप्त शमशेर बहादुर सिंह, हेमत शेष तथा सुरेन्द्र सहाय सक्सेना आदि), उनकी न्कविताओ म 'अस्तित्व की रेखाओं' का प्रयोग है जो विश्व म व्याप्त आकृतियो का चित्रण करती है-

> मेरी अस्तित्व की रेखाएँ
> पृथ्वी से विषयो को निहारती
> व्योम तक
> चित्रित करतीं आकृतियॉ
> पिरोती सहज, सरल भाषा
> फूलो की, पशुओ की, पक्षियो की।।12

यदि गहराई से देखा जाए तो ससार के सभी रूप आकर जिन्हे हम आकृतियॉं कहते है, उन्ह रेखाआ के रेखीय एव वक्र रूपा के द्वारा आकार मे आबद्ध किया जाता है। इसे यदि लाक्षणिक भाषा मे कहा जाए तो व्यक्ति का मन इन्हीं रेखाओ और सेक्शनो मे परिक्रमा किया करता है, और वह भी काल के अतीत और भविष्य के मध्य क्योंकि यह काल का वर्तमान प्रतीति बिंदु ही है जो व्यक्ति के अस्तित्व को इसी 'अब' से बाँधता है। इस बिन्दु को 'अनत अब' (इन्फिनिट नॉउ) की भी सज्ञा दी गई है क्योंकि यह

बिंदु सदा उपस्थित रहता है।13 डॉ० जगदीश गुप्त ने इस काल-सापेक्ष अस्तित्व को रेखा और सक्शन के द्वारा इस प्रकार सकेतित किया है-

जो चुका है बीत, बीतेगा अभी जो
बीच मे उसके बहुत पतली सतह है
ठीक ज्यामीति की बताई
एक रेखा
एक सेक्शन
डोलता है उसी मे मन।14

सृजन के सतर पर यही 'मन' नयी सरचनाएँ देना चाहता है जो रेखा, मानचित्र, वर्ण तथा अनेक आकृतियो के द्वारा सभव होती है। मार्क्सवादी शब्दावली मे कहे तो आधार सरचना (आर्थिक-राजनैतिक-सामाजिक स्थितियो) के बदलने पर अधिरचना भी बदलती है जिसमे सस्कृति के भिन्न रूप आते है। इसे अधिक व्यापक रूप मे कहे, तो देशकाल के परिवर्तन के साथ अधिरचना भी बदलती है और इनके साथ आकृतियो का सदर्भ भी। इस पूरे परिदृश्य को विजेन्द्र की ये पंक्तियाँ परोक्षत सकेतित करती है कि ये परिवर्तन हमारे सौन्दर्य-बोध को भी नया आयाम देता है-

अधिरचना से बदलता
सौदर्य-बोध
नक्शा/रेखाएँ
वर्ण/आकृतियाँ
ढलता
रचना का बाह्यान्तर।15

अभिव्यक्ति के जितने भी माध्यम है, वे अधिरचना के बदलने पर रचना मे रूपान्तरण लाते है जिसमे बाह्य रचना और आतरिक सरचना (घटक और कथ्य) एक 'जैविक-सरचना' के तहत ढल जाते है। यही रचना का सौदर्य-बोध है जो एक सश्लिष्ट-सरचना के द्वारा ही सभव है। अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध तथा त्रिलोचन आदि मे यह सश्लिष्ट सरचना हमे भिन्न-भिन्न रूपो मे दिख जाती है।

मुक्तिबोध के रचना-ससार मे 'रेखाओ' का प्रयोग अस्तित्व के ऐतिहासिक-सदर्भ मे दिखाई देता है जिसमे सघर्ष का तीखापन है। पुरातत्त्व का सहारा लेते हुए कवि उन जीवाश्मो को 'कटी पिटी रेखाओ' के रूप मे

सकेतित कर इस सत्य को रखता है कि ये रेखाएँ यह बतलाती है कि ऐतिहासिक-क्रम म हम अब तक किसी न किसी रूप मे जीवित है-

टीले या पठारी उभार
उनम कटी-पिटी निजत्व रखाएँ
व्यक्तित्व रखाएँ
जिदा है मच
जीवित अभी तक।।16

इस इतिहास-बोध म 'धरती की धूल' का अपना महत्त्व है उसे मुक्तिबोध रचना या सृजन क सदर्भ म प्रस्तुत करते है, और वह भी 'रेखाओं' के व्यापक सदर्भ द्वारा-

धरती की धूल मे भी
रेखाएँ खींच कर
तस्वीर बनती है
बशर्ते जिन्दगी के चित्र
बनाने का चाव हो
भाव हो।।17

यहाँ पर मुक्तिबोध रेखाओ को जीवन के कटुयथार्थ से जोड़ते है, वे उन्ह वायवी नही रहने देते या चितन के बोझ से उन्हे 'अमूर्त' या रहस्यमय नहीं बना देते। इस यथार्थ-दृष्टि ने उनके रेखा (रग भी) ट्रीटमेट को एक अलग आयाम दिया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उपर्युक्त जिन कवियों का मैने सकेत किया है, उनम यथार्थ दृष्टि नही है, पर उनमे सोच और आतरिकता का पुट अपेक्षाकृत अधिक है। यह सब कार्य 'रेखाओं' के द्वारा ही किया गया है।

रेखा का सम्बन्ध 'काल' से है क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टि से काल को रेखीय और अग्रगति वाला कहा गया है। जहाँ तक काल की चक्रीय गति का प्रश्न है (जो धर्म तथा दर्शन मे मान्य है), उसकी गति भी वक्र-रेखा के द्वारा ही सम्भव है। अत वक्र भी रेखा का ही रूप है। यही कारण है कि चक्राकार गति मे भी रेखा का वक्रीय रूप, चाहे वह अत्यत सूक्ष्म हो, अन्तर्निहित है। मानवीय अनुभव मे काल के य दोनो रूप है। काल गति मे जीवन-मृत्यु, ऋतु-क्रम, प्रात , साध्य और रात आदि का रूप चक्राकार है जो काल की रेखीय गति मे, कुछ रेखाबिन्दुओं पर, चक्राकार गति से

बार-बार घटित होता है।

आधुनिक कविता मे काल की इसी रेखीय एव वक्र गति के भिन्न रूप है जो कवि के अनुभव बिम्बो के द्वारा अभिव्यक्ति प्राप्त करते है। पत की कविता 'परिवर्तन' काल गति के इन रूपो को परोक्षत सकेतित करती है काल के भयानक रूप को व्यक्त करती हुई। वह अपनी गति के द्वारा जग के वक्षस्थल पर चिह्न छोड़ती है। मृत्यु भी काल का रूप है और उपनिषदो मे 'मृत्यु ब्रह्म' की भी कल्पना की गई है।18

> लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
> छोड़ रहे है जग के विक्षत वक्षस्थल पर
> मृत्यु तुम्हारा गरल दत कचुक कल्पातर
> अखिल विश्व ही विवर।19

यह है काल गति का भयकर रूप तो दूसरी ओर कैलाश वाजपेयी ने काल की रेखीय गति को कुछ इस प्रकार महत्व दिया है

> समय नही टिकता।
> गनीमत है
> समय अगर टिकता
> तब ये पंक्तिया कोई नही लिखता।20

काल-गति के चक्राकार रूप को विराट पट्टी के बिम्ब के माध्यम से देखते हुए डॉ॰ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने व्यक्ति की विडम्बना को कुछ यो सदर्भित किया है-

> एक विराट पट्टी चल रही है
> प्रकृति के पहिए पर
> उस पर तुम बधे हो बधु
> अत घूमते घूमते रहो।21

इन उदाहरणो से यह ध्वनित होता है कि रेखा का ब्रह्माण्डीय एव मानवीय सदर्भ एक ऐसा सत्य है जो हमारे अनुभव और सोच को एक 'आकार' देता है और एक तरह से अमूर्त का मूर्तीकरण भी करता है। यहाँ मैने इसका मात्र सकेत किया है क्योंकि विषय की परिधि मे शायद इतना ही आवश्यक हो।22

रेखा के उपर्युक्त भिन्न सदर्भो के साथ रगो का मानव जीवन और

प्रकृति मे एक गहरा सम्बन्ध है। यह गहरा सम्बन्ध भी 'रग प्रतीकार्थ' के द्वारा व्यंजित होता है जो मानवीय सम्बन्धा तथा सामाजिक स्थितियो तथा विडम्बनाओ को साकेतिक रूप से प्रकट करता है। प्रभाववादी चित्रकार प्रकाश और प्राकृतिक रग की पूरी दीप्ति को महत्त्व देते है और इस दृष्टि से प्रभाववाद मे रग प्रभाव को महत्त्व अधिक दिया जाता है वहाँ पर 'वस्तु' का महत्त्व नही के बराबर है। दूसरी बात प्रभाववाद म यह है कि इसमे रग हल्के होने चाहिए और साथ ही काले रग का महत्व नहा दिया जाना चाहिए।23 मेरे विचार से जहाँ तक कविता का प्रश्न है वहाँ 'वस्तु' का महत्त्व रग प्रतीकार्थ की सापेक्षता मे किसी न किसी रूप म रहता है और जहा तक काले रग का सम्बन्ध है उसका भी कविता की सवेदना म स्थान रहा है कभी अधकार क रूप म कभी कोहरे क रूप मे। कविता के सदर्भ म 'रग' अन्य रगो से सम्बन्धित हाकर भी आते है और कभी कभी निरपेक्ष या स्वतत्र रूप म। यह कवि की रचना दृष्टि पर निर्भर करता है कि वह रग या रगा का प्रयाग यथार्थ के किस पक्ष को व्यंजित करने के लिए करता है? यही कारण है कि कवि मे कोई रग अधिक रचनात्मक अर्थ रखता है तो काई अपेक्षाकृत कम।

इस सदभ को लेने से पूर्व रगो के रूप को सृजन प्रक्रिया' के सदर्भ म ले। कवि विजेन्द्र ऐसे गीत रचना चाहते है जो लोगा के द्वारा गाए जा सके आठो की तरह लाल हो और हाथो की तरह सख्त और जिन्हे 'अधेरे' कटघरे म मौन गाया जा सके। यहाँ अँधेरा (काले का रूप) के द्वारा कवि रचना के परिदृश्य को सम्मुख रखता है जा 'मौन' के व्यापक सदर्भ को व्यक्त करता है। यह एक आतरिक 'सवाद' की स्थिति है-

> ऐसे गीत लिख सकू
> जिन्हे तुम गा सको
> जो तुम्हारे हाथो की तरह सख्त
> और ओठा की तरह लाल हा
> जो अँधेरे कटघरे मे
> मौन गाए जा सकें24

समय (जीवन म भी) के व्यापक सदर्भ म भी एक द्वन्द्वात्मक स्थिति है जिमे हेमत शेष ने रगा के साकेतिक रूपा के द्वारा व्यक्त किया है। बीमार पत्ते (पीला रग) तथा 'हरी कोपल' (जीवन ऊर्जा) का द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध है

क्योंकि बीमार पत्ते की जगह हरी कोंपले जन्म लेती है-यही प्रकृति का क्रम है

वृक्ष को अच्छी तरह याद है वक्त
पुराने बीमार पत्तो के निर्जीव होकर
गिरने और
उसकी कोख से
हरी कोपले फूटने का।25

जीवन जहाँ 'शहद का घूट' है, वही वह 'विष का घूट' भी है, यहाँ विष प्रतीक है जो भिन्न-भिन्न रूपाकारो के द्वारा मानव जीवन के नकारात्मक रूप को अँधरे या कुहरे जैसे काले रग के 'शेड्स' के द्वारा प्रकट करता है। यहाँ पर जीवन का कटु सघर्षशील यथार्थ 'रगायित' होता है। यह अँधेरे की दुनिया एक यथार्थ है पर इसके साथ यह भी सत्य है कि इस दुनिया के लिए भी शब्दो की दीप्ति चाहिए-यहाँ हेमत शेष 'अँधेरे' और 'मेहताब' (दीप्ति) के युग्म द्वारा अधकार और प्रकाश (काला और लाल) के आद्यरूप को सृजन-कर्म से यो जोड़ते है-

चीजो की आत्मा तक पहुँचने के लिए
हर अँधेरे की दुनिया को
भरोसेमद शब्दो की
मेहताब चाहिए।26

अधकार और प्रकाश को अनेक कवियो ने प्रकृति दृश्य के साथ उनके 'कन्ट्रास्ट' के द्वारा, जीवन के सघर्ष को व्यक्त किया है। मुझे याद आती है निराला की कविता 'राम की शक्ति-पूजा' जहाँ एक ओर, अमानिशा घन अधकार उगल रही है, वहीं दूसरी ओर विलोम की स्थिति मे 'जलती मशाल' (प्रकाश-लाल या लोहित रग) का बिम्ब है, और इनके मध्य राम सशयग्रस्त है जो एक आधुनिक मानव का सशय ही है-

है अमानिशा, उगलता गगन घन अधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यो ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल।27

निराला की यह कविता 'काले' और 'लाल' रग के मध्य सघर्ष की गाथा है और अत मे 'महाशक्ति' का आराधन और उसकी प्राप्ति है।

'अँधेरे' की व्याप्ति कितनी गहन है आज के त्रासद माहौल मे, इसका सकेत हमे अनेक कवियो म मिलता है कही वह 'अतर' की गहराइया मे प्राप्त होता है, तो कही वाह्य जगत के त्रासद रूपो मे। ये दोनो ही रूप निरपक्ष नहीं है, वरन् उनका सम्बन्ध मापेक्ष है। गहराइया का यह अँधेरा स्वय अँधरे से घिरा हुआ है, और इस अँधेरे की गिरफ्त म सम्बन्ध टूट जाते है अपने से भी। चित्रकार जय झरोटिया की ठक्ति है-

टस से मस नही होता है यह अतस
मै धसता चला जाता हूँ
घुप्प अँधेरे की गहराई मे
जहाँ अँधेरा अँधेरे से घिरा है
जहाँ टूट जाता है सम्बन्ध
अपने आप से।28

इसके विपरीत परम्परागत सदर्भो मे लाल रग जहाँ अनुराग का प्रतीक है, वही आज की कविता म यह क्राति और परिवर्तन का। मुक्तिबोध मे लालरग के चीथड़ा का जो बिम्ब है वह समाज म व्याप्त विक्षोभ और क्राति का व्यजक है। मुक्तिवोध ने 'अँधेर' तथा लाल रग को मानवीय मघर्ष से जाड़ा है। "अँधेरे मे" उनकी लम्बी महत्त्वपूर्ण कविता है जहाँ अँधेरे के विशाल परिदृश्य म देश की त्रासद भयकर, आतकवादी स्थितिया का 'जुलूस' चला जा रहा है, इन सबसे जूझता हुआ जन समूह 'तड़ित उजाले' की खोज मे है। इस पूरी कविता का सौदर्य 'अधकार' और 'उजाले' के द्वन्द्व म है। मुक्तिवाध ने क्राति और परिवर्तन को 'लपट के पल्लू' के द्वारा सकेतित किया है जो 'ज्योति की कटी हुई उगली' या 'प्रकाश के चीथड़े' हे अर्थात् यहाँ क्राति अनेक चीथड़ा म विभाजित है, उन्हे एक करना ही मुक्तिबोध की आतरिक इच्छा है-यह अत्यत परोक्ष है-

पेड़ो की अँधियाली शाख पर
लाल लाल लटके हुए
प्रकाश के चीथड़े
हिलते हुए, डुलते हुए
लपट के पल्लू।29

मुक्तिवाध के काव्य म 'कुहरीले भाप के चहर', 'कुहर के जनतात्री, वानर य, नर ये' जैसे वाक्य रग की रगता (शड्स) द्वारा अपन समय क

जन-विद्रोह को वाणी देते है जो रगो के नए सदर्भ का प्रस्तुत करता है। मुक्तिबोध मे जहाँ क्राति और परिवर्तन का रग लाल है, वही शमशेर एक अत्यत सटीक दृश्य बिम्ब 'सुर्ख गुलाब का दरिया' द्वारा विद्रोह और क्राति को अर्थ देते है। नजरुल पर लिखी उनकी कविता ने क्रातिदर्शी चेतना को "सुर्ख गुलाब" द्वारा सकेतित किया है जबकि निराला ने -कुकुरमुत्ता' मे गुलाब को शोषक वर्ग का प्रतीक बनाया है-पर दोनो के प्रयोग मे किसी न किसी रूप मे 'शोषण' का बिम्ब है जो विरोध और क्राति को जन्म देता है। शमशेर की कुछ पंक्तियाँ ले जहाँ सुर्ख गुलाबो का एक छोरहीन दरिया है जो दूसरी तथा तीसरी दुनिया मे अपने अस्तित्व को दर्ज कर चुका है-

देशो देशो को अक्षाशो को
अपनी सुगध मे मस्त बनाए हुए
सुर्ख गुलाबो का एक
उभरता दरिया
सुर्ख गुलाबो के शिशु मुख
उल्लास से तमतमाए हुए
★ ★ ★
धरती को उद्वेलित किये हुए
दूर तक गुलाबो का
एक ओर छोरहीन दरिया।30

मुक्तिबोध मे यह लालरग 'अगारी रस-गगा' का भी एक रूप है जो जिन्दगी के तथ्यो मे पिघले 'ज्वलत-रस' है। यहाँ पर कवि भूगर्भीय बिम्बो का भी सहारा लेता है-

धरती के अतर मे कैसे चिटख-चिटख कर
चट्टानी मिलसिले
जिन्दगी के तथ्यो के
ज्वलत रस बन पिघल रहे है।
बन कर अगारी-रस-गगा
हम ज्वालामुखियो मे उतर रहे है।31

शमशेर के काव्य को रग-बिम्बो का काव्य भी कहा गया है क्योंकि उनके प्रकृति दृश्यो, यथार्थ के त्रासद रूपो तथा मानव की अस्मिता से सम्बन्धित चित्रो मे रग-बोध एक विशेष स्थान रखता है। यहाँ मै शमशेर

के एक प्रकृति चित्र (सूर्योदय) को इसलिए लेना चाहूँगा कि इस दृश्य मे काले तथा लाल रगो के द्वारा जो संश्लिष्ट बिम्ब उभर कर आता है, वह रगों के द्वन्द्व के द्वारा एक 'दृश्य' को आकार देता है। यहॉ रग और प्रकाश (ध्वनि का भी) का बिम्बात्मक रूप व्यंजित होता है। 'उषा' के समय हल्की लालिमा होती है जिसे कवि ने 'लाल केसर' कहा है, और यह 'लाल केसर' काली सिल (आकाश के गहरे रग) को क्रमश धो रही है। इसी का दूसरा बिम्ब है स्लेट पर किसी ने 'लाल खड़िया चाक' जैसे मल दी हो-ये सभी रग और प्रकाश अपनी जैविकता मे सूर्योदय के प्रकाश सौन्दर्य को, बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से कुछ या व्यक्त करते है-

> बहुत काली शिला जरा मे लाल केसर से
> कि जैसे धुल गयी हो
> स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
> मल दी हो किसी न
> *   *   *
> और
> जादू टूटता है इस उषा का अब
> सूर्योदय हो रहा है।32

उषा का 'रग' टूटता है और 'सूर्योदय' का प्रकाश फैलता है। वैसे प्रकाश मे तो सातो रग समाए रहत है। शमशेर स्वय एक चित्रकार थे, और उनकी रगाकन शैली का प्रभाव उनके दृश्य-चित्रो मे स्पष्ट ही देखा जा सकता है।

अन्त म, कैनवास और तूलिका के रचनात्मक सदर्भ को ले क्योंकि रग, रेखा, आकृति, तूलिका (पेंसिल भी) किसी माध्यम के द्वारा ही 'अर्थ' प्राप्त करती है। कवियो ने इन उपकरणो को चित्रकला से तो लिया है, पर उन्हे उसकी परिधि से बाहर लाने का भी प्रयत्न किया है।

सबसे पहले शमशेर की एक कविता देखे-जहाँ कविता और चित्र का सापेक्ष सम्बन्ध है। शमशेर के काव्य मे चित्र-बिम्ब और कविता-बिम्ब एक दूसरे म घुल-मिल गए है। शमशेर ने अनेक कविताएँ रगकर्मियो के चित्रों से प्रभावित होकर लिखी है। पिकासो, विजय सोनी तथा अनिल चौधरी के चित्रो को देखकर उन्हाने जो कविताएँ लिखी है, उनमे कहीं कहीं 'कैनवास' क दो सदर्भो का सकेत है। एक कैनवास है चित्र का दूसरा

कैनवास कविता का चित्र का कैनवास स्थिर है जबकि कविता का तरल। इस पर भी दोनो का सापेक्ष-सम्बन्ध है-

एक स्वच्छ और निर्मल कविता
यहाँ बह रही है
एक जवान कविता
वास्तव मे वे दो कैनवास है
एक तरल एक स्थिर
दोनो पारदर्शी
एक दूसरे मे छिपे हुए।33

एक स्थिर है दूसरा तरल इसका अर्थ यह हुआ कि दोनो का सापेक्ष-सम्बन्ध होते हुए भी दोनो के माध्यमो (चित्र मे रग रेखा आदि तथा कविता मे शब्द ध्वनि आदि, मे अतर है और यह अतर शब्द को कही अधिक अर्थ-सभावनाएँ प्रदान करता है अपेक्षाकृत रग और रेखा के। शब्द अपने अर्थ को 'ध्वनित' करता है जबकि रेखा रग आदि किसी आकृति के द्वारा 'अर्थ' को घनीभूत कर उसे एक तरह से 'स्थिर' बना देते है। यही कारण है कि भारतीय विचारधारा मे काव्य को 'विद्या' कहा गया है और उसे कलाओ के अन्तर्गत नही रखा गया है। इसका यह अर्थ नही कि दोनो मे कोई सम्बन्ध या सवाद नही है। डॉ० जगदीश गुप्त ने लेखिनी और तूलिका के आपसी सम्बन्ध को कालिदास से जोड़कर परोक्षत लेखिनी (शब्द) और तूलिका (रग रेखा) के अन्त सम्बन्ध को एक रचनात्मक आयाम दिया है। कविता का शीर्षक ही है 'लेखिनी और तूलिका के साथ'-

तुम्हारे हाथो मे आकर
स्नेह की कोमल वर्तिका
तुम्हारी कविता-पंक्तियो की
स्वर्णिम अट्टालिकाओ मे समो कर
कालिदास को
सचरणी दीपशिखा बन गयी।34

'कैनवास' का जहाँ तक प्रश्न है उसका प्रयोग जयसिह नीरज की एक कविता मे कुछ इस तरह व्यक्त हुआ है। यहाँ कैनवास मात्र कैनवास न होकर देश का पूरा परिदृश्य है जहाँ अस्पष्ट रग शायन है और वर्तमान

का त्रासद रूप कुकुमुत्ते की तरह पूरे कैनवास पर उभर रहा है। यह चित्र 'यथार्थ के दश' को 'कैनवास' के माध्यम से प्रकट करता है-

खाली कैनवास पर कितनी ही रेखाएँ
अस्पष्ट रग-शयन
वर्तमान का कही पता ही नहीं
कल वह भी कुकुरमुत्त सा
उग आएगा इस कैनवास पर
केवल कलपाने के लिए।35

चित्रकला के इन घटको के द्वारा यह ध्वनित होता है कि इन घटको या तत्त्वो का एक अर्थवान् सदर्भ आधुनिक कविता की सवेदना मे रचनात्मक अर्थ प्राप्त करता है। यह तथ्य इस बात को भी व्यक्त करता है कि ये घटक यथार्थ के परिदृश्य को तथा उनके भिन्न रूपा को भी अपने तरीके से सकेतित करते है। यह आलेख मात्र एक प्रस्तावना है जो अंतिम नहीं है क्योंकि यहाँ एक ऐसी दिशा की ओर मात्र सकेत किया गया है जो कविता के विवेचन और मूल्याकन मं शायद अनछुआ सदर्भ है, इसमे अभी और गहराई मे जाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1 "All the varieties in the World that all is observable, come from the variety of relations between the entities " दि फिलासफी ऑफ फिजिकल साइस, सर आर्थर इडिंगटन पृ॰१२२
2 समकालीन कला, अक 15-16, सपादक डॉ॰ ज्योतिष जोशी, पृ॰ 23
3 तीसरा सप्तक, स अज्ञेय, पृ॰ 59
4 कामायनी, प्रसाद, कामसर्ग, पृ॰64
5 चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ॰ 85
6 परिमल, सूर्यकात त्रिपाठी निराला पृ॰ 170
7 मिथक-दर्शन का विकास, डॉ॰ वीरन्द्र सिह, पृ॰ 62
8 आँगन के पार द्वार अज्ञेय, पृ॰ 58,
9 दि वे एण्ड इट्स पॉवर, आर्थर वैल, पृ॰ 14
10 एक पुरुष और, डॉ॰ विनय, पृ॰ 13

11 तुलसीदास निराला पृ॰ 87
12 समकालीन कला, अक 15-16, पृ॰ 23
13 टाइम एण्ड इनर्निटी, स्टेस
14 नाव के पाँव, डॉ॰ जगदीश गुप्त पृ॰27
15 उठे गूमड़ नीले, डॉ॰ विजेन्द्र पृ॰ 41
16 चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ॰ 15
17 वही, पृ॰ 54
18 दि कम्परेटिव स्टडी आफ टाइम एड स्पेस इन इंडियन थॉट, के के मडल, पृ॰21
19 रश्मि-बध, सुमित्रानन्दन पत, पृ॰ 53
20 प्रतिनिध कविताएँ, कैलाश वाजपेयी, पृ॰ 15
21 'हरिश्चद्र की मृत्यु' नामक डॉ॰ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय की एक अप्रकाशित नयी कविता से।
22 अधिक विस्तार के लिए देखें लेखक की पुस्तक 'दिक्-काल सर्जना सदर्भ आधुनिक कविता'
23 आर्ट, फेड्रिक हार्ट, पृ॰ 360
24 चैत की लाल टहनी, विजेन्द्र, पृ॰ 68
25 वृक्षो के स्वप्न, हेमन्त शेष, पृ॰53
26 वही, पृ॰ 64
27 राग विराग, स डॉ॰ रामविलास शर्मा, पृ॰ 93-94
28 समकालीन कला, 15-16, पृ॰ 62
29 चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ॰ 68
30 बात बोलेगी, शमशेर, पृ॰ 115
31 चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ॰ 110
32 बिम्बो से झाँकता कवि शमशेर, वीरेन्द्र सिह, पृ॰ 53 मे उद्धृत
33 इतने पास अपने, शमशेर पृ॰ 55
34 समकालीन कला, अक 15-16, पृ॰ 69
35 ढाणी का आदमी, जयसिह नीरज, पृ॰ 45

❑

त्रिलोचन-काव्य के आयाम

त्रिलोचन काव्य का परिदृश्य एक आयामी न होकर बहुआयामी है, और इस बहुआयामिकता के केंद्र में उनका "जनकवि' रूप परोक्षत: अन्तर्व्याप्त है। यदि हम गहराई में देखे तो उनके सृजन का कोई भी क्षेत्र, चाहे वह समाज हो, राजनीति, इतिहास या प्रेम-प्रकृति का संदर्भ हो-इन सबमें उनका संवेदनशील, सरल, अलहड़पन, अभाव में भी तनकर चलना, धुन का पक्का तथा सबको प्रेरक "सपने" देना मानो कवि का एक ऐसा लक्ष्य है जो उसके सृजन-कर्म को 'गति' एवं "अर्थ" देता है। इस व्यापक और बड़े 'सरोकार' की सापेक्षता में उनके काव्य को देखना और मूल्यांकन करना इसलिए जरूरी है कि त्रिलोचन 'जनकवि' होते हुए भी उससे कहीं व्यापक सरोकार के कवि हैं। मात्र उन्हें 'जनकवि' के रूप में देखना, उनके व्यापक कवि-कर्म को नजरअंदाज करना है। यहाँ पर मेरा यह आशय कदापि नहीं है कि मैं त्रिलोचन के जनकवि होने पर प्रश्नचिह्न लगा रहा हूँ, वे जनकवि होते हुए भी अन्य संदर्भों को भी अपनी रचनात्मकता में स्थान देते हैं। अक्सर साहित्य के इतिहास में यह देखा गया है कि हमने रचनाकारों को एक ठप्पा या लेवल देकर उनके सृजन-कर्म को मात्र उस दृष्टि से देखा है, और इस देखने की प्रक्रिया में उसके अन्य महत्वपूर्ण जीवन के पक्ष पृष्ठभूमि में चले गए हैं। इससे उस रचनाकार का मूल्यांकन एकांगी ही रह जाता है और उसके रचनाकार का एक 'जैविक' रूप उभर कर सामने नहीं आता है। त्रिलोचन के समग्र काव्य-मूल्यांकन में मेरा यही प्रयत्न रहेगा कि

मै उनके 'जनकवि' रूप क साथ साथ उन आयामो को रखना चाहूँगा जो उनके विचार-सवेदन के भिन्न आयामो को समक्ष रख सके।

सबसे पहले मै उनके उस पक्ष को लेना चाहूँगा जिस पर अभी तक लोगों का ध्यान नही गया है। मेरा सकेत उनके काल बोध मे है क्योंकि काल एक ऐसा सप्रत्यय है जिसमे कवि किसी न किसी रूप मे टकराता है, वह अपने अनुभव-बिम्बो के द्वारा काल की 'गति' को पकड़ना चाहता है। त्रिलोचन का काव्य मूलत "कालांकित" है जिसमे अतीत (स्मृति-इतिहास), वर्तमान और सभावना (भविष्य) का सापेक्ष सबध है लेकिन यह सबध वर्तमान की प्रतीति बिदु पर टिका हुआ है क्योंकि रचनाकार और विचारक प्रतीति बिदु (जिसे "अनत अब" भी कहा गया है) पर पैर जमा कर अतीत और भविष्य को क्रमश प्रासंगिक और अनुमानित करता है। त्रिलोचन जनकवि होने के कारण काल के वर्तमान खण्ड को अर्थवत्ता देते है, लेकिन इसके साथ ही साथ वे काल के सप्रत्ययात्मक रूप से भी टकराते है जो भारतीय-दर्शन मे चक्राकार है और आज के विचार से विकासात्मक। यही कारण है कि कवि काल को 'चाक की सज्ञा देता है जा अहोरात्र चल रहा है और जिस पर 'घट' (व्यक्ति) लगातार परिक्रमा कर रहे है-

> घट ये चाक पर चढ़े
> घूम रहे है कभी सवरते कभी बिगड़ते
> और चाक यह, अहोरात्र चलता जाता है
> कैसे कैसे, कहाँ कहाँ। ('शब्द' से)

काल एक व्यापक प्रत्यय है जो ब्रह्माडीय भी है और मानवीय। मानवीय काल ऐतिहासिक है जो विकासात्मक एव द्वन्द्वात्मक है। त्रिलोचन एक जनकवि होने के नाते इस ऐतिहासिक काल को 'तुम' (श्रमिक वर्ग) की सापेक्षता मे अर्थ देते है जो विकासात्मक और द्वन्द्वात्मक है। कवि की यह जनवादी दृष्टि उनके सृजन का प्रेरक तत्त्व है

> मानव की सभ्यता
> तुम्हारे ही खुरदुरे हाथो से नया रूप पाती है
> और यह नया रूप आने वाले कल के किसी नए रूप की
> भूमिका है, और यह भूमिका भविष्य
> का सविधान बनाती है, वैसे ही जैसा समाज सारा आज का
> आदिम मानव का विकास है।
> ('ताप के ताए हुए दिन' से)

त्रिलोचन के काव्य म इस एतिहासिक काल के साथ-साथ काल का वह परिदृश्य भी प्राप्त हाता हे जा 'दिक्' सापक्ष है क्योंकि काल और दिक् सापेक्ष है. एक के बगैर हम दूसर की कल्पना नही कर सकत, उपनिषद् की शब्दावली मे दिक् काल 'युगनद्ध' रूप है जैस अर्धनारीश्वर। कवि की एक सुदर कविता 'आशा' है जिसम पृथ्वी आकाश क दिकीय विस्तार म रचनाकार को जाने का आवाहन है जा पराक्षत काल-दिक् के ब्रह्माडीय रूप को रखता है। पृथ्वी स दूब और ऊषा से 'हल्दिया तिलक' ल और-

"और अपने हाथा म
अक्षत लो
पृथ्वी आकाश
जहाँ कही
तुम्हे जाना वढ़ो वढ़ो

("अरधान" से)

यदि गहराई से देखा जाए नो त्रिलोचन की कविता 'काल' से टकराती है, एक तरह मे अपने को काल की सापेक्षता मे "एसर्ट" करती है। त्रिलोचन-काव्य म काल का प्रवाहमय रूप निरपेक्ष नहीं है, वरन् इस प्रवाह म वह किसी के साथ को महत्त्व देता है। यदि गहराई से देखा जाए तो यथार्थ के बाह्य एव आतरिक (प्रेम-प्रकृति) दोनो पक्षो मे कवि किसी 'अन्य' की सार्थकता को अर्थ देता है, वह एकाकीपन, अकेलेपन, तथा अलगाव के अस्तित्ववादी रूप को मान्यता न देकर 'स्व' के साथ "पर" को भी आवश्यक मानता है। यही स्थिति काल प्रवाह (लहरे) के संदर्भ मे भी सत्य है-

लहरे यह/लहरे वे
इनमे ठहरत्व कहाँ
पल, दो पल
लहरों मे साथ रहे कोई।"

(ताप के ताए हुए दिन' से)

त्रिलोचन काव्य की सवेदना म "स्मृति" का अपना परिदृश्य प्राप्त होता है जो काल का ही परिप्रेक्ष्य है क्योंकि स्मृति अनेक रूपो (मिथक, लोकवृत्त, इतिहास तथा पुरातत्त्व) मे व्यक्ति और समूह के 'मनस्' को आदोलित करती हे। यही कारण है कि कवि चाहे किसी विचारधारा, गुट या समूह का हो, वह किसी न किसी रूप म "स्मृति" से टकराता है जो उसे

इतिहास और प्रागैतिहास की भिन्न पश्चगामी वृत्तो, चरित्रा तथा आद्यरूपो की ओर ले जाता है। स्मृति का यह परिदृश्य त्रिलोचन मे मूलत चरित्रा और आद्यरूपा द्वारा व्यक्त होता है जिसमे मिथकीय-ऐतिहासिक दाना प्रकार के रुप प्राप्त होते है। एक आद्य रुप है "आत्मा" का जो हमारी मिथकीय-ऐतिहासिक परम्परा का एक एसा सप्रत्यय है जो आत्मवादी-दशना का मूल तत्त्व है। इस पूरी परम्परा को कवि अपनी एक कविता मे रखता है जहाँ कवि मन के हिल जाने पर उसका गगन के प्रभामण्डल म अवस्थित "छायापुरुष" भी हिलने लगता है। इस छायापुरुष का प्रतीक है जल और व्यक्ति, उस जल मे बिम्बित रूप। यह छाया मात्र छाया हो रही और कवि ने जब भी देखने की कोशिश की उसे 'छाया' ही दिखी, लेकिन उसे 'आत्मा' के दर्शन तो नही हुए, पर उसकी सत्ता का शोर होता रहा, उसकी कोई रेखा नही दिखाई दी-

जब भी देखा
केवल छाया दिखी, रूप किस ओर खो गया।
अपनी चमक दिखाकर, कहाँ गया वह आत्मा
जिसकी सब तलाश करते है,जिसकी रेखा
नही बनी, लेकिन सत्ता का शोर हो गया
सारे जग मे आत्मा ही तो है परमात्मा।
('शब्द' से)

स्मृति के सदर्भ मे एक अन्य आद्यरूप "महाकुभ" है जो कवि की सवेदना को ऐतिहासिक एव जनवादी आशय की ओर ले जाता है। यह "महाकुभ" एक ऐसा 'आद्यरुप' है जो बार-बार जातीय-मनस के मानचित्र को समक्ष रखता है जहाँ जनता के सभी वर्ग एक जगह मिलकर उस 'जनता' के समुद्र की याद दिलाते है जिसे त्रिलोचन "सहस्त्रशीर्षपुरुष" तथा "सहस्त्राक्ष " की सज्ञा देते है। यह 'विराट-दर्शन' कवि को भा गया और कवि कह उठा-

गान के स्वरा म मैने आकाश छा लिया
जहाँ-जहाँ जीवन को देखा वहाँ जा लिया
मेरे स्वर जीवन की परिक्रमा करते है।
('अरधान' से)

यदि गहराई से देखा जाए तो त्रिलोचन का 'महाकुभ' जनकुभ है जो कवि के रचना-ससार के केन्द्र मे है और यही कारण है कि कवि 'महाकुभ'

को मात्र धार्मिक रूप म न दखकर उम व्यापक जातीय रूप म देखते है। यही जातीय रूप जा उनको स्मृति का काल का परिदृश्य प्रदान करता है। उनम हमार तीन जातीय कवि तुलसी कबीर और गालिब है जिन्हे त्रिलोचन ने अपने तरीके से महत्त्व दिया है। त्रिलाचन के लिए तुलसी 'काल की धारा पर जमे हुए कवि है और पृथ्वी पर उनका जीवन यज्ञ और तप क समान था

यज्ञ रहा तप रहा तुम्हारा जीवन भू पर
भक्त हुए उठ गए राम से भा या ऊपर
('दिगत' से)

इसी तरह कबीर के लिए कवि की यह उक्ति मात्र उक्ति न हाकर कबीर के सामाजिक पक्ष को अर्थ दती है

"जीता था बस ज्ञान के लिए
गिरे हुआ का खड़ा कर गया मान क लिए
पथ पथ को दखा सम्यक् ज्ञान के लिए
('दिगत' से)

और गालिब की 'बाली' को वह एक साम्स्कृतिक महत्त्व देता है

गालिब गैर नहीं है अपना स अपने है
गालिब की बाला ही आज हमारी बाली है
('दिगत' से)

यदि गालिब के प्रति कथन का ल तो त्रिलाचन न गालिब का भाषा का 'बाली' कहा है जो जातीय भाषा हिदा की एक महत्त्वपूर्ण बाली है। इसका अर्थ यह हुआ कि त्रिलाचन के लिए हिदी का रूप सम्प्रदायवादी नही था वरन् व उसक जातीय रुप के प्रति सजग थ। एक जनकवि के लिए देश के जातीय रग रूप का महत्त्व इसलिए हाता है कि वह अपनी सृजनात्मकता की प्ररणा वहा से ग्रहण करता है। इस ग्रहण म जहा जाति को अस्मिता स्पंदित होती है वहीं उस अस्मिता स ज्ञान-विज्ञान क आशय एव रूपाकार अपनी उपस्थिति भी दज करत है। यह अवश्य है कि त्रिलाचन म एसे आशय और रूपाकार अपेक्षाकृत काफी कम है पर कम हान पर भी वे उनकी सृजनात्मकता का एक ताजगी दत है उनक जनकवि हान को 'अर्थ' भी दत है और साथ ही उनक परिदृश्य का व्यापक बनात है। एक उदाहरण ले- त्रिलोचन की एक कविता 'नदी कामधेनु है जो पानी स ऊर्जा प्राप्त करने की वैज्ञानिक विधि का सहारा लेकर नदी क 'बाँधन' का जो नाटकीय

चित्र उपस्थित करते है वह मनुष्य द्वारा उसके 'दुहने' से सबन्धित है जिसे मानव अपने हित मे कामधेनु बना देता है। परतु मनुष्य ने तैर कर उसे पार किया फिर नाव से पार किया और अत मे

नदी ने कहा मुझे बाँधो
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँधकर नदी को
मनुष्य दुह रहा है
अब वह कामधेनु है।
('ताप के ताए हुए दिन')

यह कविता अनेक अर्थसम्पन्न कविता है इसका सबध पर्यावरण शोषण से है जन शोषण से है और मानव के ऐतिहासिक विकास क्रम से है। कहना न होगा कि त्रिलोचन ने इस कविता के माध्यम से विज्ञान इतिहास तथा शोषण के आशयो को बखूबी निभाया है।

इसी प्रकार एक अन्य कविता 'महाकाश का कलश' है जिसमे दिकीय विस्तार है जो पारदर्शी है इसी महाकाश (स्पेस) मे धरती घूम रही है दूसरी ओर सूर्य की ज्योति धार' बह रही है। इसके बीच 'तम' है (शून्य दिक्)। इन सबके बीच जीवन तत्व रोमहर्षी है। यहाँ पर ब्रह्माडीय स्तर पर जीवन तत्त्व की स्थिति को सकेतित किया गया है जो व्यथा से भरा हुआ है और यह व्यथा 'मधुवर्षा' है। यहाँ पर कवि जीवन व्यथा को एक ब्रह्माडीय फलक प्रदान करता है

महाकाश का कलश सुनील पारदर्शी है
उसमे अपनी पृथ्वी स्थित है घूम रही है
एक ओर तो प्रखर ज्योति की धार बही है
सूरज की दूसरी ओर तम सुस्पर्शी है
अस्थिति मे स्थिति जीवन स्वय रोम हर्षी है
मरण दौड़ मे पिछड़ गया है किंतु सही है
जीवन ने जो व्यथा किसी से कहाँ कही है
कौन कह गया यही व्यथा ही मधुवर्षी है (शब्द से)

कवि के लिए व्यथा करूणा मधुवर्षी है क्योंकि यह जन से सबधित है अत इसकी अभिव्यक्ति 'मधुवर्षी' के समान है। इस प्रकार कवि ने दिक के विराट विस्तार मे जीवन और व्यथा को 'लोकेट' कर उसके मानवीय

रूप को 'अर्थ दिया है।

त्रिलोचन एक जनकवि होने के नाते 'जन' के सामान्य वोध (कामन सेंस) को व्यक्त करते हैं जो उनकी चरित्र प्रधान कविताओं में देखी जा सकती है। मोरई केवट के घर 'रैन वसेरा' 'चित्रा जाम्वारकर' तथा 'नगई महरा' ऐसी कविताएं हैं जो किसी जन सामान्य चरित्र के द्वारा जीवन यथार्थ के संघर्ष तथा उसके त्रासद दंशित रूप को समक्ष रखती है और इसी के साथ संवेदनात्मक प्रसंगों की उद्भावना कर कवि जन के सामान्य भावों तथा विचारों को इस तरह प्रस्तुत करते हैं जो कहीं न कहीं हमारे सोच संवेदन को व्यापक संदर्भों से जोड़ते है। उदाहरण के तौर पर 'मोरई केवट के घर' कविता में कवि केवट के घर जाता है तब केवट 'प्राणवायु को बाहर निकाल' महगाई का सामान्य वर्णन करता है जो ऐसी 'मार' कर रहा है जो अब सही नहीं जाती। केवट के इस सामान्य कथन को कवि व्यापक संदर्भ उस समय देता है जब वह उसे राष्ट्रों के स्वार्थ और कूटनीति से जोड़ता है और अनपढ़ देहाती की ग्लानि और व्यथा को व्यापक संदर्भ देता है। मोरई तो इसे पूर्वजन्म का प्रसाद मानता है वह क्या समझे कि--

> राष्ट्रों के स्वार्थ और कूटनीति
> पूँजीपतियों की चाल
> वह समझे तो कैसे
> अनपढ़ देहाती रेल तार से वहुत दूर
> हियाई का वाशिंदा
> वह भोरई।
>
> ('धरती' से)

त्रिलोचन की एक लम्बी कविता 'नगई महरा" है जो नगई तथा उससे संबंधित परिवेश संस्कारों का त्रासद रूप निम्न जाति में विवाह की स्वतंत्रता तथा भोज का विकृत रूप आदि के साथ नगई के सरल तथा निष्कपट स्वभाव का एक पारम्परिक भक्तिभाव का रूप जो रामायण के प्रति उसे है उसके संस्कारगत श्रद्धा भाव को जगाता है उसका चित्र कवि ने अत्यंत सहज रूप से दिया है। इस पूरे प्रसंग में कविता की संरचना नाटकीयता और व्यंग्य के साथ क्रमशः 'गति' पकड़ती है उसी दौरान नगई का यह सामान्य बोध का कथन ले जो 'सापेक्षता" के सामाजिक संदर्भ को व्यक्त करता है-

"दुनिया है दुनिया का ज्ञान है आदमी है
आदमी को क्या क्या नही जानना है
देखते-सुनत और करते ज्ञान हांता है' ("ताप के ताए हुए दिन");

नगई के ये वचन एक अनपढ़ तथा निष्कपट व्यक्ति के है जो मानव और ज्ञान के सापेक्ष सबध को "सामान्य बोध" के धरातल पर महसूस करता है जिस पर एक पूरा ज्ञान मीमासा का परिदृश्य उजागर होता है। इसी प्रकार "चित्रा जाम्बोरकर" कविता म चित्रा बच्ची के मनोविज्ञान को, तथा बच्ची के प्रति एक सहज स्नेह के उदेक को यह कविता एक "सवेदनात्मक" अर्थवत्ता पदान करती है। चित्रा से मिलकर कवि को लगा कि उसका मन खाली नही है, उसमे चित्रा बस गई है, इस पर कवि का यह अत्यत सवेदनात्मक कथन ले-

'मन खाली नही था, चित्रा बस गयी थी
जैसे राह की मेहदी
नासिका से होती हुई
फेफडो मे प्राय बसा करती है।

चित्रा की हसी व मुस्कुराहट का प्रभाव देखे

"हसी मिला जाती है
हृदय को हृदय से
मिलाने के लिए हमी
सेतु है-

और अत मे, कवि बच्ची के सपर्क को एक व्यापक मानवीय सदर्भ देता है **"मैंने जिस भाव से/उसे देखा/ उसको आनंद/ मैं कहता हूँ/आनंद कभी कभी/मन पर छा जाता है/मन को कुछ ऐसा/उभार देता है/जो नया होता है, कमनीय होता है।"** (ताप के ताए हुए दिन" से)

त्रिलोचन की उपर्युक्त कविताओ से कवि का सवेदनात्मक रूप मुखर होता हे जो सामान्य जनो के द्वारा व्यापक जीवन-सदर्भो को '*अर्थ*' देता है, और यही कार्य वह ज्ञान-विज्ञान के रूपाकारो और आशयो के द्वारा करता है। यह सारा परिदृश्य "जन" के सघर्ष और साथ ही, उनके सवेदनात्मक एव 'सामान्य-बोध' को प्रत्यक्ष करता है, वह मेरे विचार से 'त्रिलोचन-काव्य' की मुख्य विशेषता है जो उनके मूल्याकन का एक अभिन्न अग है।

❑

केदारनाथ सिंह : सहज अर्थ-सृष्टियों का संसार

समकालीन कविता के व्यापक परिपेक्ष्य में कविता के अनेक रूप उभर कर सामने आए है, लेकिन इन समस्त रूपों में कविता का एक सहज-सप्रेषणीय रूप, अपनी पूरी अर्थवत्ता के साथ सामने आ रहा है। इस सहजता मे जीवन-स्थितियों, वैचारिक उन्मेषां,जनपदीय-कस्बाई-नगरीय रूपाकारों और इन्हीं के साथ व्यग्य और विसंगति की गहरी-हल्की रेखाएं इस प्रकार घुलमिल गयी है कि कविता का विचार-संवेदनात्मक रूप अपनी 'सहज' संप्रेषणीयता के साथ प्रकट हो रहा है। इधर 10-12 वर्षों में ऐसे अनेक नए-पुराने कवि सामने आ रहे है जो कविता की सहजता को पुन' लाने का प्रयास कर रहे है। केदारनाथ सिंह, बलदेव वंशी, विनय, गोविंद माथुर, रामविलास शर्मा(स्व०), रामदरम मिश्र, पुरुषोत्तम अग्रवाल, ज्ञानप्रकाश विवेक, तथा सोहन गौतम आदि ऐसे कवि हैं जो सहज-सृजनात्मकता के द्वारा जीवन-सघर्ष, शोषण, मानवीय संवेदनाओ, प्रेम और प्रकृति के सत्य को, उसके मानवीय सदर्भ को, अपने सोच-संवेदन के आधार पर भिन्न आयामी अर्थवत्ता प्रदान कर रहे हैं। इस पूरे परिदृश्य मे केदारनाथ सिंह का अपना एक विशिष्ट स्थान है क्योंकि वे सहजता की ओर क्रमश अग्रसर हुए है (अन्य कवियो के बारे मे भी यह सत्य है, लेकिन उनमें गुणात्मक अंतर है) और इस स्थिति तक आते-आते उन्हे लगभग 25-30 वर्ष लगे हैं। 1952 के लगभग उन्होंने लिखना आरंभ किया (विधिवत्) और 1965-70 तक आते-आते उनमें जो जटिलता एव क्लिष्टता थी, वह काफी कम हो

गई और "अकाल मे सारस" (1988) तक आते-आते कविताओ का सहज सप्रेषणीय रूप अपनी पूरी अर्थवत्ता को समक्ष रख सका। इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि 1952 से 1970 के मध्य सहजता का तत्त्व नही था क्योंकि इस अवधि मे उनकी कुछ कविताएँ ऐसी है जो सहज-सवेदनीय है जैसे 'ऊँचाई' कविता (1969)

"मै वहा पहुंचा।/और डर गया/मेरे शहर के लोगो/यह कितना भयानक है/कि शहर की सारी सीढ़िया मिलकर/जिस महान ऊँचाई तक जाती है/वहां कोई नही होता।" (ऊँचाई)

ऐसे और भी उदाहरण दिए जा सकते है जो समष्टि रूप से यह प्रकट करते है कि कवि की अभिवृत्ति क्रमश क्लिष्टता (सरचना और कथ्य की दृष्टि से) मे "सहजता" की ओर अग्रसर हो रही है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि केदारनाथ सिह के चौथे सग्रह "अकाल मे सारस" तक आते-आते यह सहजता, जिसमे विचार-सवेदन की ऊष्मा है एक ऐसे बिदु पर आ गई है जो समकालीन कविता मे ही नही, वरन् आधुनिक कविता मे अपनी अलग पहचान बनाती है। भाषिक सरचना के स्तर पर यह सहजता जितनी प्रभावक है, उतनी कथ्य के स्तर पर भी। कथ्य और उसके अनुरूप भाषिक सरचना के मूलत दो स्तर प्राप्त होते है-एक आरभ के काव्य संग्रह 'अभी, बिल्कुल अभी' मे कथ्य और भाषा कभी-कभी एक दूसरे का साथ नही देते है और ऐसे स्थलों पर एक क्लिष्टता और जटिलता के दर्शन होते है। उदाहरण के तौर पर "स्वप्न खंड" कविता को लिया जा सकता है जिसकी सरचना दीर्घ है और कसाव की कमी। 'अज्ञात विश्व के द्वार' को तोड़ने की आकांक्षा पूरी कविता मे व्याप्त है, एक न समाप्त होने वाली यात्रा है जो 'कोहरे' में नगर द्वार को खोजने का प्रयत्न है -

मैंने देखा
मै अश्वहीन चुपचाप भटकता एकाकी
हूँ खोज रहा कोहरे मे अपने नगरद्वार का छोर (स्वप्न-खण्ड)

इस सग्रह के बाद "यहाँ से देखो" और 'अकाल मे सारस' सग्रहो की कविताएँ क्रमश सहजता के गहरे सदर्भों को स्पर्श करती है। इसका अर्थ यह नही है कि शुरू के काव्य सग्रह मे 'सहजता' का नितात अभाव है, लेकिन इतना सत्य है कि सहजता और सप्रेषण का विकास आगे जितना अर्थवान् रूप स प्राप्त होता है, वह अपने मे महत्त्वपूर्ण है। कवि की

रचनाशीलता निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है और इस सापेक्षता म अन्य तत्त्वा के अलावा सहज रिश्ता कवि और पाठक का है जिसे केदारनाथ सिह अपनी एक कविता "प्रिय पाठक" म व्यक्त करते है और उसे अत्यत महत्त्व देते है। यही नही कवि की सृजन प्रक्रिया मे 'स्व' का 'पुन जन्म लेना और 'पते का एक न हाना' उसकी गत्यात्मकता का सूचक है। कवि लगातार पाठक के दुर्लभ अदृश्य द्वार और नगर तक पहुचन का उपक्रम करता है और अपने आन जाने (जन्म लेना) को एक व्यापक सदर्भ दता है

> लेकिन प्रिय पाठक
> एक कवि का काम चलता नही है
> अगले जनम के बिना
> वह यही तो करता है अधिक स अधिक
> कि लागो में
> यहा तक कि चीजो मे भी
> हमेशा बनी रहे
> बार-बार जनम लेने की इच्छा। (प्रिय-पाठक)

और कवि जाते-जाते पाठक के द्वार पर "चिड़िया के पर जैसा एक छोटा सा कागज" रखकर इसलिए जाता है "ताकि सनद रहे कि एक कवि आया था"। यही नही कवि का कोई एक पता नही होता क्योंकि "वह जितनी बार साँस लेता है। बदल जाता है उसका पता"य पंक्तियाँ परोक्ष रूप से रचनाकार की गत्यात्मकता और विशिष्टता को व्यक्त करती है। कवि का बार-बार जन्म लेना कवि का रूपातरण ही है, जो उसे अपने को ही तोड़ने की ऊर्जा प्रदान करता है-यह क्रम सृजन-प्रक्रिया का अभिन्न अग है। पूरा परिवेश और इतिहास इस क्रम मे अर्थवत्ता प्राप्त करता है। इस परिवेश मे मार्ग की खाज है, रोटी और आग का सामाजिक सदर्भ है, श्रम का महत्त्व है(बैल द्वारा), दलित वर्ग, गार्की की माँ, महानगर की त्रासदी, राजनैतिक-सामाजिक विसगति तथा जनपदीय -ग्रामीण परिवेश के रूपाकार ये सभी तत्त्व एक एसे "बिम्ब" को प्रस्तुत करते है जो रचनाकार के सामाजिक सरोकार को 'साकेतिक' रूप से प्रकट करते है। इस सामाजिक परिवेश म गाँव भी है और शहर भी। मै जहा तक जानता हूँ कि समकालीन कविता के व्यापक परिदृश्य म केदारनाथ सिह शायद एक ऐसे कवि है जा दाना छोर-गाँव और नगर म एक साथ और एक समय म दिखाई दते है। अनुभव क य दानो छार कदार की कविता म घुलमिल है और शायद

भारतीय कविता इन दाना को नितान्त अलग करक नहीं चल सकती है क्योंकि भारतीय अनुभव की बनावट में उसका चतना म य दाना तत्त्व एक दूसरे के पूरक ही नहीं है वरन् जन चतना के अभिन्न अग है यह बात दूसरी है कि कहीं किसी का प्रधानता है ता कहीं किसी की अपक्षाकृत कम प्रधानता। कवि की कविताआ म हाट बाजार क शब्द अपना पूरी सहजता क साथ अर्थगाभाय को व्यक्त करते है और इसा के साथ नगराय वाध क शब्द भी अपनी अर्थ छवियों को सकेतित करते है। ये दानों प्रकार क शब्द कदार की कविता म अपनी अलग पहचान वनाते है लकिन सर्वेक्षण क आधार पर मैने यह पाया है कि जनपदीय ग्रामीण शब्दा का अर्थ विस्तार उनकी रचनाशीलता को अधिक प्रभावित करता है और अक्सर य शब्द शब्द न रहकर आद्यरूप (Archetype) और प्रतीक का रूप धारण कर लेते है। कवि की एक कविता है 'रास्ता" जो उसके इस अभिमत का व्यक्त करती है कि वह कहाँ से अपनी कविता क लिए ऊजा प्राप्त कर रहा है -

अव दृश्य बिल्कुल साफ था
अब हमारे मामने
गाय थी
किसान था
रास्ता था
सिर्फ हमी भूल गए थे
जाना किधर है? (रास्ता)

कवि का यह निश्चित मत है कि गहन विचार क क्षणा' और सोचते हुए मस्तिष्क की 'ये कविताएँ एक दिन 'हवा और पाना की तलाश में" **कितावो को फाड़कर।/आ जाएगी बाहर और बैठ जाएगी/जाते हुए आदमी की/पीठ और कधो पर/"** (उमस) यही नही कवि की सृजन-प्रक्रिया में अनगिनत ध्रुवातों का परिदृश्य है और इन्हीं ध्रुवातों पर वह 'रचना रत' है -

खाय इतिहासा क
अनगिनत ध्रुवान्ता पर
मै भा रचना रत हूँ
झुका हुआ घटा स
इस कारे कागज का भटठा पर"

(रचना का आधा रात)

और इस सृजन के दौरान प्रत्येक शब्द "किसी नए ग्रहलोक मे/एक जन्मातर है।" इस प्रकार हम देखते है कि कवि की सृजन प्रक्रिया सामान्य और विशिष्ट क द्वन्द्व से गुजरती हुई शब्द के रूपातर और जन्मातर की बात करती है और यहां पर शब्द और रूपाकार सहज सवेदनीय है न कि आरोपित। द्व पानी, देहरी-चौखट, नदी-रेत, बाघ-गाय, कूड़ा-जूते, सॉस- अर्थी, बालू-गगा, पक्षी-सारस, और मा-बच्चा आदि मानवेतर प्राणी और प्रकृति वस्तुए एक जीवत और बालत हुए ससार की रचना करते है, जहा कवि अद्वितीय भी है और सामान्य भी। फिर भी, एक प्रश्न यह उठता है कि आज क ज्ञान-विज्ञान क रूपाकार कम ही प्राप्त होते है (शुरू की रचनाओ म यदा कदा) जो आज की सृजन प्रक्रिया क एक अग हो सकते है या है। इन्हे भी एक सहज सप्रेषणीय रूप प्राप्त हो सकता है जिस प्रकार अन्य सहज शब्द जो कदारनाथ की कविताओं मे अधिकता से प्राप्त होते है। यह बात मै यहाँ इसलिए भी कह रहा हूँ कि केदारनाथ मे वह 'दृष्टि' और 'शक्ति' है जो किसी भी "रूपाकार" को एक 'सहज' सवेदनीय रूप प्रदान कर सकती है जो गहन अर्थ-सदर्भो को प्रकट करती है। यहाँ मै कवि की सृजनात्मकता पर प्रश्न चिह्न नही लगा रहा हूँ, वरन् उसकी परिधि और दिशा की और सकेत कर रहा हूँ। इस के बावजूद यह एक तथ्य है कि कवि ने देशज और जनपदीय रूपाकारो के द्वारा जिस काव्य-भाषा की संरचना की है, वह उसकी निजी पहचान भी है और उसकी सीमा भी।

इसी सदर्भ में कवि की भिन्न-आयामी सृजनशीलता की बात करना चाहूँगा। इन आयामों में शब्द का अर्थगांभीर्य, मानवीय संघर्ष और उसकी अस्मिता, ब्रह्माड बोध, काल संदर्भ, मृत्यु-जीवन चक्र, प्रेम महत्त्व, कार्य-कारण सम्बन्ध, प्रकृति और प्रेम सदर्भ आदि कुछ ऐसे आयाम है जो केदार की कविताओं में यदा-कदा बिखरे हुए है। इनमे से हरेक पर बात करना संभव नहीं है;फिर भी कुछ आयामो का संकेत करना जरूरी है। व्यवस्था के अन्तर्विरोधो को कवि ने साकेतिक रूप से व्यक्त किया है और वह भी लोकगाथा और लोक अभिप्रायो के द्वारा। 'लोक कथा' कविता के द्वारा जहाँ एक ओर राजा की अर्थी की भव्यता और दूसरी ओर उसके मंत्रियो, सहयोगियो और पशुओ का विडम्बनापूर्ण कर्मकाण्ड (जो यांत्रिक भी है) उनके दु ख का मात्र औपचारिक बना देता है-"अर्थी के आसपास/एक अजब दु.ख था/जिसमें सब दुखी थे/मंत्री दुःखी था/क्योंकि हाथी दुखी था/हाथी दुखी था/क्योंकि घोड़े दुःखी

थे--(लोकगाथा)। अन्य सदर्भ मे यह कविता व्यवस्था (राजतत्र) पर भी व्यग्य है जहाँ मृत्यु एक यांत्रिक सवेदनहीन कर्मकाण्ड है। इसी सदर्भ मे "दो मिनट का मौन" कविता आज के राजनैतिक-सामाजिक असगतियो पर एक ऐसा व्यग्य है जो सहज होते हुए भी मारक है,यहाँ पूरी व्यवस्था और सस्थाओ पर व्यग्य है -

"हर योजना पर/हर विकास पर/दो मिनट का मौन/इस महान शताब्दी पर/महान शताब्दी के/महान इरादो पर/महान शब्दो/और महान वादों पर/दो मिनट का मौन/" (दो मिनट का मौन) कवि इस शताब्दी की व्यवस्था और वादा की अर्थहीनता से इतना सतप्त है कि 'वह सोये हुए धागा (आम जनता-दलित वर्ग) की गतिशीलता मे ही, उनके सार्थक बुनने मे ही वह दुनिया का सारा कपड़ा रूपातरित देखना चाहता है। बुनाई के रूपक के द्वारा कवि ने अत्यत सहजता से एक जनवादी चेतना की आवश्यकता पर बल दिया है

"उठो मेरे सोये हुए धागो उठो---
उठो कि कहीं कुछ गलत हो गया है
उठो कि इस दुनिया का सारा कपड़ा
फिर से बुनना होगा
उठो, मेरे टूटे हुए धागो
उठो,
कि बुनने का समय हो रहा है।" (बुनाई का गीत)

कवि की अनेक कविताएँ यथार्थ के दश को गहराती है जो ऊपर से ठडी है, लकिन अदर से अत्यत तापपूर्ण। यह गहराना 'धूमिल', मुक्तिबोध और विश्वम्भरनाथ उपाध्याय से भिन्न है जहाँ मारकता भाषिक (बाह्य) और आतरिक (कथ्य) सरचना के स्तरो पर अधिक पैनी है। केदार मे एक ठडा विक्षोभ है जब वे 'पाच पिल्ले' के द्वारा आज की बेकारी, जनसख्या वृद्धि और पूरी व्यवस्था के प्रति एक यथार्थमूलक व्यग्य करते है। यह कविता अत्यत सक्षिप्त होते हुए भी अत्यत व्यापक सामाजिक सदर्भ को अपने अदर समेटे हुए है-

"कुतिया ने जने पाँच पिल्ले/पांचो स्वस्थ सुंदर/नरम झबरे/अब सूरज की ओर मुँह किए/पाँचों खड़े है/ कूं-कूं करते/चकित-हैरान/मानो पूछ रहे हो/कि लो हम तो आ गए/अब क्या करें/इस दुनिया का।"

(पाँच पिल्ले)

केदार की कविताओं मे दिक्-काल का मूर्त रूप, अनेक अनुभव-बिम्बों के द्वारा रचनात्मक सदर्भ-प्राप्त करता है। यहाँ पर दिक्-काल सापेक्ष है जो मानवीय अनुभव मे इस प्रकार अनुस्यूत है कि उन्हे अलग नही किया जा सकता है। कवि की एक सुदर कविता "सुई ओर ताग के बीच मे" वृद्धा माँ के उस मार्मिक बिम्ब का उकेरा गया है जो सुई और तागे स माना 'समय-को सिल रही है'-

"तो सुई चलाने वाल उसके हाथ
देर रात तक
समय को धीरे धीरे सिलते है
जेसे वह मेरा फटा हुआ कुर्ता हो।

यही नही माँ स्वय एक "करघा है, जिस पर साठ बरस बुने गए है"। यदि गहराई से देखा जाए तो इस पूरी कविता मे काल को जीवन-सापेक्ष बुना गया है और साथ ही काल के उस झीने अस्तित्व को साकार किया गया हे जो प्रत्येक घटना और क्रम मे अनुस्यूत है। काल को एक अन्य सदर्भ मे भी अनुभूत किया गया है जहाँ सास और मृत्यु (पुराणो मे मृत्यु को काल भी कहा गया है) का द्वन्द्व हे, अड़ियल सास (जीवन) का "मृत्यु से खेलते और पजा लड़ाते हुए" का एक ऐसा चित्र है जो मृत्युरूपी काल से सघर्ष करने को तत्पर है। यहाँ पर चाणक्य का वह कथन याद आता है (अर्थशास्त्र मे) जहाँ वह कहता है कि पौरुष के द्वारा दिक्-काल पर अधिकार किया जा मकता हे जिसे वह "पौरुष-काल" कहता हे। "अड़ियल सास" कविता जहाँ एक ओर इस मघर्पशील गरिमामय 'सास के पौरुष' को व्यक्त करती है, तो दूसरी ओर यह कविता सवेदना के स्तर पर उम घटना को व्यक्त करती हे जो किसी की मृत्यु के वाद "उमके न होने की गध " से व्याप्त रहती है। पूरी कविता की सरचना इन दोनो स्तरो को एक साथ लेकर चलती है और अत मे 'पौरुषकाल' की सुदर व्यजना करती है -

इस तरह अड़ियल सास को
मैने पहली बार देखा
मृत्यु से खेलते
और पजा लड़ाते हुए/तुच्छ/असहाय/
गरिमामय साम को
मैने पहली वार देखा
इतने पास मे। (अड़ियल सास)

यहाँ पर सास और मृत्यु लघु और विराट, पिंड और ब्रह्मांड तथा शोषक-शोषित के द्वन्द्व का सकतित किया गया है, इस प्रकार यह कविता अनेक अर्थों की व्यंजना करती है और लघु (सास) के गरिमामय सघर्ष को व्यक्त करती है। इसके अतिरिक्त कवि की कुछ कविताएं (जैसे आत्म चित्र, स्वप्न खण्ड, सूर्यास्त के बाद एक अंधेरी बस्ती से गुजरते हुए) दिकीय विस्तार का प्रकट करती और वह भी "मैं" की सापक्षता मे। एक ऐसा ही उदाहरण है- **"एक लकीर/पृथ्वी के सारे अक्षांसों से होती हुई/जहाँ/सौर मंडल के पास खो जाती है/वहां/मै खड़ा हूँ"** *(आत्मचित्र)* केदार की कविताओं म प्रकृति सदर्भ क अन्तगत यह दिकीय विस्तार भी देखा जा सकता है *यथा* **हवा शांत है/हर ढलाव पर/जलघासों की गंध/डूबती हुई/दूर से और दूरतर"** *(शाम)* यहाँ पर 'दूर' शब्द दिकीय विस्तार को सकतित करता है। ऐसे अनेक शब्द (दिशा, किधर, ऊपर-नीचे, रेखा आदि) केदार की कविताओं म प्राप्त हाते है जो यह स्पष्ट करते है कि कवि के रचना ससार म काल-दिक् का सापेक्ष यथार्थमूलक जागतिक रूप ही अधिक है, कही-कही पर ब्रह्मांडीय विस्तार के भी दर्शन होते है जो "मै" सापेक्ष है। विज्ञान मे दिक-काल को सापेक्ष अपरिमित और 'दृष्टा' सापेक्ष माना गया है। सृजन के क्षेत्र म दिक्-काल का स्वरूप 'दृष्टा' सापेक्ष है और यह सापेक्षता अनुभव बिम्बो के द्वारा व्यक्त होती है। काल एक गति है जो अतीत, वर्तमान और अनागत द्वारा व्यक्त होता है और कवि इस गति को वर्तमान के प्रतीति बिंदु से पकड़ना चाहता है। केदार की एक कविता 'अनागत' मे प्रतीति बिंदु से सभावना का आत्मसात् करने का प्रयत्न है जो व्यक्ति की अग्रगामी चेतना का वाहक है जा यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति ठहर नही सकता है, हर घड़ी उसे खटका लगा रहता है कि-

"आजकल ठहरा नही जाता कही भी,
हर घड़ी हर वक्त खटका लगा रहता है
कौन जाने कब, कहाँ वह दीख जाए
हर नवागन्तुक उसी की तरह लगता है।
(अनागत)

यही नही, उसकी सीढ़ियों की ओर बरबस व्यक्ति खिंचता जाता है जो उसकी नियति है-उसकी चेतना की अग्रगामी नियति जो वर्तमान बिंदु सापेक्ष है।

केदारनाथ सिह की कविताओ मे राग तत्त्व है, वह उनकी उन कविताओ मे एक नया आयाम प्राप्त करती है जो प्रेम सम्बन्धी मनोभूमि को स्पर्श करती है जहाँ नारी मात्र आलम्बन या उद्दीपन नहीं है, वरन् वह स्वय एक "ऊर्जा" है जो प्रकृति, मानवता, यातना की तैयारी और स्वय की पहचान से गहरी जुड़ी हुई है। यहाँ स्त्री का वजूद मानवीय सवदना का वाहक है क्योंकि -

उसका हाथ
अपने हाथ मे लेते हुए मैने सोचा
दुनिया को
हाथ की तरह गर्म और सुदर होना चाहिए। (हाथ)

यहाँ पर 'गर्म' और सुदर की सापेक्ष आकाक्षा है क्योंकि ताप और सौदर्य का रिश्ता आज कम होता जा रहा है। यह सम्बन्ध प्रकृति के द्वारा, उसके रूपाकारो के द्वारा (गेहू के दाने, भूसे, पत्ती आदि) भी व्यक्त होता है। एसे स्थलो पर कवि स्त्री और प्रकृति के सम्बन्ध को रेखांकित ही नहीं करता है, वरन् दुनिया से प्यार करने का अर्थ है, स्त्री से प्यार करना, दोनो एक ही है-

मै इस दुनिया को
एक पुरुष की सारी वासना के साथ
इसलिए प्यार करता हूँ
कि मै प्यार करता हूँ
एक स्त्री को।
(उस शहर मे जो एक मौलसिरी का पेड़ है)

केदारनाथ की कविताआ मे गुजरते हुए एक तथ्य मुझे यह लगता है कि केदार की कविताओ को सवेदना और मर्म के स्तर पर समझ लेना आसान है, लेकिन उन्हे व्याख्यायित करना दूभर कार्य है क्योंकि उसे पूरी तरह से पकड़ पाना शायद सभव नही है। मेरे विचार से यह कविताओ का अपना अर्थ सौदर्य है जो पूरी तरह से पकड़ मे नही आता है। इससे अनेक कविताएँ अनेक अर्थ-सृष्टियाँ करती है जो पाठक सापेक्ष है।

अत मे, एक ऐसी लम्बी कविता का जिक्र करना चाहूँगा जो उपर्युक्त अर्थ-सृष्टियाँ करने मे सक्षम है। मरा सकेत है -"बाघ" नामक कविता-क्रम से जो सोलह खण्डो मे लिखी गई है। यह कविता उनकी कविता के समान

बाघ की उस चिता की तरह है जो सूर्यास्त के बाद कहीं दूर से बस्ती को देखता है और इस तथ्य से विचलित है कि वहाँ धुँआ क्यो नहीं उठ रहा है? यह विषाद भरा धुआ चेतना और जीवन का कैसे वाहक बन जाता है, यह पड़ताल इस कविता क्रम के द्वारा की गई है। इस कविता का रूप-विधान, अर्थ-सृष्टिया मे निहित है जो जटिल स्थितियो और विचारो-सवेदनाओ का जैविक रूप है। यहाँ पर पचतत्र की शैली का आभास प्राप्त होता है जो प्रतीकात्मक स्थिति को व्यक्त करता है जहाँ बाघ के साथ-साथ लोमड़ी, खरगोश बच्चा आदि का सदर्भ है जो प्रतीकात्मक अर्थ-व्यजना करते है। यह कविता आज के जीवन की जटिल वास्तविकताओ को अत्यत साकेतिक रूप मे व्यक्त करती है। इस शताब्दी के आतक और सौदर्य को एक ही बिदु पर जीने और पहचानने का उपक्रम यह कविता करती है। धुआ इस कविता का केद्र है-

उसे पता था/कि जिधर से भी उठता है धुंआ/उधर होती है बस्ती/उधर होते है गरम-गरम घर/उधर से आती है आदमी के होने की गध/(बाघ,12)

इस कविता क्रम की एक विशषता है नाटकीयता जो पशुओ के मध्य सवाद द्वारा होती है और इसम चिता है आदमी के दुखो को लेकर जो एक महती चिता है जहाँ तक आज का सदर्भ है। बाघ और लोमड़ी के सवाद के द्वारा कवि ने आदमी के दुख को जो सर्वव्यापी साकेतिक रूप दिया है, वह आज का सकट भी है -

"कैसा दुख ?" बाघ ने तड़पकर पूछा
"यह मै नहीं जानती, पर दुख का क्या
वह हो ही जाता है कैसे भी"
लोमड़ी ने उत्तर दिया
"हो सकता है, उन्हे कोई काटा गड़ा हो"
बाघ ने पूछा
"पर हो सकता है आदमी ही, गड़ गया हो काटे को"
लोमड़ी ने धीरे से कहा
(बाघ)

यहाँ आदमी और 'काटे' का सम्बन्ध व्यग्यात्मक है कि आज का मनुष्य 'काटे' को ही गड़ गया हो, यहाँ मनुष्य का त्रासदीय भयकर

मनोविज्ञान सकेतित हाता है जो समझ म ता आ जाता है पर शायद पूरी तरह से पकड़ मे नहीं आ पाता है जा व्याख्यायित हा सके। अत म वाघ इस दुख 'शव्द के आग' पूरी तरह म निरुपाय हो जाता है। इसी प्रकार का सवाद 'ईश्वर' शव्द के लिखने को लेकर है जिस वाघ ठीक तरह स लिख नही पाता है जो एक प्रकार से 'ईश्वर' की मत्ता और अस्तित्व क प्रति प्रश्नचिह्न है। कवि की एक अन्य कविता 'विना ईश्वर के भी' म यही स्थिति है क्योंकि सभी घटनाएँ प्रक्रियाएँ स्वय ही यत्रवत चल रही है विना ईश्वर के। यही नही "विना इश्वर के भी उतना ही गाढ़ा है मरा दुख ये पंक्तिया ईश्वर की व्यग्यात्मक अर्थहीनता का व्यक्त करती है।

केदारनाथ सिह क उपर्युक्त सृजन-परिदृश्य का ध्यान म रखकर यह कहा जा सकता है कि उनकी 'सहज' अनक आयामी अर्थ-सृष्टियाँ अपन म अलग पहचान रखती है जिसम नगर कस्वा गाँव क रूपाकार अपनी 'सहज' सवेदनीयता क साथ जीवन-यथार्थ के सदर्भों का व्यक्त करत है। कवि की कविताआ क मूल्याकन म भित्र सराकारो को ध्यान म रखना जरूरी है क्योंकि उनक काव्य म मानवीय सराकारा क प्रति एक गहरी सहज सवेदना है।

❑

"सहज" संवेदनीयता के कवि : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

समकालीन कविता के व्यापक सदर्भ को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि आज की कविता मानवीय दिक्-काल के विविध रूपो से टकरा रही है जिसमे परिवार, समाज, राजनीति, मिथक, इतिहास, विज्ञान और दर्शन आदि के आशय और रूपाकार अपनी तरह से रचनात्मक सदर्भ प्राप्त कर रहे है। इधर कुछ वर्षो से हिन्दी कविता म एक 'सहज' सवेदनीय रूप के दर्शन हो रहे है। यह सहजता जहाँ एक ओर भाषिक सरचना को प्रभावित कर रही है, वही वह लोकधर्मी आशयो और रूपाकारो को 'अर्थ' प्रदान कर रही है। कविता का यह सहज रूप ऊपर स तो बड़ा 'सहज' प्रतीत होता है लेकिन इस सहजता के नीचे जीवन यथार्थ के कटु-तिक्त अनुभव, विचार और सवेदना का द्वन्द्व तथा इस द्वन्द्व से 'सवेदना' का गहरा और जैविक रूप उभर कर सामने आता है। इस 'सहजता' के अनेक रूप हमे आज के कवियो मे दिखाई देते है और डॉ॰ विश्वनाथप्रसाद तिवारी उनमे से एक है। रामदरश मिश्र, बलदव वशी, केदारनाथ सिह तथा कृष्ण कल्पित, गोविन्द माथुर, नीलाभ, विनोदकुमार श्रीवास्तव जैसे युवा कवियो की एक लम्बी पंक्ति है जो सहजता के कवि माने जा सकते है। हरेक कवि की सहजता का अपना अलग तेवर है, किसी मे वह अधिक सवेदनापूर्ण है, किसी मे वैचारिकता का अधिक स्पर्श है, तो किसी मे ठडापन का तो किसी म विक्षोभ और आक्रमकता का। तिवारी जी की कविता मे उपर्युक्त सभी तत्व न्यूनाधिक रूप मे प्राप्त होते है, लेकिन उनकी रचनात्मकता मे सवेदना का गहरा स्पर्श है जिसमे लोक तत्त्व और वैचारिकता की अन्तर्धाराएँ

प्रवाहित होती रहती है। यही कारण है कि कवि मे वैचारिकता, सवेदना मे इस प्रकार घुल जाती है कि जो सरचना जन्म लेती है, वह विचार सवेदन के घोल और समीकरण को ही व्यजित करती है। यही कारण है कि उनक रचना-ससार म ग्राम्य-जनपदीय सरोकार और रूपाकार, नगरीय बोध, मानव सघर्ष की अस्मिता, इतिहास विज्ञान और दर्शन की भगिमाए तथा प्रेम और प्रकृति की अन्तर्दशाएँ सब एक साथ, अलग अलग सदर्भो म उनकी रचनात्मकता को गति और अर्थ दती है। तिवारी जी क सग्रहा से गुजरते हुए मुझे लगातार यह महसूस होता जा रहा है कि कवि का विचार-सवेदन विविध आयामा का 'अर्थ' प्रदान करता है जिसम "चीजा को देखकर और "समय के साथ चलत हुए" एक "बहतर दुनिया की तलाश' के लिए वह गतिशील है और इस बहतर दुनिया के लिए वह 'आखर अनत' (सग्रह) का ही सहारा ल रहा है उसे सताष है।

मुझ सताप है
मेने चुराये कुछ अमर बीज
और छीट दिए कागज पर
आखर अनत। (आखर अनत, पृ०94)

इन्हीं 'आखर अनत' स वह अपने अनुभव ससार को कागज पर उतारता रहा है क्योंकि शब्द के द्वारा ही कवि दिक्-काल स जूझता है-

शब्द "होने" का सबूत है
★ ★ ★
क्या जरिया है हमारे पास
उस दिक् काल से जूझने का
जिसके बीच हम फक दिए गए है। (शब्द)

कवि के रचना ससार म 'शब्द' दिक्-काल के निबधन का माध्यम है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय म यह दर्शाया है कि दिक-काल का निबधन शब्द ही करते है जो क्रिया, सर्वनाम सज्ञा और अव्यय ही है। शब्द मौन नही रहत है बोलन स उनम क्षाभ उत्पन्न होता है और यह क्षाभ ही उन्हे 'अर्थ' प्रदान करते है

मौन नहीं/शब्द
बोलो
बोलन म कुछ होना है। (शब्द पाठ)

तिवारी जी की कविताएँ शब्दो को परिवेश म बिछा देती है और शब्द-भिन्न सदर्भो मे अर्थ का विस्तार करत है। यथार्थ का चाहे जो भी क्षेत्र हो उनके शब्द उन आशयो को पकट करते है जो यथार्थ के भिन्न रूपो को 'अर्थ' प्रदान करते है। उनकी कविताओ मे यथार्थ का बहुरगी रूप प्राप्त होता है जिसमे राजनीति समाज परिवार प्रकृति, प्रेम विज्ञान बोध, इतिहास तथा दर्शन के भिन्न आशय और प्रतीक रचनात्मक सदर्भ पाप्त करते है। ये सभी सदर्भ लोकधर्मी रूपाकारो और आशयो के द्वारा ही सामान्य रूप से अभिव्यक्ति प्राप्त करते है। य रूपाकार हमारे इतने जाने पहचाने है, हमारे इतने निकट है, फिर भी कभी-कभी कवि इन रूपाकारो से जो व्याप्क-अर्थ-रूपातरण करता है वह उसकी निकटता को विस्तार मे बदल देता है। इस दृष्टि से, कवि के पारिवारिक बिम्ब (माँ लड़की बहन) अपना विशेष स्थान रखत है और खासतौर से 'माँ' का बिम्ब। समकालीन कविता मे इन पारिवारिक बिम्बो का प्रयोग एक मुख्य प्रवृति है जो जातीय मनस् स गहरे जुड़े है। ये बिम्ब हमारी अस्मिता के अग है, वे आरकिटाइप्स या आद्यरूप है वे हमे 'जड़ो तक ले जाते है। तिवारी जी ने 'माँ' बिम्ब को अनेक सदर्भो का वाहक बनाते हुए माँ से अपनी निकटता और सवेदनीयता को जोड़ते है। एक उदाहरण ले जिसमे माँ का चिता बिम्ब एक ब्रह्माडीय अर्थ को ग्रहण करता है और साथ ही सघर्ष को अर्थ देता है-

मा का आचल जल रहा था
जिसमे छिपाया करती थी वह हम
सबसे पहले पैर जले मा के
फिर सिर जला
जल नहीं रहे थे
मा के अमृत पयोधर
हमने लपटे तेज की
और तेज की लपटे
मा अकेले लड़ रही थी
लपटो से, हवा से, आकाश से
(उड़ गयी माँ)

दूसरी ओर 'माँ' का थोड़ा थोड़ा रोज जाना "मानो काल-वृक्ष पर उतरना-चढ़ना है", यहाँ पर कवि काल-चक्र के सदर्भ मे, माँ के अर्थ मे व्यापकता भर देता है -

सुकवा और पटमचिया से नापे थे उसने
समय क सत्तर वर्ष
जीवन का कुतरती धीर-धीरे
गिलहरी सी चढ़ती-उतरती
काल-वृक्ष पर। (अचानक नही गयी माँ)

इन कविताआ से गुजरत हुए मुझे लगता रहा कि कवि ने वैयक्तिक स्तर पर माँ की बीमारी और यातना का झेला है, वह कविता म सार्वभौमिक स्तर पर 'अर्थ' प्राप्त करता है। इसी प्रकार की सहजता और सूक्ष्मता, सहजता और विस्तार का रूप हम अन्य क्षेत्रा म भी प्राप्त हाता है चाहे वह प्रकृति, प्रम का क्षत्र हा या राजनीति-समाज का। यही कारण है कि कवि की कविताएँ सहज है, बाझिल नही है, विचारा का आरापण नहीं है, उनमे एक सहज मानवीय राग है, करूणा है, परिवर्तन की आकाक्षा है, जीवन स्थितिया स जूझने की ऊर्जा है और इतिहास-क्रम के प्रति एक जागरूक दृष्टि। ये सभी तत्त्व उनकी कविता म एक ऐसे ससार की रचना करते है जो अपने म एक दूसरा ही ससार है, यथार्थ का प्रतिलोभ है, एटीयूनीवर्स है। यह एटीयूनीवर्स यूनीवर्स से सापेक्ष होते हुए भी अपने मे एक स्वतत्र रचना है। कवि इसी प्रकार के "प्रतिविश्व" की रचना करता है। "आखर अनत"मे इसी प्रतिविश्व की रचना करते है, माँ के सदर्भ म कवि का ऐसा ही कथन है-

उसन चार पैरा के एक नन्हे मे जानवर को
खड़ा किया है रीढ़ पर,
आजाद किए है उसके हाथ
निविड़ अधकार मे दिया है उसे
आखर अनत
(यमदूत ढूँढ रहे है माँ को)

तिवारी जी की कविताओं मे विज्ञान, इतिहास और यहा तक कि कभी-कभी तात्त्विक प्रश्नो स जूझने की एक ललक है तभी वे आत्मा और शरीर के सम्बन्धो को, उसकी सापेक्षता को स्वीकार करते है और आत्मा के निरपेक्ष रूप का अस्वीकार करते है। विकास-दर्शन भी विकास क्रम के साथ चेतन तत्त्व या आत्मा के विकास को मानता है।

यही नही, वह ईश्वर जैसे प्रत्यय को निरपेक्ष नहीं मानता क्योंकि

"ईश्वर तुम्हारी मदद चाहता है/अकेले नही उठा सकता वह/इतना सारा वोझ/" -जैसी पंक्तियो मे कवि ईश्वर आत्मा जैसे प्रत्यया को मानव सापेक्ष मानता है और इस प्रकार मानव की गरिमा को व्यक्त करता है। उसका यह मानना है कि मानव मे कुछ ऐसा महान (मूल्य) है जिसके लिए मानव अपने को उत्सर्ग करता है।" **उस दिन पुख्ता हुआ था मेरा विश्वास/कि कुछ है/कुछ है जो महान है हमसे भी/जिसके लिए हम मर जाते है/"** (कुछ है) **यदि गहराई से देखा जाऐ** तो कवि की रचना प्रक्रिया मे मानव अस्तित्व, सघर्ष, जिजीविषा और गति के भिन्न रूप प्राप्त होते है जो व्यक्ति की सघर्ष चेतना को सकेतित करते है। 'कहार' कविता मे कहार पसीना पोछते गतव्य की ओर अग्रसर है, 'गति' कविता म "कितना भयावह लगता है/ जब एक आदमी चलता है। चलता है खामोश घाटी के बीच।' और आदमी क्या खरीदेगा, अपने सपने बेचकर" (सपने) आदि काव्य-पंक्तिया व्यक्ति की गति चेतना को, उसके सघर्ष को '**अर्थ**' प्रदान करती है। यहाँ चेतना हमे व्यवस्था (तत्र) और व्यक्ति के सघर्ष मे प्राप्त होती है। "फैसले की रात" मे राजा अपने नवरत्नो के साथ 'कठघरे, मे खड़ा है जिसकी आखो मे भय था, सविधान, न्यायालय को उसने 'कब्रगाह' बना दिया था, और उसे आश्चर्य था **"कि कैसे जी उठे मुर्दे/सीमेंट और चूने-गारे के भीतर"**, तभी उसे फैसला सुनाया गया कि **"तुमने धरती का सिसकना सुना नहीं पिता/ आकांक्षाओं की गंगा धड़क रही थी/हिमालय से उतर कर/तुमने उसे बाँधने की कोशिश की पिता/अब इस विद्युत-प्रवाह में बहो।"** इसके बाद कविता का अत सघर्षशील शोषित जन के पक्ष म होता है-जो भावी सभावनाओ की ओर सकेत है-

खुदा का ताज
एक कैदी को पहना दिया गया था
यह एक अजीबोगरीब फैसला था
सारी दुनिया के राजा
इस '**दृश्य**' से काप गए थे। (फैसले की रात)

मेरे विचार से तिवारी जी की यह कविता तीसरी दुनिया के सघर्ष को '**अर्थ**' प्रदान करती है और इस दृष्टि से कवि की ऐसी कविताएँ राजनीति और जन चेतना के द्वन्द्व को साकार करती है। व्यक्ति और बेलेटबाक्स, न्याय की विसगति जो सत्ता हित के लिए है, हत्यारो का एक निरीह हिरण

को मारना और मध्यवर्गीय व्यक्ति का बयान कि "वह बड़ा नही बन सका/ रोटी दाल को छोड़कर खड़ा नही हो सका।" आदि अनेक ऐसे साकेतिक वक्तव्य है जो कवि की कविताओ (जैसे सड़क का बूढ़ा न्याय, हिरण आदि) म अर्थ प्राप्त करते है। अत यह कहा जाना चाहिए कि कवि की रचना -शीलता यथार्थ और जीवन के विविध रूपा से टकराती है और भाषा का सहज सवदनीय रूप उस टकराहट को लोकधर्मी रूपाकारो के द्वारा व्यक्त करता है।

कवि की कविताओ का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है प्रेम व प्रकृति का सवेदनात्मक अर्थ-रूपातरण जो अपने मे प्रकृति म व्याप्त ऊर्जा और मै तुम के सम्वनध से उस ऊर्जा का एहसास और उसका व्यापक मानवीय सदर्भ-ये कुछ तत्त्व है जो तिवारी जी की प्रेम-प्रकृति सम्बन्धी रचनाओ मे देखा जा सकता है। समकालीन कविता पर अक्सर यह आपेक्ष लगाया जाता है कि वहाँ प्रम-प्रकृति का सदर्भ अर्थवान् नहीं है, तिवारी जी की कविताएँ (वलदेव वशी, विनय, केदारनाथ सिह, विनोदकुमार श्रीवास्तव आदि मे भी) इस भ्रम को तोड़ती है। मै-तुम का सम्बन्ध यहाँ मात्र एकातिक नहीं है, रोमाटिक भी नहीं है वरन् बदले हुए रोमाटिक वोध का ऐसा रूप है जो क्रूर इतिहास को भी बदलने मे समर्थ है-

मै महसूस कर रहा था
हम दोनो के मिलने से
जो लहरे पैदा हो रही थी
वे क्रूरतम इतिहास
वदलने मे समर्थ। (मिलन)

यहीं नही "प्रेम करते हुए तुम/अलग नहीं होती दुनिया से/दुनिया भर से प्रेम/कर सकती हो तुम एक साथ" (श के लिए चार कविताए) आदि ऐसी पंक्तियाँ है जो प्रेम को व्यापक अर्थ सदर्भ देती है। कवि के लिए प्रेम भी एक विद्रोह है जो प्रेम के सघर्षमूलक रूप को सकेतित करता है। दूसरी ओर कवि प्रकृति ऊर्जा की व्याप्ति मै -तुम के सम्बन्ध मे भी देखता है। यहाँ तुम' सर्वनाम न होकर प्रकृति ऊर्जा का प्रतीक है :

तू मेरे साथ है
जैसे मै खुद ही अपने साथ

काल मे और हवा मे गध मे
चारो ओर व्याप्त है
तुम्हारी उपस्थिति का ऐश्वर्य (तुम)

कवि के लिए प्रकृति " अधेरे के भीतर से दमकती/ताजा प्रसन्न मासल/आने वाले दिन के लिए तैयार (भोर का समय) यह एक प्रक्रिया का रूप है जो काल के रूप को भी व्यक्त करती है। कवि की एक कविता 'एक सुबह है जो प्रात एक टहलने के दृश्य से सम्बन्धित है। यह कविता एक घटना को व्यापक सदर्भ देती है। कवि काला जूता पैट कोट मे लैस होकर टहलने के लिए घर से निकलता है और उसे लगता है जैसे अब मै हथियारो से लैस था। मौसम के विरुद्ध और उसके सामने जैसे एक दुनिया घट रही हो। वह खुश है कि वह जग हुए लोगो की पक्ति म है और जो रजाईयो मे दुबके हुए है उनके प्रति कवि का कथन पूरी कविता को एक बड़े सोये हुए जन समूह की निष्क्रियता को व्यजित करता है

कि आज सुबह सुबह मै भी
जगे हुऐ लोगो की पक्ति मे
शामिल हो गया हूँ
और हालाकि हिकारत की नजर से देख सकता हूँ
रजाईयो म दुबके हुए लोगों को
जिन्हाने नही देखी कोई सुबह। (एक सुबह)

अन्त मे एक बात और। कवि की रचना प्रक्रिया म अक्सर जन जाति के आशयो को उनके सहज खुलेपन को इस प्रकार लिया गया है कि विचार की अन्तर्धारा उसम प्रवाहित रहती है। लोक और विचार का यह गठबधन मेरे विचार से कवि की रचना दृष्टि को सम्मुख रखता है। ऐसी ही एक कविता है समय भागा जा रहा है" जो मुडा लाकगीत के आधार पर लिखी गई है। इसम एक लड़की अपने माँ पिता दीदी और सखी से उन घटनाओ को सकलित करती है जो काल की सापेक्षता मे घटित हो रही है और काल की गति को वह पकड़ने का प्रयत्न करती है। दीदी स कथन ले

हे दीदी मेरा जोड़ा नही है
हे दीदी मै भोर का चहकता ऊजाला हूँ
हे दीदी मे अपनी दमक कैसे फैलाउ।

हाय। समय भागा जा रहा है।

ये निष्कपट, सहज सवेदनीय आशय उस समय एक व्यापक 'अर्थ' प्राप्त कर लेते है जब बालिका अपने मे बाहर उड़ जाना चाहती है, वह भी समय के साथ और उसके आगे

हे सखी, मुझे, बाघ का डर नही है
हे सखी, मुझे राजा के सिपाहिया का डर नहीं है
हे सखी, मै हवा के साथ उड़ जाना चाहती हू
हे सखी, मै अपने शरीर से बाहर उड़ जाना चाहती हूँ
समय, समय
हाय, समय भागा जा रहा है। (समय भागा जा रहा है।)

इस कविता का सौंदर्य इसमे है कि यह पूरी तरह से व्याख्यायित नही की जा सकती है। उसे गहरे मे महसूस किया जा सकता है। यही स्थिति अन्य कुछ कविताओ की भी है। अत यह कहना अधिक न्याय सगत होगा कि कवि के रचना ससार मे विचार-सवेदन के विविध आयाम अपनी रचनात्मक अर्थवत्ता प्राप्त करते है। यह अर्थवत्ता सहज-सवेदनीयता से एकीकृत हो जाने से रचना के ऐसे सौंदर्य को व्यक्त करती है जो जैविक या ऑरगैनिक है। तिवारी जी का काव्य सृजन इस माग को भी पूरा करता है कि वह यथार्थ और चितन के गठबंध के द्वारा रचना के नये यथार्थ (वैज्ञानिक शब्दावली मे प्रतिविश्व या एंटीयूनीवर्स) को सृजित करते है। यह 'नया' यथार्थ "बेहतर दुनिया के लिए" है और ऐसे 'आदमी' के लिए जो बेहतर दुनिया को साकार कर सके। कवि उन सबको नमस्कार करता है जो-

"आप जो भी पढ़ रहे है
या सुन रहे है मेरी कविताए इस वक्त
आप जो भी सींच रहे है धानो के खेत
या कस रहे है ढीले पुर्जे
आप जो भी जगे-सोये देख रहे है
बेहतर दुनिया के सपने
सबको नमस्कार।

❑

शलभ श्रीराम सिंह-
रंग अपनाऔर तुरंग अपना एक

शलभ श्रीरामसिह की काव्ययात्रा (लगभग 30 वर्ष) सातव दशक मे आरभ हुई जब भारतीय साम्यवादी दल बाहरी दवावो के कारण विभाजित हो रहा था और तदनुरूप हिंदी कविता के क्षेत्र म 'प्रगतिवाद' और 'प्रतिक्रियावाद' के दा खेमो क विचारको ने शलभ को अपनी सूची से अलग रखा यह पीड़ा शलभ को रही है जैसाकि त्रयी 2 के सपादक डॉ॰ जगदीश गुप्त ने शलभ के एक पत्र को उद्धृत करके दिखाया है। मै यह मान भी लू, तो भी यह कहा जा सकता है कि युयुत्सावादी कविता के प्रस्त्रोता के रूप मे शलभ ने अपनी 'राह' स्वय निकाली और भूखी पीढ़ी और बिटनिक प्रभाव मे लिखी जान वाली यौनग्रस्त कविता के विकल्प मे उन्होने युयुत्सावादी कविता को सामने रखा। यही वह विदु है जहाँ मे शलभ की कविता "सहज सवेदनीयता के भिन्न आयामो को क्रमश आत्मसात् करती हुई प्रतिक्रियावादी सकीर्णताओ को तथा प्रगतिवादी पूर्वाग्रहो से सघर्ष करती हुई "मानवधर्मी" सहज कविता को वह 'अर्थ' प्रदान करती है जो उनकी कविता को समकालीन-सहज सवदनीय कविता से जोड़ती है। यदि हम समकालीन कविता के व्यापक परिदृश्य को ध्यान मे रखे तो हम पाते है कि यह 'सहज सवेदनीयता' उस अर्थ मे 'सहज' नही है जो हमे द्विवेदी काल मे प्राप्त है वरन् इस सहजता के नीचे 'ज्ञान-सवेदन' की अनेक 'अडरकरेन्टम' या अर्न्तधाराएँ प्राप्त हाती है जो ऊपर से तो 'सहज' प्रतीत होती है पर अन्तवर्ती धाराओ के कारण यह 'सहजता'

विचार-सवेदन की गहनता एव सरलता दोना का न्यूनाधिक रूप से लेकर चलती है। यहाँ पक्षधरता 'मानव' के प्रति है उससे सम्बंधित विचार सवेदना, परिवेश तथा ब्रह्माड से सम्बन्धित क्रियाओ घटनाओ प्रक्रियाओ से है कहने का तात्पर्य यह कि मानव नामधारी प्राणी के अस्तित्व एव सघर्ष मे जुड़ी शलभ की कविताएँ अनुभव एव सवेदना के गहरे स्तरा को आदोलित करती है, हम "सवेदित यथार्थ" के निकट ले जाती है। यही कारण है कि शलभ की कविता का अपना एक 'रग' है और अपना एक 'तुरग' है। यहाँ पर मेरा ध्यान कलकत्ता से प्रकशित एव प्रभाकर श्रोत्रिय द्वारा सपादित "वागर्थ" के प्रवेशाक (जनवरी 1995) की ओर जाता है जिसम शलभ की कविता "रग अपना एक" एक ऐसी कविता है जो रग और तुरग के गतिशील रूपा के द्वारा यथार्थ और सवदना के भिन्न आयामा मे प्रवेश करती है। कवि का यह 'तुरग' कैसा है-स्वय कवि का यह कथन लो

"बहुत चाहा गया इसको
पर किसी भी चाह के भीतर न लाया गया।
यह विलक्षण है कि जैसे ढग अपने एक।
रग अपना एक, और तुरग अपना एक ।।"

कवि के इस रग-ढग मे एक मस्ती है, 'जटिल जीवन जग है', सहज मानवपन है जो 'परमात्मा के पथा पर चल नहीं पाया', प्रकृति के प्रति एक रागात्मक सम्बन्ध है तथा 'अधेरो' स गुजरकर 'सवेरे' की तलाश है, यही नहीं कविता का परिदृश्य बदलता है और कविता यथार्थ के कटु-तिक्त रूप को समक्ष रखती है -

कभी तुम (तुरग-रग) भूँखवाली बस्तियो की/ओर भी हो लो/--
जहाँ कवल धुआँ-केवल धुआँ-केवल धुआँ ही है
कुआँ है एक जिसमे भर न पाई सपदा कोई
न कोई शक्ति।
इसको जगह पर बैठा दरिद्रात्मन दिवाद्रोही
बजाता जा रहा वेताल मुग्ध मृदग अपना एक
रग अपना एक और तुरग अपना एक।।

उस धुए से, करुण कराह से इस महाग्रह पृथ्वी को बचाने के उपक्रम मे कविता 'सभावना' की आर मुड़ती है और यहाँ पर ग्रह मडल की सापेक्षता मे पृथ्वी ही केद्र में नही है वरन् मानव-केद्र मे स्वय 'मै' हूँ-यह "मै" को ही बचाना जरूरी है-

बचाना ही पड़ेगा इस महाग्रह को
कि मेरे केंद्र मे वह चद्रमा के साथ बैठा है
उसे कुछ हो गया तो नष्ट होगा केंद्र मेरा ही।
कि मेरा केंद्र है ब्रह्माड का वह केंद्र
जिसके केंद्र मे मानुष खड़ा है और
मानुष केंद्र मे मै ही स्वय हूँ।

कवि के अनुसार भावी शती का "रेपता उज्ज्वल और विराट है", जिसकी छवियाँ ध्वनिया और रूपाकार इतने 'बड़े' है कि कोई भी अपने सारे जीवन मे उनका अनुभव एव साक्षात्कार नही कर पाएगा क्योंकि "सम्पूर्ण को क्या देख पाना सहज है इतना।" फिर भी मानव इस 'सहजता' को बचाने के लिए 'विज्ञान के विध्वश' से सजग है, और उसके सामने (सृजन मे) ज्ञान-दर्शन कला का वह धुला सुदर सुभग है जो कवि को यह कहने के लिए विवश करता है कि-

"फूटता हर कण्ठ से यह साम स्वर समवेत
शब्द आपना एक और तुरग अपना एक।(वागर्थ)

कविता की सरचना अत तक आते आते 'शब्द' और 'तुरग' पर समाप्त होती है जो परोक्ष रूप से 'शब्द' के सृजनात्मक पक्ष की ओर सकेत है। शलभ की कविता यात्रा से गुजरते हुए मुझे उपर्युक्त कविता इसलिए महत्त्वपूर्ण लगी कि यह कविता परोक्ष रूप से शलभ के विचार सवेदन के आयामो को 'जैविक' रूप मे प्रस्तुत करती है जो उनके कविता ससार मे न्यूनाधिक रूप से रचे बसे है। इन आयामो को थोड़ा विस्तार देना इसलिए जरूरी है जिससे कवि का सोच सवेदन और उसके सृजन का सापेक्ष सबध रेखांकित किया जा सके।

सबसे पहले कवि के उस सोच सवेदन को लिया जाए जो कविता के सृजन-पक्ष को अथवा कवि की 'रचना दृष्टि' को सकेतित करती है। नयी 2 मे सकलित एक कविता मे शलभ ने यह स्पष्ट घोषणा की कि 'तुम उसे (कविता) आत्मा का अनुवाद और मै अंतिम समय तक/ मनुष्य के साथ रहने वाला निर्णय कहता हूँ।" जब कविता 'आदमी' के पक्ष मे खड़ी होगी, तो वह मानव के राग तथा उसके सघर्ष को वाणी देगी और साथ ही, आज जो लिखा जा रहा है, उसमे "झाग झाग बहुत कुछ/आग कहाँ है/शब्दो म, अर्थो म, बिम्बो मे, ध्वनियो मे"। कवि का मनस् शब्द और अर्थ के

सबध को अर्थवत्ता देता है और साथ ही 'किताबो' के महत्त्व का भी स्वीकार करता है। 'उन हाथो स परिलित हूँ मै कविता संग्रह म वह एक जगह कहता है

'किताव/बचैनी क दौरान
पीठ पर रखी आत्मीय हथेली की तरह
लगी है मुझ।

इससे यह ध्वनित होता है कि कविता के समकालीन सदर्भ म 'किताब' (विचार की गतिशीलता) एक प्रतीक है जो सृजन के लिए विचार की गतिशीलता को महत्त्व देती है और वह भी 'रचना-दृष्टि' को व्यापक और बहुआयामी बनाने हेतु। ये विचार य सवेदनाएं और ये अभिवृत्तियाँ सप्रेषण की 'सहजता की माग करती है और शलभ के सृजन म यह सप्रेषण सहज रूप मे विद्यमान रहता है। यही कारण है कि वे अपनी गहरी से गहरी बात को सहज सप्रषणीय भाषा म व्यक्त करने म सफल होते है। उदाहरण के तौर पर विचार और सपना की जितनी महानता होगी उसके खतरे भी उतने ज्यादा हाग। यहाँ पर विचारो आदि के बड़प्पन को सघर्ष और द्वन्द्व की सापेक्षता म रखा गया है जो एक एतिहासिक सत्य है क्योंकि महान या बड़े विचारों की परम्परा का अधविश्वास से सघर्ष करना पड़ता है

बड़ी दुनिया
बड़े सपने और बड़े विचारा के
खतरे भी बड़े होते हे
बड़ी दुनिया के बड़प्पन
अपने खतरा के बड़प्पन पर जीता है
खतरा का यह बड़प्पन
एक बड़ी दुनिया की
एक बुनियादी जरूरत है।

मुझ शलभ की कविता म विचारा की बोझिलता नहीं प्राप्त हाती है, वरन् वहाँ पर विचार एक अन्तर्धारा के रुप मे कविता की सहज सवदना म एकाकार हो गए है। यदि गहराई से देखा जाए तो मानव सस्कृति और सभ्यता के विकास म "युद्ध" (सघर्ष) का प्रतीकार्थ जिस 'अर्थवत्ता' के साथ व्यक्त किया गया है, वह ऐतिहासिक प्रक्रिया म "द्वन्द्व क विचार का एक अन्तर्भूत 'सत्य' की तरह व्यक्त करता है। "पृथ्वी का प्रम गीत म सकलित कविया

मे शलभ की एक कविता का अश है

> विज्ञान युद्ध के भीतर से पैदा हुआ
> युद्ध के भीतर से पैदा हुई कला
> सस्कृति युद्ध के भीतर से पैदा हुई
> भूगोल की नयी पहचान बन कर।।

यहाँ पर 'नयी पहचान' का प्रयोग एक व्यापक सदर्भ की गवाही देता है, वह है दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य आदि जितने भी ज्ञानानुशासन है वे विकास प्रक्रिया मे नयी पहचान या अस्मिता को 'अर्थ' देते है। इस 'अर्थ देने की प्रक्रिया मे सघर्ष या द्वन्द्व का जितना स्थान है, उतना ही स्थान सयोजन या सश्लेष का है। सास्कृतिक प्रक्रिया मे द्वन्द्व और सश्लेष समानातर रूप से चलते है, और रचना-प्रक्रिया मे भी यही स्थित प्राप्त होती है। शलभ की कविताएँ द्वन्द्व को इसी रूप मे लेती है क्योकि 'द्वन्द्ववाद' की धारणा मे जहाँ वाद, प्रतिवाद है, वही सवाद या सश्लेष है। शलभ के रचना-ससार मे यथार्थ के बाह्य और आतरिक पक्षो को अर्थ ही नही दिया गया है, वरन् इस अर्थ देने मे सहज-रूपाकारो का सप्रेषणीय रूप भी प्राप्त होता है। यहाँ पर सवेदना आक्रामक नही है, वरन् कटुतिक्त यथार्थ के अनुभव को सहज सवेदनीय भाषा मे सकेतित करती है। सप्रदायवाद, हिसा तथा आतक क पूरे माहौल को कवि साकेतिक रूप मे प्रस्तुत करता हुआ मानो "मै" को पूरे परिवेश मे बिछा दता है।

> एक ख्याल आया है,
> मंदिर की तरह टूटा हूँ अभी अभी
> गिरा हूँ मस्जिद की तरह
> मकान की तरह जला हूँ अभी-अभी मे।

यही नही आज की राजनीति दुनियाँ को कहाँ ले जाएँगी, इसे कवि नही जानता है, लेकिन फिर भी उसे दो बाते साफ नजर आ रही है-एक तो हिस्सो मे 'नदी' का बटना तथा दूसरे, राजनीति के वात्याचक्र मे मै कही नही हूँ, यह 'मै' आम आदमी ही है

> 1 दो हिस्सो मे बट गयी है नदी
> दो दिशाओ मे जाती हुई चुपचाप
> कितनी कितनी धाराओ मे बटगी अभी
> बटेगी कितनी कितनो दिशाओ म एक साथ

2 मेरे बारे मे कोई भी नही सोच रहा है इस वक्त
इस वक्त पूरी दुनिया मे
कहीं नही हूँ मै।

शलभ की कविता म 'धूआँ' मात्र शब्द नही है, वरन् वह समाज म व्याप्त त्रासद स्थितिया का व्यजक है क्योकि वह ममाज म सर्वत्र व्याप्त है-"इतिहास मे हस्तक्षेप की तरह उपस्थित" है, कविता मे "वदरग विम्ब की तरह", ओजोन की पर्त से टकराता, ऋतुआ की प्रकृति को प्रभावित करता "यह धुआँ वहुत ही खतरनाक है।" "यह धुआ" शलभ की एक ऐसी कविता है जो आज के युग की त्रासद स्थिति को माकेतिक रूप मे व्यक्त करती है।

राजनीति मे किसी न किमी रूप म विज्ञान और धर्म जुड़े रह है जिन्हाने 'सत्ता' के इरादा को सफल होने म सहायता की है। शलभ भी विज्ञान को (उसके तकनीकी पक्ष को) सत्ताधारिया के उपयोग का माध्यम मानते है, और इस दृष्टि से विज्ञान के "विनाशकारी उपयोग का सपना देखने वाला कौन है सत्ताआ के सिवा" और यही नही इन सत्ताधारियो के लिए भाषा, ज्ञान-विज्ञान, यांत्रिकी, कविता, कला मात्र 'हथियार' के रूप मे ढले हुए है-

"भाषा हथियार म ढली इनके लिए
हथियारो मे ढला ज्ञान-विज्ञान
तकनीकी, ओद्योगिकी, यांत्रिकी ढली हथियारो मे
ढल गयी कविता, कला गायिकी
घातक लोग है ये
घातक इरादावाले
घातक हथियारो से लैस।

इम पूरे भयावह एव त्रासद परिवेश मे कवि दूर जाना चाहता है जहाँ 'सवेदना' का एक महज समार हो, जहाँ बच्चे, फूल और पत्ती का सहज सवेदनीय ससार हो

रॉकेटा, मिसाइला, वमा और रसायना स दूर
अपना दुनिया म वापस जा रहा हूँ म
एक वच्चा मेरे इतजार म है
इतजार म है एक फूल
एक पत्ती मेरे इतजार म है।

यदि गहराई से देखा जाएँ तो समकालीन कविता की सहज सवेदना जो पारिवारिक, प्राकृतिक, तथा जैविक रूपो की ओर जा रही है वह एक प्रकार मे उस मर्म या सवेदना की तलाश है जो एक तरह से इस भयावह यांत्रिक जीवन का एक विकल्प है जहॉं मानव मन शाति का अनुभव करता है। दूसरी ओर यह भी एक कटु सत्य है कि यह भयावह ससार हमारे लिए एक चुनौती है और कवि इस चुनौती को स्वीकार करता है, वह अपने तरीके से इस 'महाग्रह' को बचाना चाहता है जैसाकि मै लख के आरभ मे दी गई कविता "रग अपना एक" मे दिखा आया हूँ।

विज्ञान के इस तकनीकी पक्ष (या शक्ति पक्ष) के प्रभाव मे आज का कवि चिंतित है यह विज्ञान का मात्र एक पक्ष है, सम्पूर्ण विज्ञान नही क्योंकि विज्ञान का एक अपना वैचारिक या चिंतन पक्ष है जिसे हम 'विज्ञान-दर्शन' कहते है और बटरेन्ड रसेल जिसे विज्ञान का 'प्रेम-मूल्य' कहते है। एक वैज्ञानिक का वस्तु से विवेक सम्मत रागात्मक सबध होता है, यह भी एक तरह का 'माधुर्य' है जो किसी न किसी रूप मे ज्ञानात्मक-सवेदन को नयी दिशाओं की ओर ले जा सकता है। विज्ञान के प्रत्यय और सिद्धात भी प्रकृति, जगत मानव और ब्रह्माड को प्रयोग, प्रेक्षण और विवेक के द्वारा उस 'व्याख्या' को भी प्रस्तुत करते है जो हमे मानव, प्रकृति और ब्रह्माड के रिश्तो को एक "सगठित क्षेत्र" के प्रत्यय (यूनीफाइड फील्ड कान्सेप्ट) के अन्तर्गत लाता है। विकासवाद, सापेक्षवाद, अनिश्चितता का प्रत्यय, परमाणु सरचना तथा सृष्टि विकास आदि ऐसे प्रत्यय है जो हमारी 'सवेदना' को गहरा सकते है। यह एक अलग विषय है जिस पर मैने अपनी पुस्तको (यथा विज्ञान-दर्शन, साहित्य का अत अनुशासनीय परिप्रेक्ष्य, मुक्ति बोध काव्य बोध का नया परिप्रेक्ष्य तथा 'दिक्-काल सर्जना" आदि) तथा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओ मे (यथा साक्षात्कार, मधुमती, पहल, अक्षरा आदि) समय-समय पर लेख लिखकर इस विषय को 'अर्थ' देने का प्रयत्न किया है जो 'विज्ञान-युग' की एक जरूरत है। जब हम शलभ की कविताओ को लेते है, तो विज्ञान-दर्शन का यह पक्ष वहाँ पर रचनात्मक अर्थवत्ता बहुत ही कम प्राप्त करता है जो हमे न्यूनाधिक रूप से मुक्तिबोध, प्रसाद, विनय, अज्ञेय, बलदेव वशी, तथा विश्वम्भरनाथ उपाध्याय आदि कुछ कवियो म प्राप्त होता है। शलभ की 'सहज सवेदनीयता' विज्ञान बोध के रचनात्मक-पक्ष को विचार-सवेदन का अग बना सकेगी, यह मेरी मात्र प्रस्तावना है, एक आत्मीय प्रस्तावना।

शलभ के काव्य-ससार को समग्र रूप से लेने पर एक तथ्य जो प्रत्यक्ष होता है, वह है कवि के रचना ससार म 'मानवीय काल' का वह रूप जिसमे नकारात्मक एव सकारात्मक शक्तियो का द्वन्द्व भी है और साथ ही, इस द्वन्द्व मे उबरने की तीव्र आकाक्षा। ऊपर के विवेचन मे यह तथ्य प्रकट होता है क्योंकि काल के प्रवाह म एक 'समूचा घटनाक्रम' विद्यमान रहता है और काल की प्रतीति हम घटनाओ के माध्यम से करते है और दिक् की प्रतीति दो वस्तुओ के बीच के अतराल से करते है। यही कारण है कि शलभ एक कविता मे स्पष्टत यह कहते है "एक कवि/लिख रहा था/इस समूचे घटनाक्रम को/अपनी कविता मे/इस तरह"। शलभ मे समय या काल से जहाँ सघर्ष की स्थिति है, वही एक दूसरी स्थिति यह भी है कि काल स्वय आभारी है कि इस समूचे घटनाक्रम को व्यक्ति ने जी लिया-

> जीवन का,
> जीवन की तरह जी लिया तुमने
> समय ने व्यक्त किया
> तुम्हारे प्रति आभार।

समय यह 'आभारपरक रूप' मुझे अन्यत्र देखने को नही मिला-यह समय मानव-सापेक्ष है जो दृष्टा और समय के आपसी सबध को एक नए तरीके से सकेतित करता है। असल मे 'जीना' कहाँ घटित होता है, काल मे-घटनाओ के मध्य म। भाषा के स्तर पर 'क्रियाएँ' घटनाओ का ही प्रतिरूप है जिसमे दिक् का किसी न किसी रूप मे अन्तर्भाव रहता है। उदाहरण के तौर पर ऊपर दिए गए उदाहरण म "जी लिया तुमने" क्रिया है (घटना) और यह क्रिया-व्यापार (गति) 'दिक्' के कुछ न कुछ 'प्रदेश' को तय कर रही है। इस प्रकार दिक्-काल निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है जो एक वैज्ञानिक सत्य है। कवि हो या कोई व्यक्ति वह किसी न किसी रुप म अपने 'अनुभव-बिम्बो के द्वारा दिक्-काल को ही 'अर्थ' देता है। कवि भी यही कार्य करता है, और विचारक-चितक भी।

शलभ के रचना-ससार म ये अनुभव बिम्ब 'लोक' के अधिक है जिसमे परम्परा से प्राप्त बिम्ब व प्रतीक है तथा ज्ञान-विज्ञान के भी बिम्ब व प्रतीक है, लेकिन यह भी एक सत्य है कि ज्ञान-विज्ञान के रूपाकार

अपेक्षाकृत कम है। इसका एक कारण यह है कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के रूपाकार अभी हमारे सोच-सवेदन के उस रूप मे अग नही बन पाएँ है जो लोक या परम्परा से प्राप्त रूपाकार और आशय। हमारी सास्कृतिक प्रक्रिया मे ये 'नए' रूपाकार क्रमश अपना स्थान बनाएँगे जिसका आरभ हो चुका है।

शलभ के रचना ससार का एक अन्य ध्यान देने वाला क्षेत्र है प्रम और प्रकृति के सवेदना-चित्र या दृश्य। यहाँ पर कवि की मार्मिक सवेदना एक खास तरह की निश्छल और एकात्म-भाव की सृष्टि करती है। प्रकृति हो या प्यार कवि क लिए इनका महत्त्व निरपेक्ष नही है, वरन् उनका सम्बन्ध मानवीय सवेदना से है, तभी तो कवि त्रयी-२ मे कहता है-"रात की खुरदुरी आवाजो मे/एक संगीत है/एक शाश्वत पुकार/जीवन की/जो प्रत्येक जीवित सवेदना से जुड़ा है/किताब के एक खास पन्ने की तरह मुड़ा हुआ है/" "खास पन्ने की तरह मुड़ा हुआ" साकेतिक रूप से सवेदना की रेखीय स्थिति के स्थान पर उसकी वक्र या जटिल सरचना को समक्ष रखता है। यही नही, इन सवेदना-चित्रो व दृश्यो को 'महसूस' किया जा सकता है, उन्हे 'जिया' जा सकता है, लेकिन पूरी तरह से "लिखा नहीं जा सकता है तुमको अक्षरो मे। शब्द मे बोला नहीं जा सकता है तुमको।" यदि गहराई से देखा जाए तो यहाँ पर जड़ और चेतना का सापेक्ष सबध है क्योंकि 'जड़' मे भी जीवन है, चेतना है, यह एक वैज्ञानिक सत्य है। इस सत्य को कवि ने बहुत ही सधे एव अर्थवान् रूपाकार "ठूँठ" के द्वारा व्यक्त किया है-ठूंठ मे जीवन है/बलाती हुई लगातार/एक पत्ती है ठूँठ पर /" यही नही, उसकी सवेदना उस नकारात्मक स्थिति की ओर भी जाती है जहाँ प्रकृति या पर्यावरण को यांत्रिकता और उपभोग के कारण दूषित किया जा रहा है, तभी तो कवि को गोमुख, हरिद्वार और हरि की पैड़ी का "भूगोल टेढ़ा नजर आ रहा है तथा" तुम्हारे देश की धरती को/हरे भरे खेतो समेत उखाड़कर/इस्पात के खभो पर टाँग दिया है।" यह प्रदूषण का 'दैत्य' विज्ञान की तकनीकी का फल है और इससे विज्ञान ही लड़ सकता है, अपने मानवीय एव वैचारिक पक्ष के द्वारा। यदि ऐसा न हुआ तो भविष्य का रूप "इस्पात के खभो पर टगा हुआ' ही हो सकता है। कवि भविष्य के इस भयावह रुप के पति सचेत है।

कवि के पेम चित्रो मे समर्पण है, मिलन की आकाक्षा है, स्वय 'बड़े' हो जाने की अनूभूति है तथा प्यार, सुदर का, शिव का, सत्य का अर्थ देता है-यहाँ तक कि पूरे जीवन को-

प्यार के पास अपनी आँख होती है
अपनी भाषा होती है प्यार के पास
होती है अपनी राह
देखता,बोलता,चलता हुआ प्यार
जहाँ होता है
जिंदा रहता है जिन्दगी का अहसास
सुंदर को देखता/बोलता हुआ सत्य का
शिव की ओर ले जाता प्यार
जहाँ, जितना है, उतना ही प्यार।।

यहाँ पर 'प्यार' मात्र परिणय नही है, वरन् वह सृष्टि का एक 'तत्त्व' है तथा जीवन को अर्थदेने वाला रूप है। यही कारण है कि प्यार बगैर संघर्ष के सम्भव नही है, यहाँ तक कि जिसने प्यार नहीं किया वह युद्ध भी नही कर सकता है। युद्ध (संघर्ष) और प्यार का रिश्ता सापेक्ष है जिसे कवि ने अत्यंत सांकेतिक रूप से व्यक्त किया है। यह कविता "प्यार और युद्ध" अपने मे एक पूरा 'दर्शन' है जो मानव,प्रकृति और ब्रह्मांड मे प्यार और युद्ध के सांकेतिक रूप को प्रस्तुत करता है। घटना-प्रक्रिया और संरचना के रहस्य को जानना युद्ध के सांकेतिक अर्थ को प्रकट करता है। कविता की पंक्तियाँ है–

नही किया जिसने प्यार
युद्ध नही कर सकता है वह
युद्ध मे जाती है जान
जान देने की तमीज सिखाता है प्यार
युद्ध मे जन्म लेता है जीत का विचार
विचार को जिंदा रखता है प्यार

"विचार को जिंदा रखता है प्यार" यह पंक्ति विचार की गति एवं जीवंतता की ओर संकेत है जो प्यार के द्वारा ही सम्भव है। विचारो को यदि जीवित रखना है, तो उसे "प्यार" से युगानुसार संदर्भित करना जरूरी है, उसे 'डाग्मा' नही बनाना है। जब विचार 'डाग्मा' बनने लगता है, तो उसमें 'प्यार का तत्त्व' कम होने लगता है। मेरे विचार मे शलभ की यह कविता 'प्यार' और 'युद्ध' के अत्यंत व्यापक परिप्रेक्ष्य को समेटती है जो कवि की रचना-दृष्टि को एक व्यापक फलक प्रदान करती है।

प्यार मे मिलन का अर्थ है "हिस्सा हो जाना किसी की जिदगी का" और जब प्यार इस व्यापक रूप को गवाही देता है, तो वह एक व्यापक सौदर्य की अनुभूति प्रदान करता है। कवि की कविता "प्रवेश किया तुमने" मे अजता, एलौरा और कोणार्क का सौदर्य और स्थापत्य कवि मे प्रवेश कर उसे एक गहरी सवेदना और गहरे सौदर्य से भर देता है और वहाँ की एक एक मुद्रा और शिल्प मानो उसके जीवन मे रस-बस गई है

अपने
एक एक उभार मे अप्रतिम
अप्रतिम एक एक मुद्रा मे अपनी
शिल्प और शैली मे अद्वितीय
प्रवेश हुआ तुम्हारा,जीवन मे मेरे।"

इस प्रकार शलभ कर रचना-ससार यथार्थ के कटु-तिक्त रूप को, उसके सघर्ष को जहाँ सवेदना के स्तर पर व्यक्त करता है, वही यथार्थ के आतरिक पक्ष-प्रेम, प्रकृति और सौदर्य-को सवेदना का गहरा सस्पर्श देता है। इसका यह अर्थ नही है कि ये दोनो क्षेत्र निरपेक्ष है, वरन् सृजन के स्तर पर ये दोनो यथार्थ के पक्ष एक दूसरे के पूरक है क्योंकि कवि इन दोनो पक्षो को एक "रसायन" का रूप देता है जो हमारी चेतना को रासायनिक क्रियाओ से उद्वेलित कर देता है। सवेदना का यह उद्वेलित रूप एक सा नही है, वरन् भिन्न स्थितिया और परिवेश की सापेक्षता मे उसका कही तरल रुप प्राप्त होता है तो कही सघन रूप। समग्र रूप से शलभ का रचना-ससार सहज-संवेदना का ससार है जो सहज भाषिक सरचना द्वारा यथार्थ के भिन्न रूपो को सकेतित करता है। उसकी इस रचना-यात्रा मे सहज लोकधर्मी एव नगरीय रूपाकारो (यथा लड़की, फूल, नदी पहाड़, ठूँठ आदि) का रचनात्मक प्रयोग अधिक प्राप्त होता है, अपेक्षाकृत उन रूपाकारो के जो ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र से उठाए गए हो। शलभ का काव्य-मुहावरा और पंक्तियो की पुनरावृत्ति का आकर्षक ढग, अपने मे विशिष्ट है जो कवि की अपनी अलग पहचान बनाता है-इस 'पहचान' को अभी "ज्ञानात्मक सवेदन" से और अधिक व्यापक और अर्थवान् बनाना है क्योंकि कवि की रचनात्मक विकास-यात्रा अपने को ही लगातार 'तोड़ती' और 'सशोधित' करती चलती है। मेरा यह मूल्याकन भी एक प्रक्रिया है, अंतिम नही क्योंकि मुझे आशा है कि शलभ की रचनात्मकता अभी अनुभवो एव प्रतीतियो के अन्य अर्थवान् सदर्भो को अभिव्यक्ति प्रदान करेगी। ❑

नरेन्द्र मोहनः लम्बी कविताओं की संरचना

जब भी हम 'लम्बी कविता" की बात करते है, तब हमारे जहन में एक विशेष प्रकार की "संरचना" का बिम्ब उभर कर सामने आता है जो अपने में दीर्घ रचनात्मक कसाव और वैचारिक संवेदनात्मक द्वन्द्व को एक 'क्रमागत' रूप में प्रस्तुत करता है। इस कसाव एवं क्रमागत संरचना में चार तत्त्व प्रमुख होते है जो अपने द्वन्द्वात्मक रिश्ते के द्वारा लम्बी कविता की दीर्घ संरचना का अर्थ एवं गति प्रदान करते है। मेरे विचार में ये तत्त्व या घटक है-दृश्य घटना क्रम, पात्र या चरित्र तथा बिम्ब प्रतीक जो कमोवेश रूप से सापेक्ष एवं द्वन्द्वात्मक होते है। इसी सदर्भ में एक बात यह स्पष्ट करना जरूरी है कि 'संरचना' एक ऐसा प्रत्यय है जिसमें "सम्पूर्ण" और 'अंश' का सापेक्ष द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध रहता है और 'अंशों' के सहअस्तित्व से "सम्पूर्ण" (संरचना) का बिम्ब प्रत्यक्ष होता है। यही स्थिति "विश्लेषण" की भी है जिसमें 'सम्पूर्ण' खंडो में विभाजित होता है और पुनः खण्डो के सहअस्तित्व एवं संश्लेष द्वारा 'सम्पूर्ण' की व्यंजना होती है।[1] इसे हम माइक्रोकाज्म (खंड अंश) और मैक्रोकाज्म(सम्पूर्ण) की भी संज्ञा देते है जिसे दार्शनिक शब्दावली में "पिंड" और "ब्रह्मांड" भी कहते है। यदि हम गहराई में देखे तो लम्बी कविता की संरचना में माइक्रो (दृश्य घटना आदि) स्तर और मैक्रो (सम्पूर्ण) स्तर सापेक्ष एवं द्वन्द्वात्मक होते है और साथ ही, माइक्रो या लघु स्तर के घटक अपनी विकासात्मक और द्वन्द्वात्मक स्थिति में

1-फिलासफी आफ फिजिकल साइंस आथर इडिंगटन पृ॰27

लम्बी कविता की दीर्घ सरचना का एक कसाव एव सयोजन प्रदान करते है।

इस पृष्टभूमि के प्रकाश मे लम्बी कविताओ के इतिहास पर नज़र डाले तो हम पाते है कि परिवर्तित काल बोध के प्रकाश मे लम्बी कविताओ का आरभ छायावाद मे होता है जब निराला और प्रसाद ने क्रमश   राम का शक्तिपूजा" और "प्रलय की छाया' जैसी कविताओ का सृजन किया। यह उस समय की जरूरत भी थी क्योकि कवि काल दिक के यथार्थवादी एव ऐतिहासिक सदर्भो को अधिक व्यापकता अधिक विस्तार और अधिक वैचारिक-सवदनात्मक सवनता के द्वारा अर्थ देना चाहता था और यह क्रम आगे भी चलता रहा जिसने लम्बी कविता की सरचना को अर्थवत्ता प्रदान की। "दृश्यातर" सकलन मे डॉ॰ नरेन्द्र मोहन ने विमल कुमार के प्रश्नो के उत्तर मे यह बात ठीक कही है कि विचार कविता अपने रोल का शिद्दत के साथ निभा रही थी जबकि लम्बी कविता का रोल भिन्न है यह एक नए फार्म (सरचना) का आविष्कार है जो इतिहास की खोज के बराबर है जिसमे राजनैतिक आर्थिक एव सामाजिक स्थितिया और सरोकारो की समानान्तरता है।[1] मेरे विचार से चाहे छायावाद हो या नयी कविता हो या विचार कविता हो इन सभी कालखण्डो मे लम्बी कविताएँ अपने विकास-भंगिमाओ मे प्रमाद निराला, मुक्तिबोध धूमिल नरेन्द्र मोहन विनय आदि कवियो की एक लम्बी पंक्ति है जिन्होने लम्बी कविता के 'व्याकरण' को अर्थ दिया है और उसके स्वतत्र व्यक्तित्व को उजागर किया है। स्वय नरेन्द्र मोहन ने मुक्तिबोध के देय को, उनके महान प्रभाव को स्वीकार किया है जो यह सिद्ध करता है कि नरेन्द्र मोहन जैसे आज के कवि लम्बी कविता की परम्परा को गति दे रहे है। मेरे विचार से नरेन्द्र मोहन की दीर्घ सरचना मे इतिहास और यथार्थ के अनेक रग-रूप अपनी द्वन्द्वात्मकता में अर्थ प्राप्त करते है और विचार सवेदन के अनेक आयाम उस सरचना को 'न्यूनाधिक' रूप से कसाव एव सयोजन प्रदान करते है। लम्बी कविता मे विचार सवेदन के अनुक्रम मे कार्य-कारण श्रृखला का निर्वाह होता है जो घटनाओ दृश्यो पात्रो और बिम्ब प्रतीको के द्वारा उस अनुक्रम को एक सूत्र मे बाधते है।

यह एकसूत्रता नरेन्द्र मोहन की तीन लम्बी कविताओ मे क्रमावश रुप मे प्राप्त होती है। एक "अग्निकाड जगह बदलता", 'एक अदद सपने के लिए" तथा "खरगोश-चित्र और नीला घोड़ा"- ये तीनो लम्बी कविताएँ

[1] दृश्यातर, पृ॰ 107

नरन्द्र माहन की उस रचनात्मकता को प्रकट करती है जा दीर्घ आयाम वाली काव्य सरचना को यथार्थ के गहरे और व्यापक आशया को एक नाटकीयता प्रदान करते हुए, कथ्य और चरित्र की द्वन्द्वात्मक स्थिति को ढालते हुए तथा विचार-सवेदन के भिन्न आयामा का सकेतित करते हुए, वे लम्बी कविता क ढाँचे का 'अर्थ' प्रदान करते है। य तीना रचनाएँ स्वतत्रता के समय म दश विभाजन की त्रासद स्थिति को (एक अग्निकाड जगहे बदलता) स्वतत्रता के पश्चात् सपना क टूटन क मोहभग स उत्पन्न विक्षाभ और 'अधकार' का भेद कर 'प्रकाश' की भावी सकल्पना का (एक अदद सपने के लिए) तथा यथार्थ के बाह्य आतरिक द्वन्द्व से सृजन-प्रक्रिया की सघपशील एव द्वन्द्वात्मक स्थिति (खरगोश चित्र और नीला घाड़ा) को घटनाआ चरित्रा और रूपाकारा के सापेक्ष सम्बन्ध द्वारा दीर्घ-सरचना के सयोजन एव कसाव को य रचनाएँ बेखूबी व्यक्त करती है। 'अग्निकाड जगहे बदलता' म 'पथराई हुई दहशत' युसूफ और विष्णु का द्वन्द्व टापा टेकसिह (मटो की कहानी) आग का दरिया (करतुल एन हैदर का उपन्यास) जैसी कृतिया से कथ्य को गहराने की प्रक्रिया, नहरु युग की नौटकी (व्यग्य) का चित्र, इतिहास और स्मृति का द्वन्द्व, महात्मा गाँधी के सिर गायब होने की व्यग्यात्मक घटना तथा अत म भारत के नक्शे पर अग्निकाड अपनी जगहे बदलता हुआ नजर आता है। यह पूरी कविता इन्ही दृश्यो, घटनाआ, प्रतीका, और चरित्रो के द्वारा समकालीन यथार्थ के ऐतिहासिक व्यग्य को सकेतित करती है। मेरे विचार स यह कविता वही पर समाप्त करनी चाहिए थी जहाँ "अग्निकाड जगहे बदलता" चित्रित किया गया (अत मे) है और उसके बाद गद्यात्मक पक्तिया कविता के प्रभाव को कम कर देती है और "खुले अत" (आपन एड) की अर्थवत्ता का पृष्ठभूमि म ल जाती है। आज भी भारतीय एव अन्तर्राष्ट्रीय सदर्भ म यह 'अग्निकाड' निरतर अपनी जगहे बदलता हुआ नजर आता है। यह एक सर्वग्रामी प्रतीक है और कवि इस प्रतीक का एक व्यापक अर्थ प्रदान करता है।

इसी प्रकार "एक अदद सपने के लिए" मे कवि, (मै) समरजीत और सतवत का जन्म 37 वर्ष पूर्व हुआ था और आजादी के दिन और उसके बाद उनके सपने उन्हे बहुत "परशान" करते है और समरजीत परेशान है कि उस सपन नहीं आते, लेकिन सभी क सामने 'इतिहास' घटित होता है (जलियावाला बाग) और उनकी 'याद म कुडलीबद्ध है एक आतक, सपने की जगह"1 इसक बाद 'दृश्य और घटनाएँ' 'आदमी और लाश' गोलिया,

हादसे और किले के अदर बाहर के दृश्य वोटो और लाशा का अतर-सम्बन्ध (व्यग्य), गुलाब गध का क्रमश बारुद गध मे तब्दील होना, "नए समाज और व्यवस्था की राह तकते-तकते आँखे का दुखना शहर मे जगल और कवि के भीतर जगल का फैलना और इस सारे आतंकित अधकार भरे वातावरण मे कवि के "हाथो मे कलम देना" इसके बाद अधेरे के भयावह रूप मे कलम को छोड़कर विस्फोट की अवस्था मे 'किले' की ओर जाना और "किले का तलघर मे और तलघर का किले मे तब्दील होना। किले की बदबू से आक्रात कवि प्रश्न करता है" मेरी खुशबू कहाँ है?, गुलाबो की खुशबू कहाँ है? सतवत कहाँ है?। यही नही हर विस्फोट मे गुलाब जलते हुए नजर आते है। पूरी स्थिति इस रुप मे उभरती है 'मै सत्र रह गया हूँ, और दु स्वप्न के बीच, कहा दफन हो गए है गुलाबो और नाग यज्ञो के सपने।" लेकिन इस पर भी कवि को यह विश्वास है कि वह चुप्पो से घिरते हुए भी भावी सपनो की भाषा को कमश ढाल रहा है

"इससे पहले
कि मै चुप्पी मे घिरे-घिरे मरू
मै पहुँच रहा हूँ मिट्टी की जड़ो तक
ढल रहा हूँ, प्रतीको मे मिथको मे
ढाल रहा हूँ सपनों को भाषा मे"

यह कविता जहां एक ओर यथार्थ के त्रासद एव सघर्षशील रूप को व्यक्त करती है, वही यथार्थ और सपनो के द्वन्द्वात्मक रिश्ते को भी उजागर करती है। सृजन और विचार-क्रम इसी यथार्थ और स्वप्न के द्वन्द्व और सवाद को मुखर करते है। सृजन प्रक्रिया मे 'मै' मिट्टी की जड़ो तक पहुँचता है और अपने को रूपाकारों, प्रतीको, मिथको और आद्यरूपा के द्वारा रूपातरित करता है और इस प्रकार भावी स्वप्नो को भाषिक-सरचना मे ढालता है। यह एक सतत् विकासमान सृजन-प्रक्रिया है। इसी प्रकार की सृजन प्रक्रिया का सुन्दर द्वन्द्व एव सश्लेष नरेन्द्र मोहन की सुदर कविता 'खरगाश-चित्र और नीला घोड़ा' मे अर्थवत्ता प्राप्त करती है। इस पूरी कविता की दीर्घ सरचना खरगोश चित्र, सुचित्रा, सलमान (चित्रकार) और लड़की के चित्र के आपसी द्वन्द्व से एक नाटकीय परिदृश्य मे "हादसा से गुजरते हुए स्वय चित्र बन जाते है, वे बनाएँ नही जाते है" - इस महत्त्वपूर्ण सत्य को क्रमश अर्थ प्रदान करते है। कविता का आरभ एक नाटकीय रूप मे होता है जब सुचित्रा कवि-कलाकार सलमान से एक चित्रप्रदर्शिनी म

मिलती है और 'सृजन क्या है' यह सलमान म पूछती है। जब उसका उत्तर वह सलमान मे नही पाती है तब वह प्रतीकात्मक भाषा म खरगोश चित्र की ओर सकेत करती हुई फ्रेम से बाहर आ रहे उनकी "मासूमियत" और "सहमेपन" की ओर सकेत करती है। असल मे यह 'मासूमियत और सहमापन' आज की सवेदनहीन स्थिति क प्रति एक सकेत है जिसे अर्थ एव गति देना रचनाकार का मुख्य कर्म है। इस चित्र के पीछे और बाहर बाह्य यथार्थ का भयावह रूप है जब लड़के और खरगोश लाशो म परिवर्तित होते है और यह प्रश्न गूँजता है-

चित्र है तो सहमा हुआ क्यो है?
लाश सा क्यो दिखता कभी कभी

★ ★ ★

कब तक चुप रहोगे आप ?

यह सारी दशा रचना प्रक्रिया का द्वन्द्व है जो सृजन को सलमान के शब्दो म " एक कील सा गढ़ता, नाल सा ठुकता" और इसी के साथ "अर्थ की तलाश करता, अर्थ से परे जाता मन"। यह खरगोश कभी भागता, कभी जख्मी होता और कभी अतरात्मा के गलियारो मे "पकड़ मे आता, पकड़ मे नही आता।" ये सारी स्थितियाँ सृजन के द्वन्द्व को प्रतीकात्मक रूप मे व्यक्त करती है। यही नही सृजन-कर्म को व्यक्त करने के लिए कवि ने "रेखागणित" का सुन्दर विम्ब इस प्रकार व्यंजित किया है जो रेखाओ का नया-अपूर्व सयोजन है-

" रेखागणित चरमरा कर टूटता
रेखाओ के नए और अपूर्व सयोजन मे।"

एक अन्य सृजन विम्ब है "सृजन प्रेम है, सुचित्रा और प्रेम लड़की" यहाँ पर सृजन-प्रेम और लड़की इसलिए एक है क्योंकि:-

"एक हो जाते है तकलीफ और उल्लास
पीड़ा और सुख, साकार और निराकार
सृजन मे, प्रेम मे, लड़की मे।"

सलमान के लिए सुचित्रा उसकी पेटिग की लड़की है और इस प्रकार दी गयी दुनिया मे से नई दुनिया जन्म लेती है। यथार्थ और स्वप्न सृजन मे सापेक्ष है। फिर खरगोश चित्र मे वह समा गई और अपने को "फ्रेम के बाहर" महसूस करने लगी। खगोश चित्र उसके अदर कुलाँच भरने लगा।

वह नीले घोड़े पर (कल्पना सवदना) सवार "जिदगी क लय" की कविता लिखने लगी-एक वृहद् कविता-एक ब्रह्माड कविता। शब्दो के अदर एक ज्वालामुखी धधकने लगता और सुचित्रा को लगता "क्या सरक जाता ज्वालामुखी मेरी कविताओ मे।" एक आतक और हिसा की आक्रामक मुद्रा जिसका असर चमडी के नीचे काई हरकत नही करता"। यह अदर और बाहर का द्वन्द्व (बाहरी और अदरूनी आग) एक सत्य है और यह भी एक पीड़ा है कि "इस बहने हुए लावे से कविताआ का क्या नही बचा पाती।" सुचित्रा ने बेहोशी के बाद सलमान से प्रश्न किया कि तुमने लपटो से घिरी लड़की का चित्र क्यो बनाया। इस पर सलमान एक कान्ट्रास्ट का चित्र प्रस्तुत करता है कि नीले आसमान म उडते परिंदे का चित्र बनात बनाते न जाने कैसे उभरने लगता है लड़की का लपटो से घिरा दूसरा चित्र। इस स्थिति म चुप कैसे रहा जा सकता है जब जद्दोजहद इतना तीव्र है, इस पर सलमान सुचित्रा से (जो पेटिग की लड़की भी है) से कहना है -

"हम चुप कहा है
हमने अपनी आत्माओ की गहराई से
चित्रों की रचना की है
और हमारी आत्माओ म उतर गयी है
चित्रो की रेखाए, रग और प्रतीक
सुचित्रा! हमने वरण किया है एक दूसरे का।

अत मे, पहचानी हुई वे ही छायाएँ अब एक साथ उनकी ओर बढ़ रही है और वे देखते है खरगोश चित्र की तरफ जो भाग रहे है, फ्रेम से टकरा रहे है, लहूलुहान हो रहे है, लेकिन इस पर उनकी ऑखो मे "दुलार है, दर्द है हमदर्द का।"

इस प्रकार यह पूरी कविता सलमान, चित्र, सुचित्रा, नीला घोड़ा, खरगोश तथा छायाआ की सयोजना के द्वारा सृजन-कर्म के सघर्ष को, यथार्थ और स्वप्न को, तथा अदर और बाहर के द्वन्द्व को जिस पतीकात्मक रूप से, घटनात्मकता एव नाटकीयता के साथ प्रस्तुत करती है, वह अपने मे एक अद्भुत सरचना है। मेरी दृष्टि से, "खरगोश-चित्र और नीला घोड़ा" नरेन्द्र मोहन की दीर्घ सरचनावाली कविताआ म अपना प्रमुख स्थान रखती है क्योंकि इस कविता मे पात्र, घटना और वैचारिकता के भिन्न आयाम इस प्रकार एकाकार हो गए है जो उनकी अन्य लम्बी कविताआ म इस रूप मे प्राप्त नही होते।

अब मै नरेन्द्र मोहन के विचार-सवेदन के उन आयामो की ओर सकेत करना चाहूँगा जो इन कविताओ मे यत्र तत्र बिखरे है। सृजन-प्रक्रिया पर मै ऊपर कह चुका हूँ जो यथार्थ और स्वप्न के द्वन्द्व को किसी न किसी रूप मे व्यजित करते है। इसके अतिरिक्त चेतना का गतिशील रूप, इतिहास की धारणा, काल और क्षण तथा राजनैतिक आशयो का जो सवेदनात्मक रूप इन कविताओ मे रचनात्मक अर्थवत्ता प्राप्त करता है, वह कवि के सोच-सवेदन को बिम्बित करता है।

चेतना मानसिक ऊर्जा का रूप है जो विकासात्मक एव द्वन्द्वात्मक है। यह चेतना, जो हँसी के समान है, वस्तुओ में अन्तर्निहित रहती है क्योंकि यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि मन और पदार्थ सापेक्ष है, वस्तु की क्रियात्मकता चेतना के द्वारा ही होती है, अत यह चेतना चीजो का हिस्सा बन कर जीवन के बड़े मूल्य की कल्पना करती है।

> हँसी जो एक चेतना सी जन्य हो जाती है चीजों मे
> चीजों का हिस्सा बन,
> और छा जाती है सभी पर एक जुनून सी
> इजहार करती जीवन के बड़े मूल्य की कल्पना का।"

(एक अग्निकांड जगहें बदलता)

यहाँ पर चेतना और पदार्थ जगत के सापेक्ष सम्बन्ध को एक मूल्य की सकल्पना से जोड़ा गया है इसमे हुआ यह है कि बिना 'मूल्य' या आदर्श के मानवीय क्रियाएँ दिशाहीन हो सकती है और इस तरह कवि के सामने मूल्य भी एक मानवीय चेतना के भावी विकास से गहरा सम्बन्धित हो जाता है। यदि गहराई से देखे तो उपर्युक्त पंक्तियाँ एक *अन्य सत्य* को उजागर करती है कि चीजे (यथार्थ) और आदर्श (मूल्य) चेतना के द्वैत रूप नही है, वरन् यथार्थ और आदर्श सापेक्ष है, अन्योन्यपूरक हैं। मेरे विचार से कवि ने एक दार्शनिक प्रत्यय को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दी है। इसी प्रकार *सम्बन्धों की आधुनिक त्रासदी यह है कि वह लीक पर एक औपचारिकता के* लिए खोखली रिवायत की तरह चल रही है -

> "लीक पर चुपचाप चलती रही
> रिश्तों की खोखली रिवायत का झेलती-स्वीकारती
> दबी सहमी

सुरक्षा की वेदी पर
फर्ज की आरी से कटती रही"

(खरगोश चित्र और नीला घोड़ा)

क्या हम सम्बन्धो की इस विडम्बना को चाहे अनचाहे ढो नहीं रहे है?

नरेन्द्र मोहन की इन रचनाओ म एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक आयाम है काल और इतिहास के सदर्भ का। नरेन्द्र की ये तीनो कविताए किसी न किसी रूप मे ऐतिहासिक काल से जूझती नजर आती है एक ऐसा इतिहास जो मानवीय सघर्ष एव गति से सबंधित है। जहाँ तक काल की धारणा का सम्बन्ध है वह एक व्यापक प्रत्यय है जिस रचनाकार अनुभव-बिम्बो के द्वारा गहण करता है, और दूसरी ओर इतिहास जो मानव का होता है, वह काल मे घटित होने वाली एक विशेष घटना है जो अतीत और भविष्य को वर्तमान प्रतीति बिदु की सापेक्षता मे व्याख्यायित करती है। ये तीनो लम्बी कविताएँ इतिहास के वर्तमान खण्ड के द्वारा अतीत और भविष्यत् को एक सूत्र मे बाँधने का प्रयत्न करती है क्योंकि कवि जहाँ एक ओर स्मृतियो (अतीत घटनाए) का जिक्र करता है वही वह भावी सभावना को भी सकेतित करता है जैसाकि मे उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट कर चुका हूँ। यदि गहराई से देखा जाएँ तो घटनाएँ (क्रिया-पद) चरित्र तथा रूपाकार ये सभी ऐतिहासिक काल को पकड़ने का प्रयत्न करते है क्योंकि उन्ही के द्वन्द्व के द्वारा काल की रेखीय एव चक्राकार गति अग्रसर होती है। यही घटनाओ की समग्र गतिशीलता है जो काल को व्यक्त करती है। लम्बी कविताओ मे काल का यह गतिशील रूप दीर्घ आयामी होता है ओर जो कवि इस दीर्घ आयाम को रचनात्मक कसाव मे रूपातरित कर देता है, वह कवि लम्बी कविता का सार्थक कवि कहा जा सकता है और नरेन्द्र मोहन की ये तीनो कविताएँ "न्यूनाधिक" रूप से इस माग को पूरा करती है।

"एक अग्निकाड जगहे बदलता' एक ऐसी कविता है जो इतिहास की सवेदना को अर्थ प्रदान करती है। यहाँ पर इतिहास मात्र तारीख (तिथिक्रम) नही है, ये तो इतिहास का कच्चा माल है, जिसे इतिहासकार, रचनाकार और विचारक अपनी विवेचना से अर्थ प्रदान करता है, उसमे प्राण फूँकता है। यहाँ पर कवि का यह प्रश्न कितना प्रासंगिक है जो इतिहास के व्यापक सदर्भ को उजागर करता है

"कहते है तारीख इतिहास है और तारीख मुझ याद नही
तो क्या मैं इतिहास बाहर हूँ
मुझे याद है इतिहास से जुड़ी घटनाए और युसूफ म जुड़े व्यग्य
घटनाओ और प्रसगो से जुड़ी और सोच म जुड़ा एहसास
मेरी नजरों में इतिहास को
एक कौध की तरह फेंकता-फैलाता"

यहाँ पर सबसे महत्त्वपूर्ण बात है इतिहास की प्रक्रिया म सोच से जुड़े एहसास का महत्त्व और इस महत्त्व का अर्थवत्ता प्रदान करता है व्यक्ति और समूह का रिश्ता। इसी के साथ एक अन्य तत्त्व है स्मृति जो ऐतिहासिक प्रक्रिया का एक अग है, उसे इतिहास स बाहर नही रखा जा सकता है क्योंकि वह जातीय-मनस् (साइकी) का अभिन्न अग है। यही कारण है कि कवि को देश के नक्शे में वह नदी (रावी) नही दिखई दती है, पर उसे जाति के इतिहास से कैसे बाहर करूँ-यह पीड़ा-व्यथा कितनी गहरी है, कितनी मारक है जो देश के विभाजन स उपजी उस सवेदना को उजागर करती है जो इतिहास का एक व्यग्य है

"देश के नक्शे में नही है वह नदी
न सही
नक्शे में न होना इतिहास में न होना कैसे मान लूँ?
रावी को अपने भीतर
बहने से कैसे रोक लूँ
उसकी उपस्थिति के एहसास और इतिहास को
कैसे नकार दूँ।"

क्या यही दर्द फिलिस्तीनवासियों का नही है जो अपने ही इतिहास से बाहर किए जा रहे है? यह जातीय इतिहास का मनस् है जो हमे बार-बार प्रतीकों मिथको और आद्यरूपों की ओर ले जाता है जिसे कवि "एक अदद सपने के लिए" मे अर्थ प्रदान करता है जिसकी ओर मै पूर्व ही संकेत कर चुका हूँ।

इस इतिहास का सम्बन्ध निरपेक्ष नही है वह समाज सापेक्ष है और साथ ही राजनीति सापेक्ष। कटु तिक्त यथार्थ इन कविताओं में उभर कर आता है जो एक प्रकार से ऐतिहासिक "व्यंग्य" को प्रक्षेपित करता है जैसा कि उपर्युक्त लम्बी कविताओं के विश्लेषण से स्वय स्पष्ट है। क्या ये

कविताएं यह व्यक्त नहीं करता है कि इतिहास प्रक्रिया के किसी एक बिंदु पर यदि निर्णय गलत हो जाएँ तो पूरी की पूरी जाति और उसका इतिहास एक त्रासद और भयावह 'अग्निकांड' से गुजरता है ये त्रासद स्थितियाँ समाज और जाति की प्रत्येक क्रिया में बिम्बित होती है। 'इन कविताओं को इस परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना आवश्यक है।

इन लम्बी कविताओं में एक अन्य तत्त्व है तीन विधाओं का एक साथ संयोजन। ये विधाएं हैं नाटक कविता और आलोचना। नरेन्द्र मोहन का सारा कृतित्व इन तीनों विधाओं का "गतिशील" रूप है और उनकी लम्बी कविताओं में नाटकीयता (संवाद) का तत्त्व उनके नाटककार का रूप है कवि संवेदना एवं कवि चित्त उनकी कवि प्रकृति है जो उनके कवि व्यक्तित्व का अंग है और उनके आलोचनात्मक व्यक्तित्व का वह पक्ष जो विश्लेषण एवं वैज्ञानिक दृष्टि से युक्त है उनकी कविताओं में ध्वनित होता है। ये सभी कविताएँ विश्लेषण एवं कार्य कारण शृंखला को किसी न किसी रूप में संकलित करती हैं जो मूलतः घटनाओं और दृश्यों के क्रमिक परिवर्तन और उनके अंतः सम्बन्ध को प्रकट करती है। मैंने उपर्युक्त कविताओं के विश्लेषण से इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

अंत में एक बात और। इन कविताओं से तथा अन्य कविताओं से गुजरते हुए मुझे हमेशा यह महसूस होता रहा कि कवि अधिकतर आम और सामान्य रूपाकारों का ही प्रयोग करता है जो उसकी रचनाशीलता को सहज-संवेदनीय बनाते हैं। लेकिन उसके काव्य में उन रूपाकारों (प्रतीकों बिम्बों) का प्रयोग मुझे कम ही प्राप्त हुआ जो विज्ञान-दर्शन तथा अन्य अनुशासनों से लिए गए हों जैसा कि मुक्तिबोध, विनय, बलदेव वंशी राजेन्द्र कुमार तथा विश्वंभरनाथ उपाध्याय आदि में प्राप्त होते हैं। इन रूपाकारों का "रचनात्मक" प्रयोग भी 'संवेदना' का अंग बन सकते हैं जो हमारे अध्ययन-मनन पर आधारित है। मेरा यह मानना है कि विचार-संवेदन के अनेक आयाम हैं और इसके लिए जितनी अनुभव की जरूरत है, उससे कहीं अधिक अध्ययन-चिंतन की अथवा विचार-साहित्य के मंथन की। इसे ही मैं विचार-संवेदन की गतिशीलता कहता हूँ। मुझे आशा है कि नरेन्द्र मोहन के पास वह दृष्टि और संवेदना है जो उपर्युक्त विचार-संवेदन को नए आयाम दे सकती है।

❑

विजेन्द्र का रचना संसार

समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य अत्यत व्यापक है और इस परिप्रेक्ष्य म विचार-सवेदन के विविध आयाम यथार्थ के आतरिक एव बाह्य रूपा को अर्थवत्ता द रहे है। यथार्थ का यह अतर-बाह्य द्वन्द्व जहाँ सृजन को गति देता है, वही जीवन, जगत और ब्रह्माड के प्रति एक "रचनात्मक-दृष्टि" देता है। इस रचनात्मक दृष्टि के विकास म 'सवेदना' का जैविक स्वरूप मुखर होता है जो विचार की गतिशीलता के द्वारा यथार्थ के भिन्न आयामा को "अर्थ" देता है। आज की हिंदी कविता विचार-सवेदन के इसी रूप का व्यक्त कर रही है जिसमे समाज, राजनीति, अर्थनीति, विज्ञान बोध, जनवादी सरोकार, प्रेम-सौदर्य क रुप, प्रकृति के भिन्न सदर्भ तथा रचना-कर्म की सघर्षशीलता के दर्शन हो रहे है। समकालीन कविता मे जनवादी सरोकारो और उसी के साथ उपर्युक्त सदर्भो का उसम सनिवेश एक ऐसा परिदृश्य है जो वस्तुगत यथार्थ के साथ आतरिक यथार्थ को भी महत्त्व देता जा रहा है। इस सदर्भ मे इधर कुछ वर्षो से कविया की एक ऐसी पक्ति सामने आ रही है जो जनवादी सरोकारा के तहत अन्य सरोकारो को भी अर्थ दे रही है। इस पक्ति मे नद चतुर्वेदी, ऋतुराज, विजेन्द्र, विश्वभरनाथ उपाध्याय, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, नीलाम, विनोद कुमार श्रीवास्तव तथा कुमारेन्द्र फरसनाथ सिह आदि कवि जनवादी परम्परा को व्यापक मानवीय सदर्भो एव सवेदनाओं से जोड़ रहे है। मै इस पूरी परम्परा के सदर्भ मे विजेन्द्र की सम्पूर्ण काव्य यात्रा को उपर्युक्त सदर्भो मे मूल्याकित करना चाहूँगा।

आरभ में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर सकेत जरूरी है कि किसी

भी रचनाकार को महज एक 'फ्रेमवर्क' मे देखना, उसके रचना-कर्म के भिन्न आयामो के प्रति शायद पूरा न्याय न करने की स्थिति उत्पन्न कर सकता है, और यह हमारी आलोचना मे काफी हुआ है और हो रहा है। यह हो सकता है और होता है कि कोई रचनाकार विशेष 'विचार-दर्शन' से प्रभावित हो, लेकिन उसके बावजूद वह अन्य सरोकारो को उसके 'तहत' लोकेट करने मे समर्थ हो, और यह 'सामर्थ्य' उन रचनाकारो मे सामान्य रूप से होती है जो विचार-साहित्य के भिन्न आयामो से टकराते है और उन्हे 'सवेदना' के स्तर पर रूपातरित कर एक प्रतिविश्व (एंटी यूनीवर्स) की रचना करते है जिसमे यथार्थ और सत्ता के भिन्न सदर्भ अपनी "अर्थवत्ता" प्राप्त करते है। विजेन्द्र की रचनाशीलता को इस व्यापक सदर्भ मे विवेचित करना जरूरी है क्योंकि विजेन्द्र जनवादी परम्परा के कवि होते हुए भी विचार-सवेदन के उपर्युक्त सरोकारो को अपनी रचनाशीलता मे "अर्थ" प्रदान करते है। यहा पर मै यह भी स्पष्ट करना चाहूँगा कि विजेन्द्र तथा अन्य कवियो को मार्क्सवादी या जनवादी कह कर, उन्हे एक निश्चित 'फ्रेमवर्क' के तहत विवेचित-मूल्याकित किया गया है, और इस प्रकार उनके अन्य रचनात्मक सरोकारो को वह महत्व नहीं दिया गया जो देना चाहिए था। विजेन्द्र की काव्य यात्रा अनेक आयामी है और जनवादी सरोकार उन्ही आयामो मे एक महत्त्वपूर्ण आयाम है जो अन्य सरोकारो और आशयो से सयुक्त होकर, एक व्यापक परिप्रेक्ष्य को उद्घाटित करता है।

सबसे पहले मै 'जनवाद' की अवधारणा को इस सदर्भ मे लेना चाहूँगा जो एक व्यापक विचार-दर्शन है जिसके विकास मे अनेक एतिहासिक शक्तियो का हाथ रहा है। इस विकास मे प्रजातांत्रिक मूल्यो, जन-मानस की आकाक्षाओ, मार्क्सवादी-दर्शन, गाँधी दर्शन, जन-नायक की धारणा, उपनिवेशवादी शोषण, विज्ञान और उसकी तकनीक का विकास तथा उन यूरोपियन निर्माताओ की लम्बी पंक्ति (यथा कम्पावेल, थामस मूर, आमुप(यहूदी), बुद्ध, रूसो, बेकन आदि) जिनहोने किसी न किसी रूप मे यूरोपियन-समाजवाद की कल्पना की।[1] इस जनवाद के व्यापक परिप्रेक्ष्य मे मात्र सर्वहारा ही नही है, वरन् वह सारा शापित-पीड़ित वर्ग है जो सघर्षरत है। इसमे नारी-शोषण भी है, निम्न तथा मध्यवर्ग है, मजदूर-किसान है

1 इस पक्ष का पूरा विवेचन महापंडित राहुल ने अपनी पुस्तक "मानव समाज" मे किया है जिसने जनवादी चेतना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की।

तथा साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी शोषण की वह प्रक्रिया है जिसने तीसरी दुनिया को भिन्न-भिन्न तरीकों से शोषित किया है। यह शोषण राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहा है जिसमें आर्थिक शोषण भी शामिल है। यही नहीं, इस शोषण की जड़ भीतरी भी है जो मानसिक शोषण और मानसिक गुलामी की पर्याय है जिससे कोई भी जाति अपनी अस्मिता खोने लगती है। इस दृष्टि से विजेन्द्र तथा अन्य कवियों की रचनाशीलता को देखा जाए तो हम स्पष्ट पाते है कि विजेन्द्र जनवाद के इसी व्यापक रूप से टकरा रहे है, कभी मैक्रो स्तर पर तो कभी माइक्रो स्तर पर। उनके सारे मानवीय एवं वैचारिक सरोकार इसी जनवाद की केंद्रीय धुरी के चारों ओर घूमते है और उनकी काव्य-भाषा इस धुरी से इस कदर जुड़ी हुई है कि शायद वह उससे अलग नही की जा सकती है। उनकी भाषा का जनपदीय लोकधर्मी रूप अपने मे 'विशिष्ट' है, और वह एक एसे 'मुहावरे' का सृजन करता है जिसमे एक तरह की ताजगी है और "अर्थ" को गहराने की क्षमता। यह क्षमता क्रमिक विकास प्राप्त करती है, जिसकी शुरूआत "ये आकृतियाँ तुम्हारी" कविताओं से होती है और क्रमश भाषा का यह 'मुहावरा' "चैत की लाल टहनी", "उठे गूमड़े नीले" तथा 'धरती कामधेनु से प्यारी' में अपना निखार प्राप्त करता है। इस भाषिक सरचना में कभी-कभी जनपदीय-ग्रामीण-क्षेत्रीय शब्दो का प्रयोग इतना हावी हो जाता है कि अर्थ की प्रतीति मे बाधा उत्पन्न होने लगती है, यह स्थिति आरभ के सग्रहो में है, लेकिन आगे के सग्रहो मे कवि इससे उबरने की कोशिश करता है और काफी सीमा तक सफल होता है। यह पूरा रचनात्मक प्रक्रम सृजन के स्तर पर भाषा की अपनी निजी "भंगिमा" की तलाश है जो मेरे विचार से विजेन्द्र की भाषिक सरचना का मुख्य तत्त्व है। इसी भाषिक सरचना मे क्रमश लम्बे वाक्यो से संक्षिप्त वाक्याशो या वाक्यो की वह सयोजना है जो शब्द बद्ध छोटे-छोटे वाक्याशो द्वारा पूरी सरचना को एक 'कसाव' देने का प्रयत्न करती है। इस कसाव मे लय-भग कही कही तो हो जाता है, पर सामान्यत अनेक उदाहरणो मे से मात्र एक ही काफी होगा -

कह रहा जो
बात मै कल की
आज चाहे न जानो, न मानो
कल फिर आग, मै न रहूँ तो भी
ठाठ अपना ही गठगा। (धरती कामधेनु से प्यारी, पृ०१५)

कवि की यह रचना-प्रक्रिया दा धरातला पर चलती है-एक संक्षिप्त सरचनावाली कविताएँ तथा दूसरी व कविताएँ जो दीर्घ या लम्बी सरचना से युक्त है। विजन्द्र की काव्य-यात्रा म दीर्घ या लम्बी सरचनावली कविताओ का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से भी है और स्वय कवि के सोच सवेदन की अभिव्यक्ति दृष्टि से। इस सरचना का रूप जैविक है और उसका एक अपना विज्ञान है। कवि की एक लम्बी कविता "टूटती है किरण" इस सरचना विज्ञान की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कविता है जो कवि की सृजन-प्रक्रिया को व्यक्त करती है और इसी के साथ "स्पात मेरे युग का सच है" इस तथ्य को "रासायनिक बिम्ब" के द्वारा सकेतित करती है। "गलाओ/गलाओ/अभी और/अभी और/गलने दो कच्चे लोहे को/स्पात मेरे युग का सच है।" इसी कविता मे आगे एक पंक्ति आती है-"संरचना का विज्ञान/कठोर धातुओं से जन्मता/"। यह सारी जद्दोजहद की रासायनिक प्रक्रिया एक ऐसा बिम्ब है जो अपने मे एक नया अर्थवान् प्रतीक है। यह प्रक्रिया अधिरचना को बदलती है और इस बदलाव मे सौदर्य बोध का रूप भी परिवर्तित होता है तथा रचना का बाह्य और आतरिक रूप भी ढलता है -

अधिरचना से बदलता
सौदर्य-बोध
नक्शा/रेखाएँ/वर्ण/आकृतियाँ
ढलता है रचना का बाह्यान्तरग।

इस सारी प्रक्रिया को करने वाला मजदूर-श्रमिक है और उसके श्रम-सौदर्य को यह कविता बखूबी प्रस्तुत करती है और यह बात कवि की अन्य लम्बी कविताओ के बारे म भी सत्य है।

इसी सदर्भ मे विजेन्द्र की दीर्घ आयामवाली कविताओ की "सरचना" और साथ ही, उनके ऐतिहासिक महत्त्व को रखना चाहूँगा। यदि गहराई से देखा जाएँ तो लम्बी कविता एक विशेष प्रकार की सरचना है जो अपने म एक दीर्घ रचनात्मक कसाव और तनाव के साथ वैचारिक और सवेदनात्मक द्वन्द्व को एक "क्रमागत" रूप मे पेश करती है और इस कसाव मे चार तत्त्व प्रमुख होते है-दृश्य, घटना-क्रम (क्रियापद), पात्र तथा बिम्ब-प्रतीक जो सापेक्ष द्वन्द्वात्मक स्थिति मे वे अश या "घटक" है जो समग्र रूप से "सम्पूर्ण" की सरचना को एक जैविक रूप मे प्रस्तुत करते है। सरचना की धारणा मे यह 'अश' और सम्पूर्ण (माइक्रो एव मैक्रो) का सहअस्तित्व होता है और सृजन (दीर्घ) के स्तर पर इन खण्डो व घटको का महत्त्व इसी

मे है कि वे सम्पूर्ण या सरचना के द्वारा यथार्थ और सत्य के अर्थवान् रूप को व्यंजित कर सके। यदि हम लम्बी कविताओ के इतिहास (छायावाद से) पर नजर डाले तो एक बात यह स्पष्ट होती है कि परिवर्तित काल बोध के अनुसार लम्बी कविता की सरचना म उपर्युक्त घटको (घटना, पात्रादि) का न्यूनाधिक समाहार मिलता है जो समग्र रूप से इतिहास और विचार सवेदन के भिन्न आयामो की खोज है। प्रसाद से लेकर मुक्तिबोध, धूमिल विनय, नरेन्द्र मोहन, विजेन्द्र आदि की एक लम्बी पंक्ति "लम्बी कविता को एक जरूरत" के रूप मे स्वीकार करती है और उसके साथ उनके "व्याकरण" को अर्थ देती है। इस दृष्टि से विजेन्द्र की लम्बी कविताएं इतिहास और यथार्थ के अनेक रग-रूपो को, पूरी द्वन्द्वात्मकता के साथ 'अर्थ' प्रदान करती है। लम्बी कविता की सरचना मे कार्य-कारण शृखला का निर्वाह होता है जो घटनाओ, दृश्या, पात्रो, और रूपाकारो (प्रतीक बिम्ब-मिथक) की सरचना को एक अनुक्रम म बाँधते है। विजेन्द्र के इस अनुक्रम मे घटना, पात्र वैचाकिता और भिन्न रुपाकारो का एक ऐसा सयोजन प्राप्त होता है जो पूरी सरचना को एक "प्रति यथार्थ" या "प्रतिविश्व" का रूप प्रदान कर देता है। उदाहरण के तौर पर "टूटती हुई किरणे", "तस्वीरन अब बड़ी हो चली" खड़ा मेड़ पर कुकुर भाँगरा", "धरती कामधेनु से प्यारी", "मुर्दा सीने वाला", तथा "नत्थी" आदि कवि की ऐसी लम्बी कविताएँ है जो श्रम-सौदर्य को, दलित-शापित वर्ग की विडम्बना और सघर्ष को, भिन्न पात्रो की द्वन्द्वात्मकता को, पात्र और घटना के द्वन्द्व को, भिन्न विचार-सवेदन के आयामो को तथा वर्तमान की त्रासदी स उभरनेवाले 'भावी दृश्य' की सभावना को ये कविताए सकेतित करती है। इन कविताआ म प्रयुक्त बिम्ब-प्रतीक (यथा अधेरा स्पात, कुकुर भाँगरा, वृक्ष आदि) सवेदना और विचार को गति देते है और पूरी रचना को सयोजन देने मे सहायक होते है।

विजेन्द्र की लम्बी कविताआ से गुजरते हुए मुझे विशेष रूप से उनकी दो कविताएँ "सरचना" की दृष्टि से अधिक अर्थवान् लगी क्योंकि इन दोनो कविताओ की सरचना की दो भिन्न अभिमाए है। एक कविता है, "मुर्दा सीनेवाला" तथा दूसरी कविता है "नत्थी"। "मुर्दा सीने वाला" नितात एक नयी सवेदना की कविता है जो कटु-तिक्त यथार्थ को व्यंग्यात्मक रूप मे प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर 'नत्थी' कविता एक ऐसे माली के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करती है जो यथार्थ और सवेदना के दो धरातलो पर

(माली तथा कलाकार) अपने रिक्त जीवन को "अर्थ" देना चाहता है, उसे भरना चाहता है "वायलन रूपी दुल्हन से"। "मुर्दा सीने वाला" आगरा के एस० एन० अस्पताल से सम्बंधित एक ठेठ निम्नवर्गीय मानसिकता के व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्वात्मक इतिवृत्त है जिसमे कवि, मुर्दा सीनेवाला व्यक्ति तथा उसकी आक्रामक पत्नी-ये तीन पात्र है जो सापेक्ष द्वन्द्वात्मक स्थिति मे कविता की सरचना को इस प्रकार सयोजित करते है कि पात्र घटना और वैचारिकता के आयाम क्रमश अर्थ प्राप्त करते है। पात्रो (मुर्दा सीनेवाला व उसकी पत्नी) के सवाद इतने सटीक एव मारक है कि निम्नवर्ग की 'मुक्त' एव 'खुली' मानसिकता का जो चित्र उभर कर सामने आता है वह पूरी कविता को "गति" प्रदान करता है। इस गत्यात्मकता में भाषा का वह रूप मुखर होता है जो ठेठ है, उस विशेष वर्ग का है जहां से कविता का कथ्य आकार ग्रहण करता है। उसकी पत्नी का यह कथन इसका प्रमाण है (और भी है)

"बोली फिर,
कड़ा बोल जी भर कर
देख क्या रहा भड़ुए
जो करना है कर
देखू कैसा मर्द बना है
मै मुर्दा थोड़ हो हूँ
जो सी देगा मुझको। (धरती कामधेनु पृ०१०८)

एक अन्य स्थान पर वह कवि से कहता है **"यह पूरा बाजार मेरा है/मुर्दाघर मेरा है/चाहे जो हो अपराधी/आएगा अंत/इसी चाकू के नीचे"** और इसी के साथ वह मुर्दा सीने को एक दिलावर का कार्य कहता है और फिर अनायास दृश्य बदलता है जब वह पास खड़ी पत्नी को 'डायन' कुत्ती जैसे शब्दो से सम्बोधित करता है। यह पूरा माहौल जहॉ कविता की सरचना को गति देता है, वही यथार्थ और सवेदना के मुक्त सम्बन्ध को बखूबी रेखाकित करता है। कविता का अतिम अश पूरी कविता को देश की व्यग्यात्मक स्थिति से जोड़ देता है जो एक कटु सत्य है, पर है सत्य -

हुआ होगा आजाद मुल्क -
मुर्दो की कमी नही
पिछले चालीस बरस से
देख रहा हूँ
बढ़ा बहुत है लावारिश लाशो का नबर। (पृ०११२)

य पंक्तिया पूरी कविता का व्यापक अर्थ रूपातरण कर देती है। यह रूपातरण जितना सहज सवेदनीय है उतना ही वैचारिक। पात्र वर्ग की सीमा क अदर रहकर भी वग चरित्र से ऊपर उठ जात है। वैचारिकता घटना और पात्र क प्रतीकत्व मे अन्तर्निहित हा जाती है। विजेन्द की यह विशेषता है कि वे वैचारिकता को सरचना म घुला मिला कर प्रस्तुत करते है और यही स्थिति उनकी दूसरी कविता (और भी कविताएँ है) 'नत्थी' म भी दृष्टव्य है। अतर यह है कि जहाँ "नत्थी अपक्षाकृत लघु या संक्षिप्त सरचनावाली कविता है लकिन य दोना कविताएँ 'सरचना' की दृष्टि से लम्बी कविताएँ है जिनम पात्र या चरित्र कद्र म है जो अपनी समग्र व्यजना म 'प्रतीक" क समान दृष्टिगत हाते है। पात्र जब क्रमश 'प्रतीक' की हैसियत स्वीकार करने लगते है ता वे वर्ग विशष का और बृहद् सदर्भों का प्रतिनिधित्व करन लगते है। विजेन्द्र की य दाना कविताएँ (और भी ऐसी कविताएँ है जैसे साबिर का घोड़ा, 'तस्बीरन अब बड़ी हो चली' तथा बाबा आया' आदि) इस माँग को पूरा करती है और मेरे विचार से इन कविताओ का महत्त्व इस दृष्टि से भी है।

जब हम 'नत्थी' की दीर्घ सरचना को लेते है तो उसकी सरचना म स्वय कवि, नत्थी माली तथा कवि की बच्ची विश्वकीर्ति- ये तीन पात्र समक्ष आते है जिनके आपसी द्वन्द्व एव सवाद से घटना का क्रम क्रमश खुलता है और स्मृति (नत्थी की) के परिदृश्य से अतीत का सबध नत्थी के वर्तमान म जुड़कर जीवन जीने की आकाक्षा को सगीत और प्रेम के माध्यम स, अर्थ प्रदान करता है। कवि ने अत्यत रचनात्मक ढग से जीवन क कर्म (यथार्थ) तथा सगीत का एक ऐसे व्यक्ति (माली) मे समायोजित किया है जो ज्यादा पढ़ा लिखा न होकर भी सगीत के मर्म को (वायलन, हारमोनियम) जिस गहराई से समझता है, और उसे जीवन के यथार्थ से, सघर्ष से जोड़ता है, वह मेरी दृष्टि से अत्यत साकेतिक है। कविता का यह सदर्भ सवेदना को गहराता है और नत्थी का वायलन के प्रति यह कथन उसका एक अच्छा प्रमाण है। -

'अब सीख रहा हूँ वॉयलन
सबसे कठिन साज है
पर हू-बहूँ उतार देता है
आवाज आदमी की
कोमल, कठोरतम, दुख भरी अलग से।

और चाहे जब बजाओ सुख मे
दु ख मे, दोना को बाट लिया
करती है।
(धरती कामधेनू पृ॰१८० १८१)

इस कविता का सौदर्य यह भी है कि यह अभिजात्य मानसिकता को तोड़ती है और वॉयलन (सगीत) के अभिजात्यपन को आम आदमी की सवेदना से जोड़ती है, उमके दुख दर्द को उसके खालीपन को भरने और जीवन को 'अर्थ' देने की प्रक्रिया म उसका जो योगदान है वह इस कविता मे पूरी रचनात्मक "अर्थवत्ता के साथ प्रकट हुआ है।

इस कविता का एक अन्य सौदर्य सगीत और वनस्पति ससार के यथार्थ को सवेदना के स्तर पर "अर्थ' प्रदान करना है और इस अर्थ प्रक्रिया के केद्र मे है 'नत्थी' जो सगीत और वनस्पति ससार (पर्यावरण भी) को एक सरल रेखा मे लाता है और उन्हे जीवन सघर्ष से जोड़ता है। एक स्थान पर नत्थी कहता है "मै कभी नही उकताया जीवन से/चाहे कुछ हो/पौदे बॉट लिया करते है/मेरा दुख सुख/" दूसरी ओर वह सगीत और पौदो की दुनिया के बगैर मानव जीवन को "बड बैल कोल्हूँ का" कहता है और साथ ही "जीवन को झेल झेल कर। सीख रहा सगीत/राग/स्वर लिपियो की गहराई।" कविता के अंतिम पृष्ठो मे नत्थी की अनुभवमूलक सच्चाई उस समय प्रकट होती है जब वह कलाकारो को नशीले पदार्थों से बचने, आज के आतक को धनिको के बच्चो की मानसिकता अपनी दरिद्रता पर विक्षोभ तथा नियति पर विश्वास (निष्क्रिय नही) करता हुआ प्रतीत होता है-यह सारा घटना-क्रम आज के द्वन्द्वात्मक यथार्थ को उसकी सच्चाई को साकेतिक रूप से प्रकट करता है। अत यह कविता यथार्थ के बाह्य तथा आतरिक द्वन्द्व को रेखाकित करती है और दोनो के सापेक्ष महत्त्व को जन-आकाक्षाओ के सदर्भ म अर्थ प्रदान करती है।

उपर्युक्त लम्बी कविताओ मे विचार सवेदन के भिन्न रूपो का विकास उनकी अन्य कविताओ मे भी देखा जा सकता है। कवि की रचनात्मकता अनेक सदर्भो को लेकर चलती है और यही कारण है कि विजेन्द्र की कविताओ मे जहॉ एक ओर सघर्षशील जनवादी चेतना की धारा व्याप्त है वही प्रेम, प्रकृति सौदर्य, काल बोध विज्ञान बोध, तथा सस्कृति बोध की अपनी अर्थवत्ता है, उनका रचना-ससार वस्तुगत के द्वन्द्व को रेखाकित करता हुआ मानवीय सवेदनाओ अन्तर्वृत्तियो तथा अभिवृत्तियो को भी

महत्त्व देता है, वह संवेदना के स्तर पर विचार को 'न्यूनाधिक' रूप से घुला देता है। इस कार्य मे उनकी भाषिक सरचना का अपना 'विशिष्ट' मुहावरा है।

समकालीन कविता (या किसी भी समय की कविता) परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप म राजनैतिक आशयो से प्रेरणा लेती रही है और यह प्रेरणा मात्र वस्तुगत यथार्थ तक सीमित न होकर इस यथार्थ को आधार बनाकर उसको क्रमश अतिक्रमित कर "सभावना" या भविष्य के स्वप्न को व्यंजित करती है। विजेन्द्र के यहाँ राजनीति का जनवादी रूप है और उन्हे इसका पूरा एहसास है कि "इस राजनैतिक सकट म। मै कही बौना/न रह जाऊँ।" (ये आकृतियाँ तुम्हारी) में "मै" के प्रति यह सवेदना उनका राजनैतिक बोध का नारेबाजी से बचाती है और साथ ही बड़बोलेपन से। वे इस राजनैतिक सकट को अनेक रूपो मे देखते है और राजनीति मे प्रयुक्त होने वाले 'शब्दों' (रूपाकारो) के प्रति, उनकी अवधारणा के प्रति वे चिंतित है क्योंकि भारतीय राजनीति ने इन 'शब्दों' को बेमानी कर दिया है क्योंकि इनके द्वारा जनवादी राजनीति का जो रूप मुखर होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। उदाहरणस्वरूप समाजवाद, उदारतावाद, जनतत्र, आदि 'शब्द-प्रतीक' अपने 'अर्थ' को खोते जा रहे है। कवि की समाजवादी के प्रति यह उक्ति कितनी सार्थक है-"समाजवद के नारे उनकी खुली पीठ पर/चाबुकों की तरह पड़ रह है।" इस प्रक्रिया मे जो बाधक है, वे शत्रु है जिन्हे पहचानना जरूरी है और वह भी 'कविता' के लिए कवि का यह भी मानना है कि "जब दुश्मन बड़ा होता है/तो/लड़ाई लम्बी होती है" (चेत की लाल टहनी) यही नहीं, मिश्रित अर्थव्यवस्था मे "सारे फलो का रस/एक आदमी पीता है।" इन सबके बीच कवि का मानस् द्वन्द्वरत है और उसकी पूरी जद्दोजहद उस भविष्य की ओर है जहाँ विश्वबैंक, डालर, और उदारतावाद के नाम पर यहाँ के आम आदमी को न रोटी ही है और न काम है, और अप्रत्यक्ष रूप से कवि इस 'रोटी' और 'काम' का स्वप्नदृष्टा है जो यथार्थ की कठोर भूमि पर आश्रित है –

> उनके आदेश मिल रहे है
> मानवाधिकार दिवस मनाओ
> और जनान्दोलनो को कुचलो
> यह नया वर्ष है
> गेहूँ की फसल उठ रही है

सच को उदारतावाद से ढको
विश्वबैंक एक आदेश है
डालर एक आदेश हे
मुझे रोटी
और काम देने की बात
न करने का आदेश है।

(धरती कामधेनु सी प्यारी,पृ०४३)

विजेन्द्र की सृजनात्मकता मे मूल्यहीन एव छद्म राजनीति के प्रति विक्षोभ है जो किसी न किसी रूप में आज की कविता का एक मुख्य स्वर हे और यह स्वर कभी-कभी "सभावना" के "प्रतिविश्व" का निर्माण करती है। रचनाकार की यह नियति है कि वह इस 'प्रतिविश्व' की फान्तासी की कल्पना करे मात्र उसे वस्तुगत स्थितियो घटनाओ तथा प्रक्रियाओ तक सीमित न कर दे, अन्यथा उसकी समकालिकता एक वृत्त के अदर सीमित होकर 'काल' का अतिक्रमण नही कर सकेगी। अपने समय की चुनौतियो का समना करते हुए उनके द्वारा समाज को एक भावी 'व्यजना' का रूप दे जाना रचना-कर्म का दायित्व भी है और उमका लक्ष्य। विजेन्द्र के रचना ससार मे 'समकालिकता' का दश है, उसकी भयावह एव त्रासद अनुगूँजे हे, लेकिन इन सबके बावजूद उनकी कविता मे "समय' फौलाद की तरह पक रहा है" और कवि ऐसे समय को "अर्थ" देने की सतत् प्रक्रिया मे है। यही कारण है कि विजेन्द्र के यहाँ काल की अवधारणा एक व्यापक अवधारणा है क्योंकि उनका स्पष्ट मानना है कि घटनाएँ (काल का अनुभव घटना (क्रिया) सापेक्ष होता है) सहेतुक है और वे किसी न किसी रूप मे 'त्रिकाल' मे अन्तर्निहित है -

लेकिन होती है घटनाए
सहेतु
अन्तर्निहित भूत
भविष्य
वर्तमान मे

(उठे गूमड़े नीले, पृ०२१)

इस दृष्टि से, कवि के सामने काल का वह रूप है जो त्रिकाल की गत्यात्मकता मे है और ऐसे समय को कवि निरपेक्ष रूप मे स्वीकार नहीं

करता है वह जन के भुजवधा के साथ उसे स्वीकार करता है -

स्वीकारता हूँ
स्वीकारता हूँ
मै
समय का भुजवध तुम्हारे साथ"

(चैत की लाल टहनी पृ॰११२)

यदि गहराई से देखा जाएँ ता कवि का सारा रचना कर्म काल की सापेक्षता म "तुम्हारे साथ" का काल बाध है वह 'अहतुक' नही है, उसकी प्रतीति के पीछे मात्र "मै" नही है वरन् "हम' का एक गहरा बोध है। उसे विश्वास है कि चाहे वह रह या न रह पर उसने वह 'अग्नि" खोज ली है जिस वह 'आग' तक बुझन नही दगा -

न रहूँ
मै
ता क्या?
अग्नि खोज ली मैने जब
उसे न बुझने दूँगा
आग तक। (धरती कामधेनु सी प्यारी, पृ॰२२)

इसी सदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कवि "सघर्ष-काल" को महत्त्व दता है और उसे मानवीय अनुभव के काल म जोड़ता है लेकिन उसके आगे वह नतशिर नही है, तुच्छ नही है क्योंकि उसे विश्वास है -

नही रहू मै
तो क्या
शब्द, चित्र, छद
ध्वनियाँ जीवित है
नही बध पाएँगा
उन्हे काल का वल्लम। (धरती कामधेनु--पृ॰२२)

कवि इस काल के भयावह रूप को अपनी सृजन-ऊर्जा से बेधना चाहता है और यह "बेधना" ही उसे वह शक्ति दता है जो काल से 'मुठभेड़' करने की क्षमता प्रदान करता है। विजेन्द्र की कविता को इस परिप्रेक्ष्य मे रखकर देखना जरूरी है तभी हम कवि के प्रति न्याय कर सकेंगे।

विजेन्द्र की कविताओं से गुजरते हुए मुझे हमेशा यह लगता रहा कि कवि मानवीय प्रेम और प्रकृति के निष्कपट एव निर्दोष सौदर्य को उसके जैविक रूप मे प्रस्तुत करते हुए एक एसे सवेदना जगत का सृजन करते है जो परिवर्तित रामाटिक बोध की ओर सकेत करता है जिसम रूढ़ रोमास नही है वरन् यह रोमास एव सौदर्य उत्पादन की सस्कृति से गहरे सबधित है। यदि मै यह कहूँ कि कवि के रचना लोक मे श्रम एव सवदना का सौदर्य इतना सहज एव ऊर्जा से प्लावित है कि उनका निखार सघर्ष और द्वन्द्व के मध्य होता है। इस द्वन्द्व और सघर्ष म 'आस्था' का स्वर निहित है एक ऐसी आस्था जो "धरती की जड़ो' से जुड़ी हुई है "

'नही सुखा पाओगे मुझको
ओ सप्त अश्वधारी भगवान भास्कर
सजल स्त्रोत जीवन से। गुँथी हुई है
धरती मे जड़ मेरी'
(धरती कामधनु पृ०५६)

विजेन्द की कविता मे इस सौदर्य बोध का गहराते है उनके ये 'रूपाकार' जा गॉव एव शहर मे लिए गए है जिन्ह 'जनपद' की सज्ञा दी जाती है। परतु इसके अलावा विजेन्द्र के काव्य मे ऐसे भी रूपाकार है जो यात्रिक जगत से सम्बधित है यथा स्पात का गलना, भू-वैज्ञानिक प्रक्रिया, कच्चे लोहे का गलना तथा शिल्प गढ़ने की प्रक्रिया-ये सभी रूपाकार मेरी दृष्टि मे एक 'नए' सौदर्यबोध की सृष्टि करते हे जा परोक्षत वैज्ञानिक प्रभाव से उद्भूत कवि की रचना-दृष्टि है। यदि गहराई से देखा जाएँ तो यह एक ऐसा क्षेत्र है जो कवि मे अभी और विकास की अपेक्षा रखता है क्योंकि इन कतिपय प्रयोगो से मुझे यह आशा बधती है कि कवि विज्ञान, इतिहास और दर्शन आदि के अध्ययन-मनन से अपनी रचना-दृष्टि को और विकसित एव व्यापक बना सकता है। एक उदाहरण (कुछ मे से) देने का लोभ सवरण नही कर पा रहा हूँ जो सृजन और सघर्ष को रासायनिक प्रक्रिया से गहराता है और दोनो के मध्य सवाद की स्थिति को प्रतीकात्मक रूप मे सकेतित करता है -

'गलना/क्रिया है/कठोर/रक्तिम भारतीय-हेमेटाइट को/---धातुओ के मिश्रण से बनती है/प्रतिमाएँ ठोस/कास्य बर्तन/-- विशाल भट्टियो मे/कच्चा लोहा परिवर्तित हुआ/भू-वैज्ञानिक रचना मे/हुई

रद्दोवदल/---भू-वैज्ञानिक रचना पर/निर्भर है/मेरी आत्म-समृद्धि/ यहाँ का अर्थतंत्र/भौतिक वर्चस्व।"

(उठे गूमड़े नीले, पृ०३२-३५)

यहा पर कवि के इस कथन पर कि उसकी आत्म-समृद्धि भू-वैज्ञानिक रचना पर निर्भर है-एक नए प्रकार का रूपाकार है जो सोच के नए सदर्भ को उजागर करता है।

कवि क रचना ससार म प्रम का रूप सहज सवेदनीय है और कभी-कभी प्रम का प्रगाढ़ रूप प्रकृति-वस्तुआ के द्वारा व्यक्त हाता है जिसम मानवीय पीड़ा और सघर्ष के हल्के-गहरे सस्पर्श प्राप्त हाते है। प्यार, जीवन का अर्थ दता है-इस सवदना का कवि अत्यत सहज रूप म व्यक्त करता है-"छोटी से छोटी बात प्यार की/अर्थ/बढ़ा देती है/जीने का/मैने जाना/बहुत कठिन है/जीवन जी कर/प्यार निभाना।" (चेत की लात टहनी पृ०८६) यही नही कवि क लिए प्रेम और प्रकृति की एक गध है जिसे वह पीना चाहता है। एक दृश्य है चिड़ा और चिड़ी के प्रेम-व्यापकता का जा इतना सहज एव मर्मस्पर्शी है कि उसे अनुभव ही किया जा सकता है -

" तू भी आजा/मेरी चुलबुल साथिन/चिड़ी अनोखी/आजा/तिनके लेकर/खड़ा ताकता चिड़ा काजर आँजे/ आँखे तिरछी कर/" (ठठे गूमड़े नीले, पृ०५४-५५) इसमे श्रम और सवेदना का हल्का पुट है जो सौदर्य को नया आयाम देता है। प्यार जब अधूरा होता है, तो वह गीत मे गाया नही जा सकता है, लेकिन कवि चाहता है "मुझे अभी और गाने दो/में/उस सपने के लिए गाता रहूँगा/।" (चेत की लाल टहनी,पृ०११) इन उदाहरणो से कवि की प्रेम-दृष्टि (प्रकृति के माध्यम से भी) एकांतिक एवं व्यक्तिगत नही है, वरन् उसमे 'समूह' का सवेदन है, स्वप्न की लालसा है और जीवन जीने की अदम्य आकाक्षा है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि विजेन्द्र प्रेम-प्रकृति और सौदर्य के एक ऐसे कवि है जिन्होने अभिजात् मानसिकता को तोड़कर एक ऐसे सवेदन-जगत का सृजन किया है जो अपने मे अनूठा है, इतना अद्‌भुत कि उसकी 'सहज' भंगिमाएँ मर्म को आदोलित कर जाती है। समकालीन कविता ही नही, वरन् आधुनिक कविता मे विजेन्द्र की ऐसी कविताएँ अपना विशिष्ट स्थान रखती है जहाँ प्रेम, प्रकृति, सौदर्य को जैविक भंगिमाएं श्रम, सवदन, सहजता और पीड़ा-सघर्ष को जिस

"व्यजनात्मक' ढग से प्रस्तुत करती है, वह अपने मे एक "प्रतिविश्व की ही रचना है। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो निराला नागार्जुन और त्रिलोचन की इस परम्परा को विजेन्द्र ने आगे बढ़ाया है उसे नया 'अर्थ' एव सदर्भ दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से एक बात यह स्पष्ट होती है कि विजेन्द्र 'कविता' को मात्र मनोरजन शाब्दिक व्यापार और बड़बोलेपन (भौकना) के रूप म न लेकर उसे उसकी पूरी "अस्मिता" और "अर्थवत्ता" के साथ ग्रहण करते है। उनका स्पष्ट कथन है

कवि कभी मरता नही
कवि कभी भौकता नही
भौकने और रचना मे फर्क है

(ये आकृतियाँ तुम्हारी, पृ०७०)

और दूसरी ओर-

मैने/खूब चाहा/
ऐसे गीत लिख सकूँ
जिन्हे तुम/गा सको
जो तुम्हारी हाथो की तरह सख्त
और होठो की तरह लाल हो
जो/अँधेरे कठघरे मे
मौन गाएँ जा सके।'

(चैत की लाल टहनी पृ०६८)

अस्तु, विजेन्द्र के रचना-ससार को अत अनुशासनीय दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि वे विचार-सवेदा के भिन्न आयामो को रचनात्मक अर्थवत्ता देते है और विज्ञान बोध के सभावित प्रभाव को अपनी रचनात्मकता मे "अर्थ" देते है। वह विचार के गतिशील रूप को प्रमुखता देते है और सवेदना के गहरे स्तरो का अर्थ देते है। विचार और सवेदन का समीकरण विजेन्द्र के यहाँ एक 'सहज' रूप मे प्राप्त होता है और भविष्य मे यह 'सहजता' चितन के भिन्न आयामो से और भी अधिक 'अर्थवान' और 'व्यापक' हो सकेगी, ऐसी मुझे आशा है।

❑

[25]

जयसिंह 'नीरज': विचार संवेदन के कवि

समकालीन कविता के विकास एव उसको व्यापक परिप्रेक्ष्य देने मे हिंदी प्रदेश के सभी प्रान्तों ने अपना योगदान किया है। इसी संदर्भ में राजस्थान के कवियों ने अपने तरीके से नयी कविता की वह जमीन प्रस्तुत की जिस पर राजस्थान की ही नही वरन् समस्त हिदी प्रदेश की कविता को 'गति' प्राप्त हुई। मेरे लिए प्रत्येक प्रांत का रचनाकार हिंदी का रचनाकार है, वह किसी विशेष प्रांत या प्रदेश का रचनाकार नहीं है। प्रांतीयता, प्रादेशिकता तथा आचलिकता मे साहित्य को बांटना एक ऐसी खतरनाक प्रवृत्ति है जो साहित्य के राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय रूप पर कुठाराघात है। इस दृष्टि से, आज के हमारे साहित्य को प्रांतीयता के इस खतरे मे बचाना होगा। इस दृष्टि से राजस्थान के कवि पूरे हिंदी प्रदेश के कवि है, मैं तो यह कहूँगा कि वे भारतीय कवि है। यही बात अन्य प्रांतों-प्रदेशो के लिए भी सत्य है।

नयी कविता के आरभकाल मे राजस्थान के अनेक कवियों ने हिंदी प्रदेश की कविता-धारा में अपनी धारा को प्रवाहित किया और नंद चतुर्वेदी, जयसिह नीरज, भारतरत्न भार्गव ऋतुराज, तारा प्रकाश जोशी आदि कवियों की पंक्ति ने अपने-अपने तरीके मे हिदी काव्य को 'गति' एवं 'अर्थ' प्रदान किया। यहाँ पर मै जयसिह 'नीरज' की काव्य-यात्रा को इसी दृष्टि से लेना चाहूँगा जिन्होने राजस्थान में वह आधारभूमि रखी (इसमें उपर्युक्त कवि भी शामिल है) जो अपने में निरपेक्ष नहीं है, वरन् उनका सापेक्ष संबंध पूरी समकालीन कविता मे है

जयसिंह नीरज के रचना संसार मे गुजरते हुए एक बात जो स्पष्ट लक्षित होती है वह है उनकी रचनात्मकता का क्रमिक विकास जो द्वन्द्वात्मक है क्योंकि उनके तीन कविता संग्रह "नील जल सोई परछाइयाँ" (१९६३) दुखान्त समारोह (१९७१) तथा ढाणी का आदमी" (१९८५) और इधर कुछ ताजा कविताएँ जो पत्र पत्रिकाओ म प्रकाशित हुई है उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि नील जल म नयी कविता के अतलात म डूबकर मन स्थितियो और मनोदशाओ म सराबोर हो उससे उबरने की छटपटाहट म लगा हुआ है तभी वह कहता है

अतरगुहाओ के अस्पताल म
रोगी मन
बाहर आने को पाटता है कपाट
तोड़ता है दीवारो पर दीवार (नील जल पृ०४३)

उसके बाद कवि 'कपाट' तोड़कर बाहर आता है और 'दु खात समारोह' म बाह्य का द्वन्द्व मुखर होता है और यथाथ का समकालीन परिदृश्य आदमी के सघर्ष तथा मुह बाए 'अधकार' के बीच अपना रास्ता खोज रहा है। दूसरी ओर इस संग्रह म यथाथ का वह भी पक्ष है जो आतरिक है जहाँ कवि चित्र सगीत 'नीलजल सोइ परछाइयाँ म होता है। यथार्थ और सवदना के ये दोनो पक्ष नीरज की काव्य यात्रा के दो पक्ष है जो एक दूसरे के पूरक है। तीसरे संग्रह ढाणी का आदमी म 'दु खान्त समारोह का यथार्थ बोध यहाँ पर व्यापक सदर्भ प्राप्त करता है जो गाव व जनपदीय मनुष्य की व्यथा कथा है वह सवदना और सोच के स्तर पर अधिक 'अथवान' है। 'पात्र कुम्हार' तथा 'सरलू खटीक' यहाँ मात्र पात्र नहीं है वरन् पूरे वग (श्रम) के प्रतीक है। यहाँ पर नीरज सवेदना के स्तर पर विचार के भिन्न आयामो का भी अर्थ रहे है जिसका सकेत मै आगे करूगा। इसी सदर्भ म एक तथ्य यह भी नजर आता है कि नीरज के सवेदना ससार म चित्र सगीत तथा शिल्प के आशयो एव रूपाकारों का जो समावेश उनकी रचनात्मकता को 'गति' दे रहा था अथवा यू कहूँ कि उनके रचना ससार को एक नया आयाम दे रहा था वह ढाणी का आदमी म पृष्ठभूमि म चला गया है। इसका यह अथ नहीं कि यह पक्ष लुप्त हो गया है वह हो भी नहीं सकता क्योंकि नीरज के सोच सवदन म कलाओ के अन्तर सवाद का अपनी भूमिका है। मेरा आशय मात्र यह है कि

समकालीन कविता म यह 'सवाद' का पक्ष कुछ ही कवियो म है, अत इसके बहुमुखी विकास की आशा मुझे नीरज से है-इसी स मात्र मेरा यह प्रस्ताव है।

नीरज की काव्य यात्रा का यह विहगम रूप यह सिद्ध करता है कि कवि की सृजन-प्रक्रिया सरल रेखा की न होकर वक्र स्वभाव की है जा लगातार अपने को तोड़ती चल रही है और इससे टूटने की प्रक्रिया मे वह यथार्थ के भिन्न रूपो से टकरा भी रहे है और कही-कहीं जुड़ भी रहे है। यह जुड़ना और टूटना सृजन-प्रक्रिया को गति देता है। कवि खरा "ठूँठ" नही है, वह द्वन्द्व से गुजरता हुआ स्वय अपने को ही 'उघाड़' रहा है -

"नया कदम रखने को। अवसर ताक रहा हूँ। तूफानो को कौन दिशा दूँ। यह आजमा रहा हूँ। दुनिया को क्या। स्वय को उघाड़ता हूँ।"

(नील जल पृ॰२५ व ७२)

यह अपने को "उघाड़ना" एकातिक नही है जो 'अस्तित्ववादी' हो क्योंकि नीरज अस्तित्ववाद के रूपाकारो और आशयो को यदा-कदा लेते तो अवश्य है, पर उन्हे "स्व" तक सीमित नहीं करते है, वरन् वे इसके द्वारा 'आदमी' के अतर मे घुसना चाहते है क्योंकि उनका यह मानना है

"सचमुच आदमी के अतर
मे घुसने का
अवसर देती है कविता" (ढाणी का आदमी,पृ॰७०)

स्पष्ट है कि कविता का रिश्ता 'आदमी' से है जा मात्र 'स्व' नही है पर 'स्व' और 'पर' का एक जैविक रूप है। 'आदमी' एक व्यापक प्रत्यय है। नीरज आदमी के इसी प्रत्यय को, उसकी सवेदनाओ, सघर्षो तथा आकाक्षाआ को इस प्रकार प्रस्तुत करते है जिसमे मानव की जिजीविषा उसके ऐतिहासिक सदर्भ म उजागर होती है। उनकी अधिकाश रचनाओं मे जिदगी जीने की भरपूर लालसा है (ढाणी का आदमी, पृ॰२०) तथा ऐतिहासिक प्रक्रिया मे उसकी एक निरतरता है जो गणेश्वर से मिश्र के पिरामिडो तक एक 'पुल' बनाए हुए है तथा दूसरी ओर 'समय' कविता सवेदना तथा विचार के स्तर पर समय क भिन्न खण्डो (वर्तमान, अतीत व भविष्य) मे आदमी के द्वन्द्व को साकार करती हुई, अत में काल के चक्राकार रूप म 'आदमी' (मे) की न खत्म होने वाली प्रक्रिया से उद्भूत काल को भी पीछे

छोड़ देने का साहस असल म "सघर्ष 'ऊर्जा' को ही सकेतित करती है-

मिल जाऊँगा इस मिट्टी म
खाद बनने क लिए
और फिर जन्म लूगा
कोपल की तरह
तुम्हे पीछे छोड़ता हुआ
समय। तुम याद रखना
उस घड़ी का।

नीरज की यह कविता उनके प्रौढ़ चिन्तन एव सवेदन का प्रतिरूप है और ऐसी कुछ कविताएँ (जो प्रकाशित अप्रकाशित है उन्हे भी म ले रहा हू) जो इधर लिखी गयी है, उनके सदर्भ को मैने निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। "गणेश्वर सस्कृति' कविता मे ताम्रयुग तथा आखेटक युग से लेकर काल का जो गतिशील रूप मिश्र, मोहनजोदड़ो तक आता है, उसे कवि आज के अणु युग तक लाता है-यह पूरी दीर्घकालीन यात्रा इस आशका मे समाप्त होती है जो कवि के वृहद् आशय या सरोकार को व्यक्त करती है -

गणेश्वर से लेकर। मिश्र के पिरामिडो तक। खड़ा कर दिया है। तुमने एक पुल। इस पुल से। यहाँ तक पहुच गये हम। तीर और भालो के आगे। अणु की भट्टियो तक। क्या वाकई साक्षी होगा विनाश का। यह मौन पहाड़ और। ये टिमटिमाते हुए तारे।" (ढाणी का आदमी पृ०७७-७८)

इस कविता का (और 'समय' का भी) सौदर्य उसी समय उजागर होगा जब हम उत्खनन तथा पुरातत्व के सदर्भो को ठीक प्रकार से समझ सके तथा 'समय' कविता का सौदर्य भी उसी समय उद्घाटित होगा जब हम जीवन के द्वन्द्व को काल की सापेक्षता मे समझे तथा काल से भी मुठभेड़ करने का साहस जुटा सके।

काल के व्यापक प्रत्यय मे 'वर्तमान' वह प्रतीति बिदु है जहाँ से रचनाकार अतीत और भविष्य को पकड़ने का प्रयत्न करता है। 'वर्तमान' पर पैर जमाए बगैर हम काल का सही परिदृश्य उपस्थित नही कर सकते है, इसी से वर्तमान के दबावो से रचनाकार यथार्थ के उस रूप को प्रस्तुत करता है जो उसके चारो ओर घट रहा है। शमशेर की शब्दावली में कहे तो

वह कटुक्ति स्थितिया स टकराता है तथा सघर्षशील चेतना का 'अर्थ' प्रदान करता है। 'दु खान्त समारोह' तथा 'ढाणी का आदमी' की अनेक कविताएँ कवि की सघर्षशील चेतना का तथा स्वतत्रता के बाद नगर और गाँव की विसगति विद्रूपता तथा भूख का एक एस 'समाराह' क रूप म प्रस्तुत करती है जिसम राजनीति समाज अर्थनीति मिथक भीड़ तथा आम आदमी का दर्द इस प्रकार घुलमिल गए है कि भारतीय समाज का एक विडम्बनापूर्ण बिम्ब उभरकर सामन आता है। अधकार का दिकीय विस्तार सारे देश को अपनी गिरफ्त म लिए हुए है। नीरज क काव्य मे यह 'अधकार' एक 'आद्यरूप' है जा आज की कविता क केन्द्र म है। मुक्तिबोध का '*अधेरा*' *एक एसा ही आद्यरूप है जा अत्यन्त विस्तारवाला है जिसम भिन्न* प्रकार की घटनाएँ घटित हाती है। नीरज क यहाँ यह 'अधकार' उतना विस्तृत नहीं है जितना मुक्तिबाध म तथा अन्य समकालीना म। यहाँ इन्कलाब का अर्थ बदल गया है और जनता कटपुतली क धाग स बधी है

"बदल गया है। इन्कलाब का अर्थ। कटपुतली के धगो से। बधी है जनता। पर सुनता नही कोई। अधकार। चारो ओर अधकार।

(दु खान्त समाराह)

दु खात समारोह म अनेक दृश्य एक के बाद एक आते है और इन दृश्यो के क्रम म विचार का ततु उन्ह जाड़ता है और ये सभी दृश्य मिलकर एक 'महादृश्य' का निर्माण करते है। कवि इस 'महादृश्य' के क्रम को तोड़ना चाहता है, वह तिलमिला उठता है और कह उठता है जा भावी सभवना को व्यक्त करता है-

बस करा। बस करो।।
सीलबद पेटियाँ हो नहीं
सकते है अदने लोग
सन्नाटे की भी एक आवाज है
अधकार को बेधती है हरदम
चुप्पी साधे एक हुजूम
सचमुच बाढ़ किसी को। नहीं बख्शती
तब यह तेइस वर्षीय समाराह
और भी दु खान्त होगा। (पृ०४६)

'ढाणी का आदमी' की कविताएँ सरचना की दृष्टि से अधिक प्रभावी

है क्योंकि अनेक कविताए यथार्थ के त्रासद भयावह तथा कचोटने वाले रूप को बखूबी सकेतित करती है। कुछ कविताओ मे वीभत्स दृश्यो का समायोजन यथार्थ के दश को गहराता है और कविता को जहाँ व्यजनात्मक बनाता है वही अर्थ को दूरगामी प्रभावो तक ले जाता है। गाँव और जनपद यहाँ माध्यम है इस दश को गहराने के लिए। इस दृष्टि से 'मौत' कविता (और भी है) मुझे अत्यत प्रभावी मारक और मर्म को स्पर्श करने वाली लगी। घटना एक आदमी की है जो बस ट्रक के नीचे आकर मृत्यु को प्राप्त होता है और उस लाश को देखकर पहले कौवो की जमात फिर कुत्तो का समूह और अत मे गिद्धो के समूह ने उस लाश को खाकर खत्म कर दिया। यहाँ तक कवि सधे हुए रूप से पूरे परिदृश्य को एक व्यगात्मक चित्र के रूप मे उभारता है और अत मे इस पूरी घटना को बचे हुए एक ' खूनी चिकत्ते" मे केंद्रित कर गिद्ध के व्यापक व्यग्यार्थ को सकेतित करता है और 'आम आदमी' की ट्रेजडी को व्यक्त करता है -

"थोड़ी ही देर मे न लाश रही। न माँस के लोथड़े। केवल सड़क के बीच एक खूनी। चिकत्ता शेष था। कौवे नीम पर बैठे चोच लड़ा रहे थे। कुत्ते मिट्टी मे पड़े सुस्ताते रहे। और गिद्धो की जमात। बुड्ढे नेताओ की तरह। चितन मे मग्न थी।" (ढाणी का आदमी, पृ॰२२)

इस कविता का सौदर्य "खुले अत" (ओपन एड) के कारण है जो पाठक को अर्थ की भिन्न दिशाओ की ओर ले जाता है। इसी प्रकार खून का चिटख-चिटख कर जलना एक "साजिश भरी शैतान पीढ़ी" को ही पसद आ सकता है (पृ॰२४)। यह कथन आज के राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सदर्भ मे कितना सटीक है और कितना साकेतिक? आज की पूरी शिक्षा व्यवस्था पर एक व्यग्य उस समय उभरता है जब "गाँव मे खुलने वाले मिडिल स्कूल की चर्चा सुन। दाढ़ी बढ़े हुए चेहरे और पीले दाँतो का। भूगोल कुछ और फैल जाता है।"(पृ॰२४) नीरज-काव्य मे स्थितियो की विडम्बना अक्सर 'पात्रो के द्वारा व्यक्त होती है जिसमे व्यग्य और कचोट की काट अन्तर्व्याप्त रहती है।

जयसिह नीरज की काव्य-यात्रा (जो अभी गति पर है) का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष सवेदनाओ और दृश्यो का वह सिलसिला है जो उनकी कविताओ को आतरिक 'अर्थवत्ता' देता है। यह यथार्थ का आतरिक या सवेदनात्मक पक्ष है। ये कविताएँ जीवन के यथार्थ को मात्र बाह्य द्वन्द्व तक

मीमित न कर उन्हे जीवन के मवदानात्मक आशया से जोड़ती है और यहाँ पर कवि सगीत चित्रकला, प्रकृति प्रम सोदर्य और पारिवारिक बिम्बा के द्वारा यथार्थ, सवेदना और विचार के त्रिकोण को न्यूनाधिक रूप मे "अर्थ" देता है। यह "अर्थ' दने की प्रक्रिया प्रेक्षण और वस्तुआ के सही निर्धारण मे दखी जा सकती है। यदि गहराई से दखा जाए ता इन कविताआ म प्रेक्षण, अनुभव और विचार की एक ऐसी अत सलिला प्रवाहित प्राप्त हाती है जा किसी न किसी स्तर पर हमारे मर्म और सवदन को गहरे छू जाती है। इस दृष्टि से, मै नीरज को सवेदनाआ का कवि मानता हू जिसकी अभिव्यक्ति म "सहजता" है जो आज की कविता का एक मुख्य स्वर है। इस सहजता म झकझोरने की ताकत है जीवन जीने की एक अदम्य आकाक्षा है। कवि 'वचपन' के आद्यरूप के द्वारा एक "जीवत एहसास" को अर्थ देता है तथा इस एहमास म 'पत्थर' आदमी माम सा पिघलकर, वहन लगता है बच्चा के माथ और पुत्र, पौत्री, तथा दौहित्र के नाम से यह वचपन वार-वार लौटता है और सारा शरीर झकार उठता है सितार की तरह"। (ढाणी का आदमी पृ० १५-१६) यह कविता जहाँ सम्वधो के चक्राकार रूप को अर्थ देती है, वही सवेदना को तरलता से 'पत्थर आदमी' मोम सा पिघलने लगता है। यह 'मोम सा पिघलना एक' मनोवैज्ञानिक क्रिया है जिसे पूरी तरह से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है, इसे "महसूस" किया जा सकता है। यही नही, एसी कविताएँ एक अन्य तथ्य की ओर ध्यान ले जाती है कि जिदगी एक शहद की घूँट है जिसे बूँद-बूँद पीने से सवेदना का ससार जीवत हो उठता है

"जिदगी एक नायाव गुलदस्ता है
तुम जान लो इसका रगीन रहस्य
और फिर एक-एक बूँद
पीते जाओ शहद की
वाकई शहद की घूँट है जिदगी।" (ढाणी का आदमी,पृ०३८)

नीरज के काव्य मे यदि "शहद" है तो वहाँ कटुतिक्त "विष" भी है। जीवन के ये दोना पक्ष उसकी सवेदना के अग है। सवेदना का यह तिक्त बेचैन करने वाला रूप कवि म प्राप्त हाता है, लेकिन यह सवेदना सहलाती नहीं है, वरन् बेचैन करती है आपके पूर अस्तित्व का नितात दूसरे स्तर पर

आँदोलित करती है। इस दृष्टि मे ' होरी का पोता कविता जहाँ स्मृति और परिदृश्य की विडबना का गहराती है वही 'गोदान' के पात्रो के द्वारा सवेदना के तिक्त रूप को व्यंजित करती है। यह सवेदना का जनवादी रूप है जो अलग प्रकार के सौंदर्य बोध को प्रस्तुत करता है। यह कविता शहर और गाँव के विलोम चित्रा के द्वारा सवेदना को झकझोरती है। गोबर और झुनिया महानगर मे आकर बसते है और महानगर मे उनके पुत्र का जन्म होता है। इस घटना का व्यग्यीकरण नितात दूसरे स्तर की सवेदना को जागृत करता है

"दरअसल होरी के पोते ने। महानगर म जन्म लिया। न थाली बजी न चौक पूजा। न जच्चा गवी। भोटिया दर्द से कराहती रही। गोबर भय और उल्लास। के बीच झूलता रहा।"

(पृ॰५२)

सामान्य रूप से, नीरज के रचना ससार म ये दोनो पक्ष जहाँ तक सवेदना का प्रश्न है एक दूसरे के पूरक है क्योंकि सवेदना के अनक आयाम होते है। ऐसी भिन्न प्रकार की सवेदनाएँ 'सहज' सवदनीय होती है वहाँ व्यर्थ की जटिलता एव विदूपीकरण की गुजाइश नही रहती है। प्रेम, प्रकृति, तथा पारिवारिक आशयो को कवि इसी रूप म लेता है और उनके रूपातरण मे "सहजता' को बनाए रखता है। यह "सहजता' सौदर्य और परिदृश्य को अपने अन्दर समेट लेना चाहती है ठीक उसी प्रकार जैसे "आँखे फिश एँगिल मे समो लेना/चाहती थी सम्पूर्ण सौंदर्य" (समय कविता)। यहाँ पर 'फिश एँगिल' का प्रयोग नितात नए प्रकार का है जो रचना-दृष्टि के लम्बपरक विस्तार को व्यजनात्मक 'अर्थ' प्रदान करती है। कवि वस्तुओ और परिदृश्यो को 'एहसास' के धरातल पर ग्रहण करता है और प्रभाववादी रुझान का अक्सर परिचय देता है। कवि की ऐसी रचनाएँ राग-सवेदन के आयामो को बिम्बित करने मे सफल हुई है। "माधवी लता" कविता इसी तत्व को साकेतिक रूप मे व्यक्त करती है जहाँ 'मै' सचमुच 'मै' हो जाता है और कवि को लगता है

मै जहाँ भी होता हूँ
तम मेरे साथ होती हो

एक सुगन्धभरी मुस्कान के साथ
माधवी लता। आ माधवी लता।।

अमल म, कवि नीरज का रचना ससार इसी राग-सवेदन का रचना ससार है जो हम यथार्थ क सदर्भो म दिखाई दता है। यहाँ पर मै उनक इसी पक्ष को चित्रकला, मूर्तिकला सगीत आदि के रूपाकारो और आशयो मे भी पाता हू। जैसा कि मै कह आया हूँ कि नीरज की सृजनात्मकता मे इन बिम्बो और आशयो का अपना महत्त्व है क्योंकि आधुनिक हिंदी कविता मे इस क्षेत्र को इने-गिन कवियो न ही 'अर्थ' दिया है (जैसे शमशेर, जगदीश गुप्त, महादेवी वर्मा, बलदेव वशी) और नीरज में यह 'क्षेत्र' अनेक सम्भावनाओ की सृष्टि करता है। उनके सग्रहो मे ऐसी अनक कविताएँ है और यही नहीं उनकी लम्बी कविताओ मे भी इनका बिम्बात्मक प्रयोग होता है। रग, रूप, स्पर्श, लहर, तरग, और नदी आदि मे उनका "कलाबोध" किसी न किसी *रूप मे व्यक्त होता है। शहनाई, वाद्ययत्र, नृत्य तथा मूर्ति के रूपाकार उनकी* कविताओ मे स्वतत्र एव सापेक्ष दोनो रूपो मे देखे जा सकते है। यहाँ पर प्रभाववादी रुझान भी *अक्सर दिखाई देता है जहाँ पर कवि रग, प्रकाश और* वातावरण के आपसी रिश्ते को यदा-कदा सकेतित करता है। स्वर, लय *ताल, दद, आलाप, रग प्रवाह तथा ध्वनियो का ससार नीरज की कविताओ* को एक नये प्रकार की ताजगी देता है। इस ताजगी मे एक सहजता है जो बाह्य प्रभावो को अक्सर अभ्यांतरीकृत कर उसे सवेदना और 'राग' का हिस्सा बन देता है। दृश्य, परिदृश्य, घटना और गति का यह द्वन्द्व नीरज की कविता को एक अपना "अर्थ" देता है। एक उदाहरण सितार वादन का ले जो 'सहज' रूप मे पूरे परिदृश्य को मूर्तिमान कर गति, ताल, स्वर और राग के आपसी सम्बन्ध को 'अर्थ' देता है:

"बज रहा है सितार। स्वरों का आरोह-अवरोह। लय और गति एकाकार। झनझन झनझनाहट। विलम्बित, गति विस्तार। द्रुत झाले से राग का समापन। चरम सुख-रस। थम गया तूफान।

(दु.खांत समारोह)

नीरज के काव्य मे इस प्रकार के अनेक उदाहरण है जहाँ नृत्य, सगीत, मूर्तिकला, चित्रकला के बिम्ब और आशय कवि की रचनात्मकता को गति देते है, ये चित्र एकांतिक नही है, वरन् उनका सम्बन्ध किसी न किसी मानवीय संवेदना और यथार्थ से है। कुछ और पंक्तियाँ लें:-

1. खाली कैनवास पर कितनी ही रेखाएँ/ अस्पष्ट रग शयन/ वर्तमान का कही पता नही। कल से वह भी कुकुरमुत्ते सा। उग आयेगा इस कैनवास पर। केवल कलपाने के लिए"

(यथार्थ का सूक्ष्म दश)

2. कितने ही वर्षों से शृगारे बैठी है। बणी-ठणी। एक ही मुद्रा मे। मोनालिजा का निस्सीम दर्द।

(विडम्बित स्थिति का सकेत)

मैन उपर्युक्त उदाहरणा के द्वारा यह स्पष्ट करन का प्रयत्न किया है कि नीरज काव्य म कलाआ का यह अन्तरसवाद नितात एकातिक नहा है उनके द्वारा कवि सवदना और कभी कभी यथार्थ के दश का उसकी विडम्बना को 'साकेतिक' रूप म प्रस्तुत करता है। एमी रचनाआ का यदि हम समग्र रूप स ल ता मै यह कह सकता हूँ कि नीरज काव्य का यह एक ऐसा पक्ष है जा समकालीन कविता की एक प्रवृत्ति का रूप है-एक एसा आयाम जिसकी अनेक सम्भावनाएँ है।

इधर कुछ वर्षों से नीरज की लम्बी कविताओ से गुजरा हूँ (यथा समय, तिस्ता, तथा "माधवी लता") तो स्पष्ट रूप से पाता हू कि कवि की रचनात्मकता और उसके साच-सवदन म अपेक्षाकृत अधिक घनत्व और प्रौढ़ता आयी है जिसका आरम्भ हम 'दु खात समागेह' तथा 'गणश्वर सस्कृति' आदि कविताआ म पाते है। 'समय' 'तिस्ता' तथा 'माधवी लता' कविताओ की सरचना म शिथिलता नही है वरन् वेचारिक सवेदना का एक ऐसा "कसाव" है जो पूरी सरचना को क्रमिक गति एव विकास दता है। 'समय' तथा 'तिस्ता' कविताएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है जहाँ काल, दृश्य, घटना और सवेदन के स्वरा का इस प्रकार गहर स्पर्श किया गया है कि पूरी कविता पढ़कर पाठक कुछ साचने एव सवदित हान का विवश हो जाता है जा 'आरोपित' न होकर सहज" रूप म हमारे सोच-सवेदन को आदोलित करती है। 'तिस्ता' कविता मे प्रकृति का दिक्काय विस्तार तथा 'तिस्ता' का अर्थ रूपातरण (शक्तिरूप) तथा अन म उसे जन-पापिता के रूप म एक सास्कृतिक विम्ब मे उभारना पूरी कविता का व्यापक अर्थ सदर्भ प्रदान करता है -

"समय का टुकड़ा/ खिसक गया है मेरे हाथ से/ इकाई बना/ खड़ा रहा पुल सस्कृति पर/ तुम जन को पोषती/ अनेक ज्लाधारो को

अपने में समोती/ बढ़ी जा रही हो/ अथाह समुद्र की ओर/ तिस्ता! ओ प्रिय तिस्ता।"

इसी प्रकार, "समय" कविता काल के विकास एव द्वन्द्व को मानवीय द्वन्द्व (आयुक्रम) की समानान्तरता में प्रस्तुत कर, अन्त मे व्यक्ति की अतहीन क्रमिकता और -'काल' को भी ललकारने और उसे पीछे छोड़ने की चुनौती, पूरी कविता की सरचना को "सघर्ष-सवेदना" से भर देती है और मेरी दृष्टि से, इस कविता का यही 'सहज' मानवीय सदर्भ है -

"मिल जाऊँगा इस मिट्टी मे/ खाद बनने के लिए/ और फिर जन्म लूँगा। कोंपल की तरह/ फिर एक दिन दौड़ूंगा/ अरबी घोड़े की तरह/ तुम्हें पीछे छोड़ता हुआ/ समय तुम याद रखना/ उस घड़ी को।"

समग्र रूप से, नीरज-काव्य के अनुशीलन से एक बात स्पष्ट लक्षित होती है कि कवि लगातार विचार सवदन के भिन्न आयामों(मनोदशाओं, काल, यथार्थ, आतरिक यथार्थ, प्रकृति, प्रेम एव कलाओं के अतर्सवाद) से टकराता रहा है और सदैव अपने को द्वन्द्वात्मक गति के द्वारा विकसित करता रहा है और यह विकास अब भी थमा नहीं है।

□

किशोर काबरा का काव्य : एक अंतःअनुशासनीय विवेचन

समकालीन कविता के व्यापक परिप्रेक्ष्य मे अनेक प्रवृत्तियाँ समानान्तर रूप से चल रही है जो यथार्थ और सवेदना के भिन्न आयामो से टकरा रही है। इनमे से एक प्रमुख प्रवृत्ति मिथकीय अर्थरूपातरण की है। एलियाड ने आद्य-चिंतन म प्रतीकान्वयन की महत्ता को स्वीकार करते हुए मिथको का जो निरूपण किया है उसके अनुसार जातीय साइकी मे प्रतीक कभी गायब नही होता वरन् वह बराबर नए सदर्भों म व्याख्यायित होता है। इसे ही मिथक-काल कहते है जो "महाकाल का रूप है। काल के इतिहास बोध म मिथक घुलकर इतिहास तथा धर्म दर्शन के प्रतीक-रूपो म ढलकर नैतिक औचित्यीकरण एव एतिहासिक व्याख्याएँ करने लगते है। यही मिथक की लोचशक्ति है। इस दृष्टि स आधुनिक काव्य म मिथको का प्रयोग इसी तथ्य को उजागर करता है कि इनके द्वारा कवि अपने समय की समस्याओ अवधारणाओ और भिन्न प्रकार के द्वन्द्वो को अर्थ देता है। इस प्रकार य प्रतीक, मिथक आद्यरूप तथा आद्यपैटर्न के द्वारा यथार्थ और सत्य को सकेतित करते है। मैथिलीशरण गुप्त से लेकर आजतक मिथको का जो "दोहन" हुआ है वह समय सदर्भ के अनुसार हुआ है। इसी मे मिथक का अर्थरूपातरण द्वन्द्वात्मक है। आधुनिक काव्य मे मिथक चक्र के केन्द्र म मुख्य रूप स राम और कृष्ण गाथाए रही है जिनका समय-सापेक्ष सदर्भ रहा है। इस सदर्भ म एक महत्वपूर्ण बात यह है कि महाभारत क प्रसगो को आधुनिक युग की विडम्बनाओ सघर्षों तथा विसगतियो के लिए अधिक

प्रयुक्त किया गया जबकि रामायण के प्रसगो को अपेक्षाकृत कम। इसका कारण मेरी दृष्टि से यह है कि महाभारत सघर्षगत यथार्थ के ज्यादा निकट है जवकि रामायण आदर्शीकृत यथार्थ के अधिक निकट है। जातीय मनस् मे ये दोनो यथार्थ के पक्ष इस प्रकार समाएँ हुए है कि उन्हे प्राग् इतिहास कहकर टाला नहीं जा सकता है। समकालीन कविता म विनय बलदेव वशी किशोर कावरा जगदीश चतुर्वेदी, रामदेव आचार्य, जगदीश गुप्त आदि एसे कवि है जिन्होने अपने तरीके से मिथकीय अर्थ-रूपातर को गति दी है। विनय म चिंतन का आग्रह अधिक है बलदेव वशी म विचार सवेदन के भिन्न आयाम है तथा डॉ॰ किशोर कावरा क वस्तु सकलन म विचार भाव तथा सवेदना का एक तरल प्रवहमान रूप है जो अपने म विशिष्ट है। डॉ॰ किशोर कावरा ने मिथकीय सदर्भो को इसी रूप मे लिया है जो नए सदर्भो के साथ हमारे सामने आते है। आलोचको व पाठको का ध्यान डॉ॰ कावरा पर कम ही गया है और विशेषरूप से उनके मिथक काव्य को लेकर। इस आलेख मे मै उनके मिथक काव्य के समग्र विवेचन एव मूल्याकन का प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा।

डॉ॰ कावरा के मिथक काव्य के केन्द्र म महाभारत के प्रसग अधिक है। (परिताप के पाँच क्षण नरो वा कुजरो वा तथा उत्तर महाभारत) तथा रामायण के अपेक्षाकृत काफी कम मात्र उनका खण्ड काव्य "धनुष भग"। इससे एक बात यह स्पष्ट होती है कि कवि के मानस् म महाभारत के प्रसग समकालीन यथार्थ को गहराने म अधिक कारगर है, तभी वह इनके इतिवृत्ता मे वैचारिक एव सवेदनात्मक सदर्भो का सकेतित करता है, और वह भी "सहज" सवेदनीय नाटकीय भाषिक सरचना के द्वारा। इस भाषिक सरचना में पात्रो, घटनाओ, स्मृति बिम्बो तथा वैचारिक द्वन्द्वो का एक एसा ताना-बाना है जो पाठक को बाँधे रखता है। इस प्रक्रिया में लयवद्ध छदो का भिन्न प्रयोग है जो अधिकतर नवीन छद है, पारम्परिक भी है, पर अपेक्षाकृत कम। वस्तु सयोजन मे शब्द और अर्थ का यह लयात्मक सयोजन उनके काव्यों को नीरस, आरोपित तथा कृत्रिम नहीं होने देता है। यह सही है कि इन काव्यो म स्मृति-चित्र अधिक है, और कभी-कभी उनम पुनरावृत्ति के भी दर्शन होते है। यह पुनरावृत्ति उसी समय ज्ञात होगी जब उनके खण्डकाव्यो को क्रमागत रूप म पढ़ा जाएँ। कवि की लयात्मक सयोजना म दो प्रकार के वाक्य मूलत आते है एक सक्षिप्त (न्यून

शब्द-समूह) तथा दूसरे अपेक्षाकृत दीर्घ सरचनावाले वाक्य ये दोनो प्रकार के वाक्य सयाजन, घटना तथा पात्र के द्वन्द्व के द्वारा "वस्तु" का साकेतिक विकास करते है, साकेतिक इसलिए कि स्मृतिचित्रा एव बिम्बो के परिदृश्य से पात्र अतीत को वर्तमान प्रतीति बिन्दु पर पुनर्घटित करते है और इस प्रकार घटना-चक्र के द्वारा "काल" के परिदृश्य को अर्थ देते है। "नरो वा कुजरो वा" मे समय के दरबार मे द्रौपदी, अभिमन्यु आदि तथा "उत्तर महाभारत" म पाँच पाडवो तथा द्रौपदी के स्मृति-बिम्ब घटनात्मक होते हुए भी वैचारिक उद्वेलन प्रस्तुत करते है। घटना और विचार का यह द्वन्द्व सापेक्ष है अथवा घटनाए कभी-कभी वैचारिकता को गति देती है। उदाहरणरूप "उत्तर महाभारत" मे अर्जुन कृष्ण को सम्बोधित कर युद्ध के द्वन्द्वात्मक रूप (वाद, प्रतिवाद सवाद) को आज भी प्रासगिक अर्थ देता है -

"युद्ध का वेदांत/आगे युद्ध को ही जन्म देगा/ युद्ध के मैदान मे पैदा हुआ वेदांत/अपना सिर धुनेगा/युद्ध ही पैदा करेगा/वाद के, प्रतिवाद के, संवाद के--/तर्क के सब युद्ध/ शब्दों के निरतर युद्ध।"

(पृ॰१९८)

यदि गहराई से देखा जाए तो यह कथन परोक्षत भविष्योन्मुख है जो आज का यथार्थ है-जैसे शीत-युद्ध (शब्द के निरतर युद्ध) का यथार्थ। ऐसे अनेक कथन खण्डकाव्यो मे बिखरे हुए है जो अतीत के माध्यम से वर्तमान के प्रश्नो, समस्याओ एव विचारो से जूझते है। इसी पकार एकलव्य का यह कथन पूरे कलियुग के लिए कितना सत्य है, एक अतीत की घटना (अँगूठा काटना) पूरे युग पर आच्छादित हो गया-

"मेरे कटे अँगूठे का अब दबदबा रहेगा,
पूरा कलियुग उसके नीचे दबा रहेगा।"
(नरो वा कुजरो वा, पृ॰९०)

इन सभी खण्डकाव्यो मे पात्रो के मनोवैज्ञानिक पक्ष को और उसी के साथ -कही-कही जीवन, जगत, मूल्य, धर्म, दर्शन तथा इतिहास के सदर्भो को इस प्रकार सगुफित किया गया है कि कथावस्तु के सयोजन मे मात्र कथा ही नही कही गई है, वरन् उनमे यथार्थ और सत्य के भिन्न सदर्भ एव आशय व्यंजित होते है। यह स्थिति हमे भीष्म, अम्बा, दोणाचार्य, सीता, निमि, द्रौपदी, भीम, धर्मराज, अर्जुन आदि पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण मे प्राप्त होती है। इससे हुआ यह कि वस्तु सयोजन मे विचार, घटना, द्वन्द्व

तथा चरित्राकन एक दूसरे मे इस कदर एकीभूत हो गए है कि उन्हे शायद अलग नही किया जा सकता है। जहाँ तक नारी पात्रा (द्रोपदी सीता अम्बा) का सम्बन्ध है उनमे कमावेश रूप से विद्रोह ग्लानि प्रतिशोध तथा आक्रमकता के जो दर्शन होते है व पितृसत्ता के एकाधिकार को तथा उसके शोषक रूप को चुनौती देते है जो आज के 'नारी बिम्ब को प्रक्षेपित करते है। अम्बा का भीष्म के प्रति द्रोपदी का द्रोण तथा कौरवो-पाडवो के प्रति जो आक्रोश एव विद्रोह के स्वर है वे अधिकतर आज के कवि को आदोलित करते रहे है। यह नारी विद्रोह का स्वर आधुनिक कविता मे क्रमश विकास प्राप्त करता है (मैथिलीशरण गुप्त से) और इस विकास को अर्थ देने वाले कवियो की परम्परा मे किशोर काबरा भी आते है। यदि गहराई से देखा जाए तो ये कुछ नारी पात्र आद्यरूपात्मक प्रतीक हो गए है जिन्हे कवि अपनी सवेदना मे बार बार रूपायित करता है नए अर्थ सदर्भों के साथ। अम्बा का यह कथन (भीष्म के प्रति) एक उदाहरणरूप लिया जा सकता है -

धन्य हो तुम।
औरत उपहार मे देना
तुम्हारी दमित कुठा का
उजागर पक्ष है।
भाग सकते खुद नहीं
हो भाग के साधन
जरूरतमद के अत पुर मे भेजना
शायद तुम्हारा लक्ष्य है (परिताप के पाँच क्षण पृ०६४)

इस प्रकार के अनेक भिन्न सदर्भ किशोर काबरा के काव्य मे प्राप्त होते है। यहाँ पर मात्र एक सकेत पर्याप्त है।

मै किशोर काबरा की रचनात्मकता मे कुछ ऐसे पक्षो को लेना चाहूगा जो विचार सवेदन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मेरा आशय दो सदर्भों की ओर है एक कालबोध और दूसरे प्रेम सवेदन का रूप। ये दोनो पक्ष उनके काव्य मे इस प्रकार गूथे हुए है जो उनके विचार एव सवेदन के आयामो को प्रकट करते है।

किशोर काबरा ने अपनी रचनात्मकता मे काल को एक शक्ति के रूप मे चित्रित किया है और उसकी सापेक्षता मे क्षण बोध", त्रिकाल (भूत वर्तमान भविष्य) तथा नियति की अवधारणाओ को रचनात्मक

सदर्भ दिया है। यदि गहराई से देखा जाए तो मिथकीय ट्रीटमट "महाकाल" को अर्थ देता है, क्योंकि जैसा कि मै कह चुका हूँ कि मिथक काल "महाकाल" है जो बार-बार समय-सदर्भ के अनुसार पुनर्व्याख्यायित होता है। काल का यह अर्थ-रूपातरण मूलत कवि के अनुभव-बिम्बो के द्वारा व्यक्त होता है जिसमे काल के सप्रत्यय का बोध परोक्षत अन्तर्निहित रहता है। इसी सदर्भ मे एक बात यह रही है कि कवि के बोध मे काल का विम्ब नाटकीय रूप ग्रहण करता है, क्योंकि कवि पात्रो के सवाद या अन्तर्द्वन्द्व के दौरान यदा-कदा काल के भिन्न रूपो (शक्ति, नियति, त्रिकाल, मृत्यु आदि) को सकेतित करता है, जो उसकी सहज सवेदनीयता मे वैचारिकता के घोल को प्रस्तुत करता है। "परिताप के पॉच क्षण" मे भीष्म की इच्छा-मृत्यु भी काल के सामने नतशिर है जो परोक्षत काल के शक्ति रूप को सकेतित करती है। अम्बा का यह कथन ले

> मोह इच्छा मृत्यु के वरदान का तुमको अगर है
> पूछती हूँ-
> कौन कब तक लड़ सका है काल से?
> जो नही दो बूँद सुख की पी सका अब तलक
> इच्छित जिन्दगी के प्राण पनघट से
> क्या उसे अमरत्व के घट मिल सकेगे
> मात्र इच्छा-मृत्यु के सुनसान मरघट से?"
>
> (पृ०३३)

यही स्थिति समय-दरबार की है जिसके कटघरे मे द्रोण की उपस्थिति है। वह समय जिसकी दृष्टि से कोई भी बचता नहीं है, वह सभी को देखता, परखता, सुनता है और "क्षणो की चलनी" से सत्य को छानता है यहाँ पर सत्य समय-सापेक्ष है जो आनेवाली पीढ़ियों को प्रेरणा एव गति देता है -

> समय केवल देखता है, परखता है
> और सुनता है सभी को
> फिर क्षणो की चलनियो से छानता है सत्य को
> और उसका आकलन करके
> नए युग की अनागत पीढ़ियो को सोपता है।
>
> (नरो वा कुजरो वा, पृ०७५-७६)

काल का उपर्युक्त रूप परोक्षत मानवीय अनुभव मे "त्रिकाल" को

निरन्तरता को सकेतित करता है क्योंकि मानव की विकास यात्रा भूत वर्तमान और सभावना को एक क्रम मे लाती है। चेतना की दृष्टि से काल के ये तीनों खण्ड सापेक्ष है लेकिन व्यक्ति या रचनाकार वर्तमान की प्रतीति विदु स अतीत को 'अर्थ' देता है और सभावना या भविष्य को अनुमानित करता है। इसी से वर्तमान प्रतीति विदु का मानवीय अनुभव मे विशेष स्थान है यही कारण है कि स्टेस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "टाइम एण्ड इटर्निटी" म वर्तमान विदु को 'अनत अब" की सज्ञा दी है जहाँ पर खड़ा होकर व्यक्ति काल के परचगामी (भूत) एव अग्रगामी (भविष्य) खण्डो को एक निरन्तरता बोध म अनुभव करता है। कवि ने इस वर्तमान विदु की महत्ता को माँ मत्स्यगधा क इस कथन म साकार किया है -

याद रखो
जिन्दगी का रथ नही कल पर टिका है।
आज की अवहलना कर
जो अतीतोन्मुख भविष्यान्मुख बना
दुर्भाग्य का राता हुआ-सा
इस धरा पर जी रहा है।

(परिताप के पाँच क्षण पृ०३३)

कवि ने 'उत्तर महाभारत" म स्वर्ग-यात्रा के तहत अत म धर्मराज के सदर्भ में जो स्मृति (सस्मरण) का परिदृश्य उपस्थित किया है, वह कवि के नए प्रयोग को अर्थ देता है जा काल के परिदृश्य को एक व्यापक सदर्भ देता है

चरण जो आगे वढ़ा वह सस्मरण है,
चरण जो पीछे रहा, वह विस्मरण है।
सतुलित जिस जन्म म दोना चरण है,
समझ लो, वह जन्म अंतिम सस्मरण है।

(उत्तर महाभारत, पृ०२२९)

यहाँ 'आगे", "पीछे" का सतुलन परोक्षत वर्तमान की सापेक्षता म अतीत और भविष्य का सम्यक्-सतुलन है जो मानव-जीवन का एक सार्थक सस्करण कहा जाना चाहिए। इस कालबोध के सदर्भ में "क्षण बोध" का अपना एक विशिष्ट महत्व कावरा के काव्य म है। चाहे वह गगा हो, भीष्म अवा सीता हो या निमि-इन सभी पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व म क्षण का अपना एक अर्थवान् सदर्भ है। यदि गहराई स देखा जाए तो "परिताप क पाँच क्षण म" प्रत्येक क्षण काल क किसी न किसी खण्ड को अर्थ दता है

और पात्रों की स्मृति मे घटनाएँ और पात्र अपनी गत्यात्मकता के द्वारा जीवन के भिन्न आयामो को उद्घाटित करती है। कवि की ये पंक्तियाँ सामान्यत उपर्युक्त दृश्य को साकेतिक रूप मे प्रकट करती है -

> "युग बन गए अर्न्तजगत मे
> आह, पिछले पाँच पल
> परिताप मे डूबे भयानक पाँच पल।"
>
> (पृ०९९)

द्रोण की मन स्थिति मे सभी "कुछ थम गया था, एक क्षण, दो क्षण कई क्षण" यहाँ पर क्षण का रूप गत्यात्मक होते हुए भी स्थिर हो गया है, क्योंकि मनोवैज्ञानिक काल के सदर्भ मे एक क्षण ऐसा भी आता है जो घटनाओ एव प्रक्रमो को स्थिर कर देता है। कवि ने इस पूरे प्रसग को जिस अर्न्तदृष्टि से अर्थ दिया है, वह मेरे विचार से काल बोध के एक महत्त्वपूर्ण आयाम की ओर सकेत है। काबरा के खण्ड काव्यो की सरचना मे काल और क्षण (वर्तमान) के इस सापेक्ष सम्बन्ध को समझना अत्यत जरूरी है तभी हम उनके काव्यों के सौदर्य को, उसकी सरचना को तथा उसके जैविक रूप को सही परिप्रेक्ष्य दे सकेगे।

जागतिक काल के सदर्भ मे दिक् का स्वरूप सापेक्ष है और दिक् के विस्तार मे सम्बन्धो और घटनाओ का द्वन्द्व भी है और सयोग भी। प्रेम और प्रणय भी एक सम्बन्ध है और मानवीय मनोविज्ञान मे उस सम्बन्ध का सबसे प्रखर रूप है स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध जो प्रकृति मे व्याप्त विलोम-आकर्षण का रूप है। किशोर काबरा न प्रेम या प्रणय के जिस रूप को "परिताप के पाँच क्षण", "धनुप भग", तथा "नरो वा कुजरो वा" मे प्रस्तुत किया है, वह मूलत द्वन्द्वात्मक है, मनोवैज्ञानिक है, मनस् (साइकी) ऊर्जा का प्रतिफलन है और जीवन की प्रक्रियाओ मे एक प्रेरक तत्त्व है। वह जहाँ "द्वैत" को जन्म देता है, वही अपनी चरम् परिणति मे "अद्वैत" की अनुभूति देता है। अम्बा का शाल्व युवराज के प्रति कथन इसका सुदर उदाहरण है -

> प्रणय है श्याम, पणय है श्वेत,
> प्रणय है बीज, प्रणय है खेत।
> प्रणय की प्रथम भूमि विश्वास,
> प्रणय का अंतिम क्षण अद्वैत।
>
> (परिताप क पाँच क्षण, पृ०५८)

इसी प्रसग में प्रेम का एक अत्यत संवेदनापूर्ण द्वन्द्व है भीष्म का वह गुप्त प्रणय जो अंतिम-क्षणों में अम्बा (शिखडी) के प्रति प्रकट होता है। यहाँ पर आत्मग्लानि, समर्पण तथा वेदना का जो सांकेतिक रूप प्रकट होता है, वह भीष्म के चरित्र को एक नया आयाम देता है जो कवि की मौलिक उद्भावना है:-

"देह अर्जुन के शरों से/छिद रही थी/मर रही थी/किंतु मेरे प्राण तो तेरी नजर पर जी रहे थे/वह शिखंडी तो बहाना था/तुझे ही देखने में लीन/मेरे रोम मदिरा पी रहे थे---। अब दो क्षण बचे हैं/प्रियतमे अम्बे/ मौत के पहले जरा कह दे/मुझे तू चाहती थी।"

और अंत में कवि का यह संवेदनापूर्ण चित्र जो भीष्म के सारे संताप और ग्लानि को एक क्षण की शिला पर अंकित कर देता है -

"और, देखा आह से सहमी दिशाओं ने
एक आँसू कुछ गला
गलकर गिरा
गिरकर जमी पर चू गया।"

(परिताप के पाँच क्षण, पृ॰ ९४-९५)

"धनु भंग" में प्रेम की पीर को महत्त्व दिया गया है जो सूफी प्रेम के निकट है, लेकिन कवि ने इस "पीर" को मानव "अस्मिता" तथा मानव सत्य से जोड़कर, उसे व्यापक संदर्भ दिया है, वह एकांतिक नहीं है। जनक का कथन है-

नीर में,
प्रेमी हृदय की पीर हो,
पीर
जिसमें मनुज की पहचान हो,
मनुज
जिसमें सत्य का संधान हो।
सत्य का आकाशी नहीं
जो स्वर्ग का अनुबंध हो,
सत्य धरती का
कि जिसमें
मृत्तिका की गंध हो। (धनुष भंग, पृ॰ ६३)

यहाँ पर सीता का प्रतीकार्थ स्पष्ट है जो "धनुष भग" मे पूरी अर्थवत्ता प्राप्त करता है। असल मे "धनुष भग" मे नृतत्वशास्त्र की दृष्टि से मानव विकास की उस अवस्था का रूप है जो कृषि आधारित समाज था ओर सीता उसी कृषि-धरती की पुत्री थी। कवि इसे हल सस्कृति कहता है और निमि की सारी कथा एक ऐसे बिम्ब का प्रक्षेपित करती है जो "मिट्टी" की कहानी है, इस कहानी मे मानव-दर्शन का पुट है। निमि क्षण-बोध को देता है जो इस काव्य मे समाहित है। निमि का क्षण बोध ही सीता की पलको पर बैठ गया है। और सारा समय-चक्र सीता की पलको के सामने घूमने लगता है। निमि ही विदेह, जनक मिथिल के नए रूपो मे अवतीर्ण हुआ है जो ग्रामीण सस्कृति के अधिष्ठाता है। कवि ने पूरे प्रसग को एक "प्रतीकार्थ" का रूप देकर उसे आज के सदर्भ से "अर्थ" दिया है-

निमि को प्यारी थी जितनी मिट्टी की गध
मिथिल ने उससे ज्यादा मिट्टी का शृगार किया।
निमि को गहराई तक था जितना क्षणबोध
मिथिल ने उसको हर क्षण जीवन म व्यवहार किया।
(धनुष भग, पृ०६९)

इसी प्रकार उत्तर महाभारत मे "महाभारत" का प्रतीकार्थ विचार-सवेदन के आयामो को अर्थ देता है। कवि ने "उत्तर महाभारत" के दो प्रतीकार्थ दिए है-एक द्रौपदी और युधिष्ठिर के विलोम प्रतीकार्थ और दूसरे मनावैज्ञानिक प्रतीकार्थ। दौपदी निम्नगामी चेतना है और युधिष्ठिर उच्चगामी (आध्यात्मिक) चेतना और इन दोनो के बीच म विकल्प से जुड़ा महासमुद्ररूपी महाभारत है -

निम्नगामी वासना यदि द्रौपदी म है
युधिष्ठिर मे छिपी है उर्ध्वगामी चेतना
बीच मे जीवन महासागर
महाभारत सरीखा
सब विकल्पो से जुड़ा
शत-शत नयी सभावनाओ के किनारो को भिगाता है,
उत्तर महाभारत यही से शुरू होता है।
(पृ०२५३)

यही नहीं, कवि तो यहां तक कहता है-"इस कहानी म समाया/सृष्टि का सव ज्ञान, सव विज्ञान है"- यह मत अपने मे एकागी है, क्योंकि ज्ञान-विज्ञान उतना विस्तृत एव अतहीन है कि उसके वारे मे यह कहना कि वह किसी ग्रथ म अपनी परिपूर्ण अवस्था म है, ज्ञान के गत्यात्मक रूप के प्रति एक अधूरी दृष्टि है। यह सही है कि हर महान ग्रथ सत्य और ज्ञान के किन्हीं पक्षों को उद्घाटित करता है, पर शायद सम्पूर्ण या अंतिम नही। इसी का एक रूप ऊपर दिया गया है और दूसरा रूप वह है, जहाँ द्रौपदी एक छोर पर है और युधिष्ठिर दूसर छोर पर, इन दोनो के बीच म युगा, आश्रमो, नीतियो, वेद और पुरुषार्थ की "चतुरंगिनी सेना" खड़ी है। (पृ०२५३) एक अन्य सदर्भ मनोविकारा का है, वह है पॉच पाडव के रूप म पाडव ही पॉच कर्मेन्द्रियॉ+पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है और द्रौपदी है मन जो उन्ह बाधे रखती है। यही मानव जाति का क्रमिक मनावैज्ञानिक इतिहास है और वदव्यास इस इतिहास के पीछ छिपा एक सत्य है, इतिहास है- एक ऐसा इतिहास जो "ऊर्ध्वीकरण" की ओर जाति या व्यक्ति को ले जाता है-

> "द्रौपदी का और पाँचो पाडवा का
> यह क्रमिक इतिहास है,
> क्योंकि
> मानव जाति की हर श्वास के पीछे
> सदा से एक वेदव्यास है।" (पृ०२५४)

मे समझता हूँ कि डॉ० कावरा ने महाभारत के प्रसगो को जो रचनात्मक सदर्भ दिया है, उसके पीछे कवि की यही प्रतीकात्मक दृष्टि परोक्षत कार्य करती है। असल मे, मिथकीय काव्यो मे प्रतीक, आद्यरूप, प्रतीकगुच्छ, स्वप्न, फन्तासी, तथा कीमागरी-सभी का न्यूनाधिक योग रहता है और कावरा के काव्यों म कथा का प्रवाह, वैचारिकता के साथ गतिशील होता है। यही कारण है कि उनके काव्या मे वस्तु (कथ्य) और विचार का सयोग प्राप्त होता है और वह वोझिलता नहीं प्राप्त होती है जो अक्सर हमे नयी कविता के मिथक काव्यों मे प्राप्त होती है। यहाँ पर मै एक प्रसगोद्भावना की ओर सकेत करना चाहूँगा,जहाँ पट्रसो का मानवीकृत प्रतीकत्व प्राप्त होता है, जिसका सम्बन्ध भीम से है, जो भोजन-पटु है। मृत्यु से पूर्व चेतना स्वच्छ होती है और व्यक्ति अपने जीवन के कर्मों का तटस्थ मूल्याकन

उसी क्षण करता है-यह स्थिति "नरो वा कुजरो वा" और "उत्तर महाभारत" मे समान रूप से प्राप्त होती है। भीष्म, पॉच पाडवो और द्रौपदी के अन्तर्द्वन्द्व मे मृत्यु से पूर्व के क्षण इसलिए अर्थवान हो उठते है कि यहाँ पर व्यक्ति का अन्तर्मन "पारदर्शक" हो जाता है, निष्काम और निष्कलुष हो जाता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। भीम भी ऐसे क्षण से गुजरता है और अंतिम समय मे भोजन के छ रस उसके जीवन चक्र को, उसके राग-द्वेष को रस के गुण-स्वभाव की मापेक्षता मे साकेतिक करते है। "मिष्ट" रस के कथन मे हिडिम्बा का राग-तत्त्व है, "अम्ल" में बकासुर और जरासध का प्रसग है "तिक्त" रस मे द्रौपदी की ट्रेजेडी का तीखा एहसास है, "कषाय" रस के सदर्भ मे बनवास और जयद्रथ द्वारा द्रौपदी के हरण का कसेला अनुभव है, "कटुक" रस मे दु शासन एव दुर्योधन-वध का कड़वा अनुभव है तथा "क्षार" रस मे अभिमन्यु वध, घटोत्कच-प्रसग की आत्म-ग्लानि है। इस पूरे उद्वेलन के बाद भीम जहाँ पहले ज्वालामुखी-सा जल रहा था, वह अब "मोम जैसा मृदुल होकर गल रहा था।" यही नहीं, सभी रस (छ) आनद रस मे "घुल" गए, और चेतना के सभी द्वार मुक्त हो गए थे, और अत मे---

> "जिदगी का रस समूचा पच गया है,
> जीभ पर बस "रसो वै स " बच गया है।
> काल/मेरी साँस का हर तार ले लो,
> पवनसुत को पवन के उस पार ले लो।"
>
> (उत्तर महाभारत, पृ॰२२८)

इस प्रकार डॉ॰ काबरा के मिथक-काव्य मिथकीय ट्रीटमेंट" के उस रूप को व्यक्त करते है जो मिथक काल को "महाकाल" का स्वरूप देता है। उनके काव्य मे प्रतीक, प्रतीक-गुच्छ, वैचारिकता, सवेदना, पात्रो का अन्तर्द्वन्द्व, स्मृति का परिदृश्य, भाषा की नाटकीय प्रवाहमयता तथा अपने समय की अनुगूँज प्राप्त होती है जो मिथक की "लोच शक्ति" के द्वारा सभव हुई है। उनके मिथक काव्य आधुनिक हिन्दी कविता मे अपना अलग "व्यक्तित्व" रखते है। उनमे विचारो व प्रत्ययो की बोझिलता नही है, वरन् विचार, सवेदना और राग मे ढलकर सामने आते है और उनकी प्रवाहमय सरस भाषिक सरचना इसमे सहयोग देती है।

◻

नन्दकिशोर आचार्यः काव्य-संवेदना के आयाम

समकालीन कविता के व्यापक परिप्रेक्ष्य मे हरेक प्रदेश की 'गध' का अपना महत्त्व है क्योंकि इस 'गध' के साथ ही हिंदी की समकालीन कविता मे संवेदना और विचार के अनेक आयाम प्राप्त होते है। इस दृष्टि से, राजस्थान के (बिहार, मध्यप्रदेश आदि के भी) अनेक कवि (यथा नद चतुर्वेदी, हरीश भादानी, नन्द किशोर आचार्य, विजेन्द्र आदि) अपनी सृजनात्मकता के द्वारा हिन्दी कविता को वृहद् और अर्थवान् सदर्भ दे रहे है। यहाँ पर मै नद किशोर आचार्य के रचना-संसार को इसी दृष्टि से लेना चाहूँगा।

आचार्य जी के कविता संग्रहो से गुजरते हुए एक तथ्य यह स्पष्ट होता है कि जहाँ उनके सृजन मे यहाँ के रेगिस्तान, यहाँ का जनजीवन तथा यहाँ के 'शब्द' अपनी भूमिका अदा करते है, वहीं उनके कवि-कर्म में ज्ञान-विज्ञान के कारको से उद्भूत 'दृष्टि' के भी दर्शन होते है। कवि की प्रवृत्ति मूलत. आतंरिकीकरण' की है, और उसकी अभिव्यक्ति का रूप सघन एव सूक्ष्म "रुपाकारो" का है। इसी से आचार्य की कविताओ को समझने के लिए एक अलग तरह के भावबोध की जरूरत है जो आज की कविता की मुख्यधारा जो सहज, तिक्त, संघर्षशील तथा विक्षोभ की कविता है, उससे यह कविता-धारा अपना अलग अस्तित्व रखती है। इसके बावजूद यह कहा जाना जरूरी है कि ये दोनो धाराएँ समकालीन कविता की विविध आयामी 'सवेदना' को सकेतित करती है। इसी से मेरा यह मानना है कि आज की कविता (चाहे तो साहित्य भी) को समझने के लिए पाठक को, विशेषकर

आलोचक को 'भावबोध' के भिन्न स्तरों का 'विवेकसम्मत' आस्वादन करना जरूरी है। ये दोनों धाराएं मूलतः यथार्थ के भिन्न आंतरिक और बाह्य रूपों को 'अर्थ' देती हैं। यह दूसरी बात है कि कोई बाह्य पक्ष को अधिक महत्त्व देता है, तो कोई आंतरिक पक्ष को। पर दोनों किसी न किसी रूप में यथार्थ को ही अभिव्यक्ति देते हैं। एक को दूसरे का 'प्रतिक्रियावादी' कहना ठीक नहीं है, बल्कि यह कवि के यथार्थ बोध और रचना दृष्टि का प्रश्न अधिक है।

नंद किशोर आचार्य की नवीनतम कृति 'कविता में नहीं है जो' (१९९५) को केन्द्र में रखकर उनके विविधआयामी रचना संसार को उनके अन्य कविता संग्रहों (-जल है जहाँ और 'वह एक समुद्र था') की सापेक्षता में विवेचित करना इसलिए आवश्यक है कि इसमें उनका एक 'समग्र रचना-बिम्ब' उभर कर सामने आ सके।

आचार्य जी की सूक्ष्म संवेदना में भाषिक संरचना का रूप इकहरा नहीं है, उनकी भाषा और शब्द संवेदना की गहराई है जिसमें चिंतन और भोलेपन की 'सहजता' है। इस सहजता में अनेक 'अंडरकरेंन्टस' हैं जिससे 'अर्थों' की अनेक भंगिमाएँ प्रकट होती है। शब्द की संप्रेषणीयता के अनेक स्तर हैं जो उनके संग्रहों में बिखरे पड़े हैं। शब्द को मात्र एक ही स्तर से बाँधना, कविता के व्यापक संदर्भ को नजरअंदाज करना है। आचार्य जी की एक कविता 'इस बीच' में कवि के 'अर्थ' को छीनकर पाठक या दूसरा अपना अर्थ भरने लगता है तो ऐसी स्थिति में कवि उस 'दिए गए अर्थ' का क्या करे जो वह देना ही नहीं चाहता है

इस बीच
मेरा अर्थ मुझसे छीनकर
भर दिया अपना अर्थ मुझमें
अब तुम्हीं बताओ
उसका क्या करूँगा मैं? ('कविता में नहीं है जो' से)

संप्रेषण की यह भी एक स्थिति है पर एक स्थिति वह भी है जहाँ कवि के इच्छित अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ भी लगते हैं जिसके प्रति शायद कवि भी सचेत न हो। यहाँ पर पाठक या आलोचक अपनी तरह से 'अर्थ-सृष्टि' करता है जो रचना के व्यापक अर्थ संदर्भों को व्यक्त करता है। यही पाठक और कवि का द्वन्द्वात्मक रिश्ता है। कविता की यह विविध पारदर्शिता हमें अन्य संग्रहों में भी प्राप्त होती है। 'वह एक समुद्र था' में

शब्द वह माध्यम है जिसके द्वारा कवि तुमको (परिवेश) सूँघता, चूमता है और खँख-छूछी उड़ती रेत- को भी पार कर जाता है.-

'अब तक शब्द है निर्मल
मैं उसी में से/तुम्हें देखूँगा, सूँघूँगा
चूमूँगा, थाम लूगा
उसी के सहारे मैं
खँख के-और धार के भी/पार हो लूगा।'

('वह एक समुद्र था' से)

आचार्य जी की अधिकांश कविताएँ एक गहरी-सघन सवेदना और बोध से संपृक्त रहती हैं जिसकी मूल मे आध्यात्मिकता का स्पर्श रहता है जो धर्म-निरपेक्ष आध्यात्मिकता है। इसके द्वारा कवि की सृजनात्मकता मे आत्मा की 'आद्रता' प्राप्त होती है। यही कारण है कि वे प्रकृति, मानव-जगत और ब्रह्मांड मे जो रूपाकार ग्रहण करते है (जैसे जल, वृक्ष, खण्डहर, रेत, नदी आदि) उन्हें अपनी आत्मिक 'आद्रता' और 'ऊर्जा' से अर्थगर्भित कर देते हैं। अत. कवि की संवेदना में प्रकृति, जगत, दिक्काल, चेतना, ईश्वर, प्रेम, स्मृति तथा संघर्ष के अनेक साकेतिक रंग-रूप प्राप्त होते हैं जो कवि की सौंदर्य-चेतना और आध्यात्मिकता को मानवीय अर्थवत्ता प्रदान करते है। यह आध्यात्मिक ऊर्जा मूलत. आंतरिक है जो कौंधों, रहस्यों तथा अतिकल्पनात्मक अभिवृत्तियों को वैयक्तिक एवं सामूहिक स्तरों तक ले जाती है। यहाँ पर चीजें घटनाएँ तथा व्यक्ति इस तरह गहराई से अर्थ संप्रेषित करते हैं जिसे शायद पूरी तरह से 'व्याख्यायित' नहीं किया जा सकता है, पर उसे 'गूँगे के गुड़' की तरह अनुभूत किया जा सकता है। यही व्याख्या से परे अर्थ का एक गहरा 'आंतरिकीकरण' है जो मनोवैज्ञानिक और परामनोवैज्ञानिक है। कवि अपनी एक कविता में चूल्हा, राख, बर्तन और लकड़ी के सापेक्ष क्रियाव्यापार द्वारा 'राख' को व्यापक अर्थ-संदर्भ देता है जो समझी तो जा सकती है, पर शायद पूरी तरह से व्याख्यायित नहीं की जा सकती :

'घर चूल्हे से है/और चूल्हा उससे/जो उसमें होती रहती है/राख जल जल कर/----हम केवल स्वाद लेते हैं/और जूठे बर्तन/मंज मंज कर/चमकाएँ जाते हैं/फिर उसी राख से।'

('कविता में नहीं है जो' से।

यह अध्यात्म का जागतिक रूप है तथा उसका एक अन्य रूप है 'मै' और 'तुम' का रहस्यमय सबध जो सीमाबद्ध काल (समुद्र) मे मिलने की अनुभूति देता है, इस पर कवि का यह प्रश्न जो पुनर्जन्म पर प्रश्नचिह्न लगाता है

'अनत नही है यह सागर/किनारा है कही तो/और अतत हम/पहुँच भी जाएँगे ही वहाँ/---- -तो क्या?/जब तुम भी वही होगे/और मै भी?

('कविता मे नही है जो' से)

आचार्य जी की आध्यात्मिकता मे प्रश्नाकुलता है जो विवेक और अन्तर्दृष्टि पर आधारित है। यही प्रश्नाकुलता 'ईश्वर' के प्रति भी है। ऐतिहासिक दृष्टि से धर्म तथा ईश्वर ने हमारी आध्यात्मिकता को जकड़ रखा था, अब ईश्वर या पराचेतना इससे मुक्त होकर एक नए सदर्भ मे 'अर्थ' प्राप्त कर रही है। यह अतरावलोकन (इन्ट्रास्पेक्शन) का विषय हो गई है और साथ ही अतीन्द्रिय प्रत्यक्षीकरण (इकस्ट्रासेन्सरी पर्सेप्शन) का भी। यह चित्त या चेतना की द्वन्द्वात्मक दशा है जहाँ कोध, रहस्यात्मक अन्तर्दृष्टि तथा अतिकल्पनात्मक स्थितियाँ जन्म लेती है जो चेतना की ऊर्ध्व स्थितियाँ है और शायद इसकी कोई सीमा नहीं है। ये परामनोवैज्ञानिक स्थितियाँ है जिन्हे अभी तक वस्तुवादी प्रविधियाँ सिद्ध नही कर सकी है, पर वे है। आचार्य जी मे यह आतरिक अवलोकन की झलक दिखाई देती है, और इसी के तहत वे प्रचलित मान्यताओ पर अक्सर प्रश्नचिह्न लगाते है। ईश्वर (या ऐसी पराकल्पनाएँ) क्या है, वह मानव के 'सोचने' का फल है जो विकास के साथ है, निरपेक्ष नही। मानव ही ईश्वर का निर्माता है, कवि कहता है-

होकर भी क्या होता?
सोचता नही यदि मै तुम्हे?
चाहे तुम
ईश्वर ही होओ।।

दूसरी ओर, उनकी यह स्वीकारोक्ति

ईश्वर एक अधी गली है
जहाँ प्रत्येक रास्ता
चुक जाता है। ('जल है जहाँ' से)

ये दोनो उदाहरण यह स्पष्ट करते है कि ईश्वर मानवीय विचार का

फल है और वह अंध-धारणा है जो हमारे सोच को स्थगित करती है और ज्ञान की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के विरोध में है। एक अन्य स्थल पर जाति-रूढ़ि पर एक व्यंग्यात्मक चोट 'परमात्मा' के माध्यम से की गई है जो परमात्मा के बिम्ब को सामाजिक संरचना की सापेक्षता मे 'खंडित' करती है :

'उसका परमात्मा भंगी ही होगा, मेरा ब्राह्मण,
इसलिए वह छू भी नहीं सकता
मेरे परमात्मा को
वह जाए अपने वाले के पास
जो कहीं विष्ठा उठाता होगा
मेरे परमात्मा की।' ('वह एक समुद्र था' से)

यहाँ भाषा का तेवर कुछ सपाट और खुरदुरा है जो अक्सर उनके पूर्ववर्ती संग्रहों में प्राप्त होता है, लेकिन आचार्य जी की मूल प्रकृति सूक्ष्म एव सघन सवेदनाओं की सृष्टि है, और इसी के अनुरूप उनकी भाषिक संरचना -गहरे-सूक्ष्म अर्थों की वाहक है। इस दृष्टि से मै उनके काव्य-संग्रहों में प्रयुक्त अनेक रूपाकारों मे से तीन रूपाकारों को विशेष महत्त्व देता हूँ जो उनके सृजन मे 'आद्यरूप' (आरकिटाइप्स) की तरह है और साथ ही गहरे विविध अर्थों के व्यंजक भी। ये बिम्ब या रूपाकार है जल, रेत या रेगिस्तान और खण्डहर।

आचार्य जी के रचना संसार में जल विविधार्थी है-वह सृष्टि और प्रकृति का मूल तत्त्व है। जल कहीं पारदर्शी है, प्रेमिल है, धर्मनिरपेक्ष आध्यात्मिक है, प्रजापति भी है और कुम्हार भी। जल एक बूँद भी है जो आँखो में सबसे ज्यादा संवेदनात्मक है। दूसरी ओर, दोहन प्रवृत्ति के कारण जल-समृद्धि को कम करती पृथ्वी 'मरुभूमि' बनाती जा रही है। 'वह एक समुद्र था' की अनेक कविताएँ मनुष्यता और मरुस्थल में समान रूप से लुप्त होते इस जल की द्रवणशीलता तथा तरलता के प्रतीकत्व को व्यंजित करती है, तभी तो कवि का प्रश्न है-'तुम्हारी आँख में क्या?/एक बूँद ही सही/जल भरता नहीं। वास्तव में दिक्-काल मे जो मरुस्थली है, वही इस सदी के अवसान के समय मानवीय सवेदना एवं चेतना का अभाव है। कवि कहता है-'थार के विस्तार में/यह वह रही है नदी/सूखी/'। दूसरी ओर पानी का रूपातर मेघ के रूप मे एक वैज्ञानिक तथ्य है जिसके द्वारा कवि अत्यंत कुशलता से 'पानी' के व्यापक अर्थ-संदर्भ को व्यक्त करता है-

'भूलता नहीं पर पानी
फिर फिर लौट आता है
फिर से उमड़ने-घुमड़ने के लिए
उस आकाश में।' ('कविता में नहीं है जा' से)

मरुस्थल के विस्तार म 'रेत-कणों' का व्यापक मघात है। अत रत और रेगिस्तान का सापक्ष सबध है, और कवि अपनी एक कविता 'निस्सग रेगिस्तान' म रतकनी का 'टीबा' न बनन की हिदायत दता है आवश्यकता है 'कनी' का रेगिस्तान बन कर रहना (व्यक्ति का समूह में एकीकृत हाना)-

'यों भटकती हो कनी?
जब एक रेगिस्तान ही पसरा है, चारों ओर।
कनी। टीबा नहीं
रेगिस्तान बन कर रहो
सारे टीबों को समाए खुद में-
निस्सग रेगिस्तान।' ('कविता में नहीं है जा' से)

आचार्य जी क काव्य में रेगिस्तान अपनी पूरी अर्थवत्ता के साथ आता है और यही नहीं, उनकी काव्य-सवदना में लोकज शब्द स्वाभाविक रूप मे आए है, यहाँ आरापण या 'ठूसने' की प्रवृत्ति नहीं है जा हमें कभी-कभी विजेन्द्र जी म प्राप्त होती है। हरीश भादानी में भी मरुस्थली के शब्द कहीं 'सहज' ता कहीं 'आरोपित' से लगते है। आचार्य जी में ऐसी प्रवृत्ति नहीं के बराबर है। उनके काव्य ससार में खँख, कनी, टीबा, राइड़ा, बवलिया, पपवाड़ा, धोरे, रड़क तथा जगरा जैसे लोकज शब्द आए है जिनकी जगह शायद दूसरा शब्द रखा भी नहीं जा सकता है। यदि गहराई से देखा जाए तो कवि ने मोसमों, जलो, वृक्षो, लता-वीरुधों और व्यक्तियों के सम्पर्क-सवाद से अपनी धरती मरुस्थली को, अपनी सृजन-ऊर्जा का एक महत्त्वपूर्ण 'घटक' बनाया है जो उस 'मरुस्थल का कवि' घोषित करता है। मेरे विचार से मरुभूमि के भिन्न प्रतीकार्थ आचार्य जी की अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

इसी प्रकार, एक अन्य अर्थगर्भित रूपाकार है 'खण्डहर' जा कवि के विचार-सवेदन को आदोलित करता है। यहा पर खण्डहर भिन्न वेचारिक एव सवेदनात्मक रूपों में आता है। एक रूप ठम्क काल-सापक्ष रूप स

सबंधित है जहाँ खण्डहर मात्र मृत अतीत न होकर, वरन् वह एक 'उपस्थिति' है और जिसके सीने मे आज भी 'दर्द' उठ रहा है। यहाँ पर अतीत वर्तमान की सापेक्षता म जीवत है 'स्मृति नही है यह/किसी बीते हुए की/यह एक उपस्थिति है/खण्डहर ही सही।' एक अन्य स्थान पर कवि यह प्रश्न करता है कि 'तो क्या मै, अतीत/और खण्डहर/जिस पर हम मिलते है/सब वर्तमान है।' कवि ने यहाँ पर वर्तमान के महत्त्व को व्यंजित किया है क्योकि काल और इतिहास, वर्तमान या 'अब' की सापेक्षता म ही 'अर्थ' प्राप्त करते है। 'खण्डहर' एक तरह से यहाँ पर अतीत और वर्तमान का ही नहीं, वरन् मै (व्यक्ति) को भी जोड़ता है। यह सारी प्रक्रिया जहाँ एक ओर ऐतिहासिक-काल की प्रक्रिया है, वही वह व्यक्ति या मै की प्रक्रिया भी है, जो इतिहास-प्रक्रिया का अग है क्योंकि इतिहास मानव-सापेक्ष सप्रत्यय है। खण्डहर को लेकर आचार्य जी 'सूनेपन' को एक नया सदर्भ देते है जो 'समय मे खिला/एक सूनापन है खण्डर/समय के सूनेपन मे/अपने खिलने को/गहराता हुआ।' यहाँ पर काल सूनापन और खण्डहर का सापेक्ष सबध है और यह हमारी अनुभूति भी है कि जब हम किसी खण्डहर मे जाते है तो वहाँ पर जैसे काल स्मृति के रूप म एक अजीब सूनेपन की अनुभूति देता है जिसे शायद शब्दो के द्वारा पूर्ण तरह से अभिव्यक्त नही किया जा सकता है।

'कविता मे नही है जो' मे उपर्युक्त खण्डहर के जो रूप प्राप्त होते है, उनमे बाध और सवेदना का गहरा सबध है और यह रागात्मक सवेदन आचार्य जी की एक अन्य कविता मे भी है जहाँ वे 'प्रेम' के सदर्भ में 'खण्डहर' को किस खूबी के साथ व्यक्त करते है जहाँ 'प्रिय' का आना बरसात मे खण्डहर का हरा होना है, वहीं प्रिय का जाना कवि को खण्डहर करके चला जाना है, यहाँ पर खण्डहर शब्द का प्रयोग श्लेषात्मक भी है और सवेदनात्मक भी-

'यो ही आ गयी थी तुम

खण्डहर पर हरियाली/आ जाए/बरसात मे जैसे/

इसलिए लौट ही जाना था/तुम को

और खण्डहर करती हुई/मुझे।'

उपर्युक्त विवेचन म यह स्पष्ट है कि आचार्य जी का रचना-ससार जहाँ मानवीय सरोकारों से सबंधित है, वहीं उनकी सृजनात्मकता म य

सरोकार 'ध्वनित' होते है वह भी सूक्ष्म एव सघन सरचना द्वारा। कवि के रचना ससार मे 'विचारो' का रचनात्मक 'घोल' है यही कारण है कि उनकी कविताओ मे एक अलग प्रकार की 'आद्रता' है जो आध्यात्मिक है। यही आध्यात्मिक आद्रता हमे दूसरे रूप मे 'निराला' के गीतो मे भी प्राप्त होती है। यदि हम 'प्रेम' को व्यापक सदर्भ मे लें (जैसे प्रकृति प्रेम, जगत प्रेम, प्रणय, वात्सल्य आदि) तो मानवीय सरोकारो का एक अत्यत व्यापक-वृहद् आयाम समक्ष आता है, और कविता जो इस वृहद्-आयाम को अर्थ देती है वह क्या 'प्रेम' से बड़ी नहीं है?

'प्रेम से बड़ी है कविता
जिसमे हम प्रेम लिखते है।'

❑

सुमन राजे: नारी संवेदना का व्यापक संदर्भ

[illegible] म नारी मवेदना स जुड़ी कविताआ म अनक *कवियित्रियाँ सामने आई हे जिन पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि* उनकी रचना समार सीमित (पारिवारिक नर-नारी सम्बन्ध तथा एकाकीपन आदि) है, उसमे वह सघर्ष और सामाजिक आशया का वह रूप प्राप्त नहीं होता है जो आज की कविता का प्रमुख स्वर है। यह बात कुछ सीमा तक सही मानी जा मकती है, पर पूर्णरूप से नही। यदि आज की कविता का सर्वेक्षण कर, तो एक बात यह स्पष्ट नजर आ रही है कि पारिवारिक 'बिम्बों' का प्रयोग अब मात्र नारी तक सीमित न होकर, वह एक तरह से आज की कविता का एक प्रमुख आयाम होता जा रहा है। यह तो कहा जा सकता है कि ये पारिवारिक बिम्ब (बहन, माता, पिता, पत्नी आदि) समकालीन बोध मे एक वृहद् मानवीय एव सघर्षमूलक सदर्भों को लेकर आ रहे है, उस सीमा तक नारी-सवेदना का विस्तार शायद अभी नहीं हुआ है, लेकिन उसका सृजन इस ओर गतिशील है। इस दृष्टि मे डॉ॰ सुमन राजे एक ऐसी कवियित्री है जिन्होने अपनी सृजनात्मकता को विविध आयामी बनाने का उपक्रम किया है। "सपना और लाश घर" (१९७३) से लेकर "एरका" (१९९२) *तक की उनकी काव्य-यात्रा काल के दीर्घ खण्ड को अपने अदर समेटे हुए* है और इस समेटने म वे "विचार-सवेदन" के भिन्न आयामो को 'अर्थ' दे रही है। इस 'अर्थ' दन की प्रक्रिया म यथार्थ के वाह्य एव आतरिक रूपा का द्वन्द्व भी है और इसके साथ ही माथ, वैयक्तिक 'राग-सवदन' भी है तथा दूसरी ओर, सामाजिक एव मामूहिक आशया का न्यूनाधिक रचनात्मक

सदर्भ भी प्राप्त हुआ है। "सपना और लाश घर" मे स्वप्नो की लाश का, एकाकीपन और विडम्बना का जो एकांतिक रूप है, वह क्रमश "यात्रादश" (१९८७) "उगे हुए हाथो के जगल" (१९८७) तथा "एरका" (१९९२) मे आते-आते व्यापक मानवीय एव सामाजिक सरोकारो से जुड़ते है। यही नही, 'एरका' के मिथकीय चरित्र और प्रसग एकांतिक नही है, वे ऐसे आद्यरूप या 'आरिकीटाइप' है जो वृहद् मानवीय सदर्भों और आज के सघर्षमूलक-यथार्थ को सकेतित करते है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि सुमन राजे का रचना-ससार क्रमिक 'गति' का परिचय देता है और इस गति को रेखांकित करने के लिए उनके भिन्न रचनात्मक सदर्भो को विवेचित करना लाजिमी है। विचार-सवेदन की दृष्टि से ये सदर्भ अनेक आयामो है यथा सृजन-दृष्टि, इतिहास, मिथक, प्रकृति, व्यक्ति की अस्मिता, प्रेम व परिवार, समाज-राजनीति तथा काल-क्षण-जो समग्र रूप से कवि की रचना-दृष्टि को स्पष्ट करते है।

सुमन राजे की रचना-दृष्टि क्या है, यह हमे उनकी कविताओ से गुजरते हुए प्राप्त होता है। जीवन के लम्बे "यात्रादश" मे उन्हे उस भाषा का 'दलदल' दिखाई देता है जिसमे कुछ नही उगता, फैलता और उतरता है, मात्र एक कविता है जो 'एहसास' की तरह भीतर गहरे डूबती जाती है और अपने पीछे "पुरता हुआ दलदल" छोड़ती जाती है ('यात्रादश' पृ॰११-१२) यहाँ पर कविता गहरे भीतरी 'एहसास' से सम्बंधित है और साथ ही, इसी एहसास के धरातल पर वह बच्चे की नगी देह को बर्फीली हवाओ के खिलाफ छोड़ना नही चाहती और जब तक यह 'नगापन' समाप्त नहीं होता तब तक-

> जब तक
> कुछ हो नहीं जाता
> वह स्थगित करती है
> दुनिया को तमाम कविता! (यात्रादश, पृ॰ ३८)

कवि के लिए कविता मे 'चिल्लाना' और गैबदार आवाजे निकालना मात्र "लगड़ी भाषा की बैसाखी" है और 'शब्द' फटी हुई कथरी-

> शब्द जैसे फटी हुई कथरी
> अनमिल, छोटी सी जिमम

दर्द का ठिठुरा बदन ढकता ही नही
तब,
यह 'कथरी भी चिरती चली जाती है।'

(उगे हुए हाथो के जगल, पृ०९)

इन उदाहरणो से दो बात स्पष्ट है, एक एहसास और दूसरे लगड़ी भाषा का नकार। सृजन के स्तर पर दर्द कभी इतना व्यापक हो जाता है कि शब्द-भाषा उसे पूरी तरह से बाँध नही पाते है। सुमन राजे का रचना-ससार एहसास और सोच का एक मिला-जुला ससार है जिसमे यथार्थ का गहरा-हल्का दश है जो आतरिक भी है, बाह्य भी। यही कारण है कि "सपना और लाशघर" म जो स्वप्नो की विसगति है, वह आगे चल कर यथार्थ के स्पर्श से जीवन की गति (यात्रा) को, उसके द्वन्द्व को तथा उसके 'हल्के' दश को सकेतित करती है। यहाँ पर मै जिस बात की ओर सकेत करना चाहता हूँ, वह यह है कि कवि का एकाकीपन सपना का लाशघर हो जाना उसकी कविता का प्रारभिक रुप है जिसे वे क्रमश अपने आगे के सग्रहो मे अतिक्रात करती है। इसकी एक स्पष्ट स्वीकृति हमे 'यात्रादश' की निम्न पक्तियों म मिलती है

मै न सूरज हूँ
न ईश्वर
न हो सकती हूँ
मै सिर्फ आदमी हूँ
मुझमे साँस लेता है
पूरा इतिहास। (यात्रादश, पृ० ३१)

यह पूरा इतिहास मानव-सापेक्ष है क्योंकि इतिहास मानव का होता है चाहे वह अलिखित (प्रागैतिहासिक) हो या लिखित। इतिहास के सदर्भ मे "मै" (व्यक्ति) एक महत्त्वपूर्ण इकाई है क्योंकि 'मै' ही इतिहास को अर्थ देता है। इतिहास की गति मे नकारात्मक एव सकारात्मक शक्तियाँ सापेक्ष रूप मे चलती है और कवि नकारात्मक पक्ष को पहचानता है जो विक्रमादित्य और बत्तीस पुतलिया वाले सिहासन के प्रतीकत्व द्वारा सकेतित होता है।

नहीं हूँ मै
काई विक्रमादित्य
मुझे नहीं ढोनी/लाश अनत/

इतिहास हुए सवालो की
नहीं बैठाना मुझे
बत्तीस पुतलियो वाले सिहासन पर
जिनके झुके हुए कधे
खास खास कर
लहू और बलगम से भरा
इतिहास थूकते है। (पृ॰१०)

सुमन राज ने इतिहास के आत्मगत रूप को महत्त्व देते हुए उसके वस्तुगत रूप को भी 'लोकेट' किया है। यही कारण है कि वे परम्परा (मिथक) और इतिहास के द्वन्द्व को स्वीकारती हैं। इतिहास की गत्यात्मकता मे मिथक का अपना योगदान है क्योंकि इतिहास का आदिम मानवीय विकास उसके मिथको लोकवृत्तो मे सुरक्षित है। यही कारण है कि रचनाकार, चाहे वह किसी भी मत या वाद का पक्षधर क्यो न हो, वह इन मिथको से टकराता अवश्य है क्योंकि ये मिथक जातीय-मनस् (साइकी) को बार-बार आदोलित करते हैं। सुमन राजे के रचना-ससार में मिथक का यही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्राप्त होता है। "सपना और लाशघर" सग्रह मे "सम्पाती" और 'शेषनाग' के आद्यरूपो के द्वारा आज के व्यक्ति का सघर्ष तथा सहस्त्रो फनो वाला नाग आज की मानसिक पीड़ा को सकेतित करते है। सम्पाती का यह अर्थ-रूपातरण ले -

"हर बार/झुलसन/और धरती पर गिर छटपटाने की कथा/अपने को अपने से नोच नोच कर/फेंक कर हलका बना कर/ऊपर चढ़ने की प्रथा"
(सपना और लाशघर पृ॰६८)

इसी सदर्भ मे मै सुमन राजे के नवीन कविता सग्रह 'एरका' को लेना चाहूँगा जो मिथकीय अर्थ-रूपातरण के दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। इस परम्परा मे विनय का "एक पुरुष और' बलदेव वशी का "आत्मदान" तथा रामदेव आचार्य आदि की कविताएँ आती है जिनका आज की कविता मे अपना स्थान है, और इसी क्रम म मै "एरका" को रखना चाहूँगा। "एरका" मे महाभारत के कुछ ऐसे चरित्रो-प्रसगो को लिया गया है जो पहली बार रचनात्मक अर्थवत्ता प्राप्त करते है जैसे माधवी भीलन का बेटा शिखण्डी, चारवाक तथा बालखिल्यादि ऋषिगण। इन कविताओ मे चिंतन की बोझिलता नही है जो हमे नयी कविता म यदा-कदा मिलती है वरन् ये कविताएँ "सहज सवेदनीय' है जो आज की कविता (युवा) का एक

महत्त्वपूर्ण तथ्य है। कभी-कभी इस "सहजता" मे विचार-सवेदन की गहरी गूँजे प्राप्त होती है। चार्वाक (लोकायत-दर्शन के जनक) का यह कथन इसका प्रमाण है जो राज्य या सत्ता के लिए धर्म और 'धन' के महत्त्व को सकेतित करता है –

कभी तुम धर्म के लिए लड़ते हो
कभी धन के लिए
तुम्हारे लिए दोना
एक ही सिक्के के दो पहलू है। (एरका, पृ॰६९)

इसी प्रकार, शिखडी का भीष्म के प्रति यह कथन जो मातृसत्ता पर पितृसत्ता के दमन और अत्याचार पर विक्षोभ और विरोध व्यक्त करता है-"पितामह, तुम्हारा गर्व, पुरुष का गर्व था/आखिर/जो, जब भी पिछड़ता है नारी से---/फिर चाहे वह गार्गी हो/या रुक्मणी/हर स्थिति म/तुम्हारी है विजय/क्योंकि उसकी परिभाषा/रची है तुमने/(पृ॰४१)

असल मे, मिथक मे ऐसी 'लोचशक्ति' होती है जो उसे अनेक सदर्भों म गतिशील करती है।" एरका म यही स्थिति है जहाँ कवि ने अनेक अर्थ सकेत दिए है जा अक्सर अरिकीटाइप(आद्यरुप) का दर्जा प्राप्त करते है। महाभारत म 'एरका' एक नुकीली घास है जिससे कृष्ण व यादवो का नाश हुआ था, कवि ने इसे अनेक अर्थ-सदर्भों का वाहक बनाया है कही वह जनशक्ति का प्रतीक है, तो कही उपेक्षित शक्ति का जो इतिहास की निर्णायक भूमिका अदा कर सकती है। कर्ण का यह कथन ले-"कृष्ण, यह युद्ध लड़ा जाएगा/एरका से/जिसे उपेक्षित गर्भ की तरह/चूर-चूर करके/फेक दिया जाता है/उगो/एरका/उगो/इतिहास की/निर्णायक भूमिका/अदा करो।"(पृ॰४२) "एरका" का एक अन्य सदर्भ आम जन का है जो इतिहास की प्रकिया म अमोघ शस्त्र है जो परिवर्तन को गति देता है। (पृ॰९२ एरका) यदि गहराई से देखा जाएँ तो "एरका" की सारी कविताओ मे एरका का प्रतीकार्थ छिपा हुआ है क्योंकि अधिकाश कविताएँ शोषण व अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाती है। महाभारत के चरित्र यहाँ मात्र चरित्र नहीं है, वरन् वे गतिशील विचार के आद्यरूप है। इस विचार-प्रक्रिया मे धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास, नयी व्यवस्था का दर्शन तथा जन की सकारात्मक भूमिका के दर्शन होते है। मेरे विचार से इस सग्रह की तीन कविताएँ विशेष महत्त्व रखती है-एक शिखंडिन्, दूसरे चार्वाक् तथा तीसरे बालखिल्यादि

जो शोषण, व्यवस्था विरोध, स्वर्ग की अधिरचना (भविष्य) तथा सत्य के सामाजिक पक्ष को उजागर करती है। बालखिल्यादि साठ हजार ऋषियो का एक ऐसा समुदाय है जिसने गरूण नामक दूसरे इद्र की रचना की क्योंकि मूल इद्र ने ऋषियो के आकार (अत्यत लघु) तथा दाय को देखकर, उन पर व्यग्यपूर्ण हँसी के बाण छोड़े, इससे क्षुब्ध होकर ऋषियो ने कश्यप ऋषि के कहने पर पक्षियो के इद्र गरूण की रचना की। इस रचना को कवि ने नयी व्यवस्था से जोड़कर एक व्यापक सदर्भ दिया है-"हम (साठ हजार ऋषि)/रोशनी के गीत गाते/इस धरती पर अवतरित करते है/रचना ही होगा/अब कोई नया इद्र/कोई नयी व्यवस्था/---नही सहा जाता-- /अन्याय अत्याचार/अप्रतिहत/नही रहा जाता अब/नही सहा जाता अब/।"(पृ०१०२)

यहाँ पर एक पूरा मिथक (जो पहली बार रचनात्मक अर्थ प्राप्त करता है) आज के सदर्भ से जुड़ जाता है और यही बात "शिखण्डिन" और "चारवाक्" कविताओ के बारे मे भी सत्य है। इस पुस्तक के अत मे महाभारत चरित्रो का जो स्त्रोत है, उनका प्रसग है ये प्रसग कविताओ को समझने मे सहायक होते है। अधिकाश कविताओ की आरभ की पक्तियाँ अत मे पुन आती है और ऐसा लगता है कि आरभ ओर अत के बीच चरित्र और प्रसग का क्रमश विकास होता है और विचार का ततु सवेदना के गहरे सस्पर्श से अर्थ बोध को व्यापक बनाता है। मेरे विचार मे "एरका" समकालीन मिथक-काव्य की एक हस्ताक्षर-कृति है।

सुमन राजे की कविताओ मे काल, क्षण और महाकाल का सापेक्ष रूप प्राप्त होता है जो 'मे' की सापेक्षता मे अस्तित्व की चटख मे जीवन के चक्राकार (पहिए) रुप मे तथा त्रिकालधारा मे अपने 'अर्थ' को गतिशील करता है। कही 'अलसाया समय' कवि को पीता है तो कही रुई की तरह उसके चारो ओर 'क्षण' उड़ते है (सपना और लाशघर, पृ०४०) तो कही क्षण स्थिर है, और मै-तुम स्थिर भी है और गतिशील, यहाँ पर सापेक्ष स्थिति का रूप है जो विज्ञान सम्मत है -

"क्षण स्थिर है/मै चलती हूँ/नही/मै स्थिर हूँ/क्षण चलते है/नही शायद दोनो स्थिर है/शायद दोनो चलते है/दो विपरीत दिशाओ मे/' यहाँ पर गति और स्थिरता का द्वन्द्व है और सापेक्षतावाद की अनुगूँज है। सुमनराजे की एक सुदर कविता "पीछे आने वाले भविष्य से' है जिसमे राजपथ पर दौड़ते रथ मे घोड़ो के स्थान पर मानव जुते है(शोषित वर्ग) और महाकाल

का पहिया घूमता जाता है जिससे "मै-तुम-हम/सब कुचल तो गए है पर मरे नही है/रथ के पहिए की धुरी म/अधर मे लटक/घूमत ही जाते है" (पृ॰२३ उगे हुए हाथो के जगल)। इस पूरी स्थिति मे 'धूल भरा अनागत भविष्य है और" कुचल देना पैरो से रगड़ कर/हमे भी मुक्ति मिल जाएगी"-ये पंक्तियाँ सघर्ष का तीव्र न कर हम पलायन की आर ले जाती है और महाकाल की भयानकता हमारे ऊपर हावी होने लगती है। लेकिन कविता की पूरी सरचना हमे सघर्ष की ओर सकेतित करती है यदि हम इसे गहराई से देखे। अस्तित्व की सघर्षशीलता महाकाल की सापेक्षता म अर्थ" प्राप्त करती है। यहाँ पर सुमनराज का सोच सवेदना मे घुलकर एक "अर्थ" प्राप्त करता है।

सुमन राज की कविताओ म सपनो की लाशे है दर्द का बिम्बा फल है मजबूर आस्था का रूप है तथा अचतन म कड़वाहट का भर भर आना है ये सभी तत्त्व एक 'जादुई यथार्थ' की सृष्टि करते है जो आत्मपरक अधिक है लकिन कवि 'यात्रादश' मे 'अधेरे' के आर पार प्रश्नों की यात्राएँ करती है। इस लम्बी कविता म कवि की रचनात्मकता 'अधेरे' के बिम्ब को व्यापक रुप दती है इसम स्वप्न और सत्य का सापेक्ष रूप प्राप्त हाता है। इसमें 'यात्रा' यथार्थ और स्वप्न की यात्रा है जो स्वय व्यक्ति मे गुजर रही है

> इन लम्बी राहा म
> एक ही जगह से गुजरती हूँ बार-बार
> एक ही जैसी/बाढ और सूखा/उगती हुई धरती
> *मै एक ही यात्रा स गुजरती हू/या/एक ही यात्रा/*
> मुझमे गुजरती है बार-बार।' (पृ॰२७)

और इस निरतर यात्रा म न सूरज है, न ईश्वर है, है तो केवल आदमी मे साँस लेता हुआ पूरा इतिहास।

> मै न सूरज हूँ/न ईश्वर/न हो सकती हूँ/
> मै सिर्फ आदमी हूँ/मुझम साँस लेता है
> पूरा इतिहास (पृ॰ ३१ यात्रादश)

कवि का पूरा विश्वास है कि वह दीपक न जला सके, पर दीपक राग तो गा सकती है (पृ॰३२) यह अपने म एक आशा और सघर्ष का रूप है।

कवि की कविताओ का एक अन्य आयाम प्रेम और प्रकृति क सदर्भ है जहाँ कवि अपने को अधेरे में अकेली पाती है, कभी "हरा ठूँठ" हो जाती है, स्वप्न लाश हो जाते है, "साँवली साँझ" मे अपने को अकेली महसूस करती है, प्रात लैंडस्केप हो जाता है, वर्षा का चित्र बीमार सा लगता है, प्रेम एकांतिक न होकर कभी कभी समष्टि को समेटने लगता है, दर्द का बिल्व फल विकसित होता है, बच्चा, माँ तथा पारिवारिक बिम्ब सहज सवेदनीयता के साथ यथार्थ के एहसास को जगाते है तथा प्रकृति के चित्र जीवन के राग-यथार्थ तत्त्व को स्पर्श करते है- ये सभी तत्त्व एक साथ मिलकर जिस चित्र को उपस्थित करते है, वे मात्र एकांतिक चित्र नहीं है, उनमे जीवन और यथार्थ के हल्के-गहरे 'रग' समाएँ रहते है। "मनु पुत्र के नाम एक खुली चिट्ठी" म बच्चे का अर्थ-रूपातरण इसी प्रकार का है

"मुझे यकीन है कि जब मै/तुम्हारे गूँ-गाँ, माँ-म्राँ मे/एक पूरे अर्थ ससार को खोज/लेती थी/तो मेरे ये शब्द/तुम्हारे भीतर अनअकुरित/परम्पराओ को जगाएँगे/और काली पड़ी हुई चेतना को/कुरेद कर सुलगाँएगे।" (यात्रादश, पृ०५८)

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते है। ये सभी तत्त्व यह स्पष्ट करते है कि कवि का रचना ससार मात्र वैयक्तिक राग-सवेदनाआ तक सीमित नही है वरन् वह कभी-कभी समष्टिगत एव यथार्थ के सर्घषशील रूपो को भी "अर्थ" प्रदान करती है। कविताओं की सवेदना तथा उनकी सरचना दीर्घ भी है और सक्षिप्त सघनीकृत भी ये दोना पक्ष एक साथ मिलकर यह सिद्ध करते है कि कवि दोनो काव्य-रूपो को सवदना और सरचना के धरातल पर रूपातरित करने मे सक्षम है। 'एका' की कविताएँ दीर्घ एव अपेक्षाकृत सक्षिप्त सरचना वाली दोनो प्रकार की है लेकिन ये दोनो प्रकार की कविताएँ मिथकीय अर्थ रूपातरण की दृष्टि से सरचनात्मक सौष्ठव को सकेतित करती है। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि सुमन राजे के रचना ससार म ऐसी सभावनाएँ है जो अधिक अध्ययन मनन के द्वारा 'सवेदना' को अधिक व्यापक और अर्थवान् बना सकती है।

❑❑❑